वाल्मीकि रामायण

और

रामकीर्ति (रामकियन)

एक तुलनात्मक अध्ययन

डा. करुणा शर्मा

वाल्मीकि रामायण और रामकीर्ति (रामकियन)

एक तुलनात्मक अध्ययन

प्रकाशन : भारतीय राजदूतावास, बैंकॉक

© डॉ. करुणा शर्मा

Printed by Embassy of India, Bangkok

ISBN : 978-616-423-555-7

स्व. श्री अवधनारायण मुद्गल

की

पावन स्मृति को

और

प्रेममयी, वात्सल्यमयी एवं ममतामयी

चित्रा मुद्गल

को

सादर

राजदूत
Ambassador & Permanent
Representative to ESCAP

सत्यमेव जयते

भारत का राजदूतावास, बेंकाक
Embassy of India, Bangkok

आमुख

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (आई सी सी आर) द्वारा थम्मासॉट विश्वविद्यालय, बैंकॉक में हिंदी भाषा के लिए स्थापित पीठ पर कार्यरत डॉ करुणा शर्मा द्वारा रचित पुस्तक के लिए आमुख लिखते हुए मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। यह पुस्तक वाल्मीकि रामायण और रामकीर्ति (रामकियन) के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है।

यद्यपि 'रामकीर्ति' वाल्मीकि रामायण का थाई रूप समझी जाती है, तथापि वह पूर्ण रूप से रामायण जैसी नहीं है। 'रामकीर्ति' मूल रूप में थाई भाषा में लिखी गई है। स्वामी सत्यानंद पुरी द्वारा अंग्रेजी भाषा में इसका संक्षिप्त रूप में वर्णन किया गया तथा इसका प्रथम संस्करण भारतीय अध्ययन केंद्र, थम्मासॉट विश्वविद्यालय, बैंकॉक द्वारा सन् 1940 में प्रकाशित करवाया गया। इस पुस्तक का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद पहली बार इसी लेखिका द्वारा किया गया और भारतीय राजदूतावास, बैंकॉक द्वारा सन् 2015 में इसे प्रकाशित करवाया गया।

यह पुस्तक उन परिवर्तनों का एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जो रामायणकालीन घटनाओं और पात्रों के संदर्भ में तब घटित हुए, जब इसने भारत की सीमाओं से बाहर की यात्रा की। यह पुस्तक भारत और थाईलैंड के रामायणीय साहित्य को इसकी समानताओं और विभिन्नताओं के साथ न केवल भारत और थाईलैंड वरन् विश्व के अन्य देशों के हिंदी–भाषी समाज के लिए भी प्रस्तुत करती है। हिंदी में यह अपने प्रकार की एक अनूठी पुस्तक है और आशा की जाती है कि हिंदी साहित्य के प्रचार–प्रसार में यह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

मैं लेखिका को बधाई देता हूँ जिनके शोध ने पुस्तक को एक विद्वत्तापूर्ण कार्य बना दिया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पूरे भारत और थाईलैंड में इसके बहुत से उत्साही पाठक होंगे और भारत तथा थाईलैंड के बीच मैत्रीपूर्ण–बंधन और सांस्कृतिक संबंध के विषय में उन्हें विस्तृत ज्ञान प्राप्त होगा।

BS Bishnoi

(भगवंत सिंह बिशनोई)
थाईलैंड में भारत के राजदूत
18 अगस्त 2016

46, Soi 23 (Prasarnmitr), Sukhumvit Road, Bangkok 10110
Tel : (662) 2580300-06 / 2584198 • Fax : (662) 2594870 / 2584627
Email : amb.bangkok@mea.gov.in • Website : http://indianembassy.in.th

प्रस्तावना

एक विदेशी विद्वान का कहना है कि यदि संपूर्ण एशिया महाद्वीप की अपनी कहने की कोई कथा है तो वह राम कथा है। इसी के ही विविध रूप एशिया के देशों में उपलब्ध होते हैं, विविधता इतनी कि एक–एक देश में भी चार–चार रूप। लाओस एक छोटा सा देश है, उसमें हैं उसके चार रूप। केवल रूप ही इसके अलग–अलग नहीं हैं, नाम भी अलग–अलग हैं। म्यन्मार (पुराना नाम बर्मा) में इसे रामवत्थु और राम थग्यन् कहा जाता है। थाईलैंड में इसे रामकियन (संस्कृत में रामकीर्ति, कियन कीर्ति का ही परिवर्तित रूप है।), कम्बोडिया में रामकरे (ति), मलेशिया में हिकायत (=कथा) सरी (श्री) राम, इण्डोनेशिया में राम ककविन (राम काव्य), फिलीपींस में महाराजा लावण (रावण), लाओस में फ्र लक् फ्र लाम (उच्चारण में फलक् फलाम)। जहाँ तक मुख्य (बीज) कथा का प्रश्न है वह सभी में एक समान है। संस्कृत में एक ही श्लोक में वह बीज कथा इस रूप में प्रस्तुत की गई है–

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृग काञ्चनं

वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम्।

वाली निर्दलनं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं

पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननमेतद्धि रामायणम्।।

यह श्लोक संस्कृत संप्रदाय में एक श्लोकी रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें कहा गया है कि–

पहले राम का (विश्वामित्र के साथ) तपोवन आदि में जाना, स्वर्णमृग को मारकर (मारना), सीता का हरण, जटायु की मृत्यु, सुग्रीव के साथ बातचीत (=सन्धि), वाली वध, समुद्रतरण, लंका दहन, और अंत में रावण और कुंभकर्ण का हनन– इतनी भर ही रामायण है।

इतनी भर रामायण समस्त दक्षिणपूर्व एशिया के देशों में पाई जाती है। अब प्रश्न है कि भेद कहाँ आता है। वह आता है अनेक आख्यानों और उपाख्यानों में जो वाल्मीकि द्वारा प्रणीत रामायण की रामकथा में नहीं थे। वे आख्यान–उपाख्यान कहाँ से आ गए, यह प्रश्न यहाँ उभरता है। अब तक विद्वानों का मत रहा है कि ये स्थानीय प्रभाव की उपज हैं। इसका निराकरण प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने अपनी पुस्तक 'The Ramakien (The Thai Ramayana) and Its Indian Connections' में लिखा है। गहन शोध करने के बाद उसने कम से कम थाईलैंड के विविध वाल्मीकि रामायण में अनुपलब्ध आख्यानों–उपाख्यानों का मूल अन्य भारतीय स्त्रोतों से ही निकाला है। पुस्तक थाई अनुवाद के साथ शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही है। इसी प्रकार की 'दक्षिणपूर्व एशिया के अन्य देशों की रामकथा के आख्यानों–उपाख्यानों के भारतीय स्त्रोत' पुस्तक प्रगति पर है।

दक्षिणपूर्व एशिया के अन्य देशों की रामकथा की तरह ही थाईलैंड की रामकथा भी तीन रूपों में पाई जाती है–साहित्य में, कला में और लोककथाओं और लोकजीवन में। साहित्यिक रूप इसे सबसे पहले प्रदान किया वर्तमान राजवंश के प्रवर्तक महाराज प्रथम ने। उन्होंने 50286 पद्यों में इसका गान किया जो प्रथम संस्करण के 20976 पृष्ठों में प्रकाशित हुए थे। चार खंडों में इसका दूसरा संस्करण हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसका स्वरूप अतिविशाल होने के कारण नाट्यप्रस्तुति के रूप में इसे अनुपयुक्त जान इसका संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया उनके उत्तराधिकारी महाराज राम द्वितीय ने। संक्षिप्त होने पर भी यह पर्याप्त बड़ा था। इसमें 14000 पद्य थे। इसके मात्र एक आख्यान तक ही अपने को सीमित कर इसका रूपान्तरण किया महाराज राम चतुर्थ ने। वह आख्यान था राम के वन–भ्रमण के अनुभव तथा वहाँ जो–जो उन्हें सहना पड़ा। इसके उद्गम स्त्रोतों का पता लगाया महाराज राम षष्ठ ने। इसके साथ ही उन्होंने परस्पर असम्बद्ध रामकथा के कतिपय उपाख्यानों की प्रस्तुति की। जिन उपाख्यानों का उन्होंने वर्णन किया उनमें हैं अर्जुन–रावण युद्ध, तथक नामक दानव की मृत्यु, राम–सीता विवाह, सीता–हरण, लंका–दहन, बेंजकयी का सीता का रूप अपना नदी में प्रवाह, राम और रावण की

सेनाओं का युद्ध, इंद्रजित द्वारा नागपाश प्रयोग तथा फ्रोम्सात् बाणप्रयोग, ये वाल्मीकि रामायण पर आधारित हैं। महाराज तक्सिन महान ने भी इसके कतिपय आख्यानों को अपनी शैली में प्रस्तुत किया। कला के स्वरूप में यह पाई जाती है भित्ति चित्रों में, पत्थरों पर हल्की खुदाई में (base relief), पाषाण चित्रों में उत्कीर्ण दृश्यों और पटचित्रों में, नाट्यप्रस्तुति और पुत्तलिका नृत्य आदि में और लोकजीवन में लोक कथाओं और लोकोक्तियों में।

थाई भारत कल्चरल लॉज के संस्थापक स्वामी सत्यानन्दपुरी ने महाराज राम प्रथम की रामकियन को अति संक्षिप्त–सारांश–रूप में अपनी 'रामकियन' नामक पुस्तक में अंग्रेजी में प्रस्तुत किया था। उसका हिंदी में अनुवाद किया थम्मसात विश्वविद्यालय में वर्तमान में हिन्दी की अभ्यागत आचार्या डा. करुणा शर्मा ने। अनुवाद इतना सुंदर है कि मूल की ही प्रतीति देता है।

थाई रामकथा पर उनकी यह पुस्तक जो शीघ्र ही पाठकों के हाथ में आने वाली है, दूसरी है। इसमें थाई रामकथा का वाल्मीकि रामायण से तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए आवश्यक था थाई रामकथा की अविकल प्रस्तुति जो डा. करुणा शर्मा ने सफलता से की है। चूंकि वे स्वामी सत्यानंदपुरी जी की कृति का अनुवाद कर चुकी थीं, इसलिए इसमें उन्हें कठिनाई नहीं हुई।

डा. करुणा शर्मा का हिन्दी पर अधिकार है। उनकी भाषा सरस एवं प्राञ्जल है।

वाल्मीकि के साथ तुलना करने पर इतना तो स्पष्ट ही है कि थाई रामकथा पर्याप्त बड़े अंश में वाल्मीकि की रामकथा से भिन्न है और यह स्वाभाविक ही है क्योंकि थाई रामकथा केवल वाल्मीकि की रामकथा पर ही आश्रित नहीं है। महाराज राम षष्ठ ने इसका स्त्रोत भट्टि के रावणवध महाकाव्य जो उन्हीं के नाम पर भट्टिकाव्य के नाम से जाना जाता है और दामोदर मिश्र के हनुमन्नाटक जिसका दूसरा नाम महानाटक भी है और जो संस्कृत वाङ्मय का सबसे बड़ा नाटक है (इसके तीन पाठ

मिलते हैं जिनमें नौ, दस और चौदह अंक हैं) को माना है। इनके अतिरिक्त भी इनके अनेक स्त्रोत हैं। स्त्रोत और स्वरूप इसके कितने ही क्यों न हों, हैं सभी रामकथा ही। संस्कृत की एक सुप्रसिद्ध उक्ति है–

यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम्।

सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।।

जिस प्रकार नदियाँ और नद ये सभी समुद्र में विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार सभी देवताओं को किया गया नमस्कार केशव को चला जाता है।

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।

डा. करुणा शर्मा ने इस अनन्त हरिकथा के एक स्वरूप, जो थाईलैंड में प्रचलित है, को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया और उसकी विशेषताओं को वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में रेखांकित किया, इसके लिए वे साधुवाद की पात्र हैं।

वे गहन अध्येत्री हैं, परिश्रमी और अध्यवसायी हैं और साहित्यप्रेमी हैं। मैं उनके दीर्घ और यशस्वी जीवन की कामना करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी यह कृति जिसका पाण्डुलिपि रूप में ही वाचन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, अत्यंत लोकप्रिय होगी।

12. 6. 2016 सत्यव्रत शास्त्री

पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत आयोग, भारत सरकार

सम्मानित आचार्य (प्रोफेसर एमेरिटस), दिल्ली विश्वविद्यालय

मन की बात

आदिकवि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण एक ऐसा महाकाव्य है जिसने न केवल भारत वरन् संपूर्ण संसार को प्रभावित किया है। यह अब केवल धार्मिक अथवा भारतीय महाकाव्य ही नहीं रह गया है बल्कि संपूर्ण संसार की कृति के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इस ग्रंथ के शाश्वत मूल्य सभी पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ते हैं, साथ ही राम के समान जीवन जीने के लिए प्रेरित भी करते हैं। ज्ञान, विद्या, कर्तव्य, व्यवहार, नीति, राजनीति, निःस्वार्थ कर्म, परहित, मित्रता, बंधुत्व, त्याग, बलिदान, प्रशासन, धर्म, भक्ति, मुक्ति आदि की शिक्षा इस ग्रंथ से स्वतः ही मिल जाती है। रामायण की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए डॉ. रेणापुरकर लिखते हैं, 'महर्षि वाल्मीकि ने प्रसिद्ध रामकथा के माध्यम से अपनी अलौकिक काव्य तूलिका द्वारा वेदों और उपनिषदों में वर्णित सर्वोच्च मानव संस्कृति के शाश्वत और स्वर्णिम तत्वों का एक आकर्षक, भव्य और अद्भुत चित्र प्रस्तुत किया है जो प्राचीन होते हुए भी नवीन है, मानवीय होते हुए भी दिव्य है। समूची मानव–संस्कृति मानो इस एक महाकाव्य में उद्बोधित हो उठी हो। विगत अनेक सहस्त्राब्दियों में जितना लौकिक और पारलौकिक कल्याण रामायण ने किया है, उतना किसी अन्य ग्रंथ ने नहीं किया। कालक्रम से आदिकाव्य होने के कारण इसका प्रभाव बाद की काव्य, नाटक, चंपू आदि विधाओं पर भी पड़ा।'

वाल्मीकि की रामायण के भारत के साथ–साथ विश्व स्तर पर पड़े इस प्रभाव से मैं परिचित थी। लेकिन जब मुझे थाईलैंड की राजधानी बैंकॉक में स्थित थम्मासॉट विश्वविद्यालय में अध्यापन–कार्य करने का अवसर मिला और यहाँ आकर मुझे ज्ञात हुआ कि थाईलैंड में भी एक रामायण है, तो मेरी स्वाभाविक जिज्ञासा हुई कि क्या यहाँ की रामायण हमारी रामायण जैसी ही है अथवा उससे पृथक है? जिज्ञासा शांत करने के लिए इसे पढ़ना आवश्यक था। यहाँ के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान आदरणीय चिरापत प्रपंडविद्या जी से ज्ञात हुआ कि स्वामी सत्यानंद पुरी ने थाई रामायण की अंग्रेजी में संक्षिप्त प्रस्तुति की है। इसे पढ़ने के बाद मन में विचार आया कि हिंदी प्रेमियों को भी इस जानकारी से परिचित करवाया जाए कि थाईलैंड में प्रचलित रामायण 'रामकीर्ति' है जिसे थाई

लोग 'रामकियन' कहते हैं। यद्यपि इसका मूल स्त्रोत वाल्मीकि–रामायण है तथापि इसमें वर्णित घटनाएं उससे काफी भिन्न हैं। इन सब बातों को जानने के बाद मेरे द्वारा इसका हिंदी में अनुवाद 'रामकीर्ति (रामाकियन) रामायण का थाई रूप' नाम से किया गया जिसे सन् 2015 में भारतीय राजदूतावास, बैंकॉक द्वारा प्रकाशित करवाया गया।

वाल्मीकि रामायण और थाई रामायण अब दोनों मेरे सामने थीं। इन दोनों का अध्ययन करने के पश्चात् मन में प्रेरणा जाग्रत हुई कि इन ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए ताकि हिंदी जगत् जान सके कि कथाएं जब विभिन्न मार्गों का अनुसरण करती हुई दूसरे देशों में पहुँचती हैं तो उनका स्वरूप किस तरह बदल जाता है। किसी देश की सभ्यता और संस्कृति, भाषा और कला किसी ग्रंथ की कथा को कहाँ तक प्रभावित कर जाती हैं। इस दृष्टि से अध्ययन करने पर मैंने पाया कि 'रामकीर्ति' वाल्मीकि रामायण पर आधारित होते हुए भी उससे काफी भिन्न है। जिन देशों से गुजरते हुए यह थाईलैंड में पहुँची, उनके जनजीवन, कला एवं संस्कृति के साथ–साथ थाई–भाषा एवं कला का भी प्रभाव इस पर पर्याप्त रूप से परिलक्षित होता है। साथ ही यह भारतवर्ष की अन्य रामायणों से भी प्रभावित है। इन दोनों ग्रंथों में पात्रों के कुछ नाम तो एक जैसे हैं, कुछ नाम मिलते–जुलते हैं और कुछ नाम पूरी तरह से भिन्न हैं। यही बात पात्रों के जीवन–चरित्रों और घटनाओं के संदर्भ में भी कही जा सकती है। रामायण में राम सर्वोच्च देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं जबकि रामकीर्ति में वह ईस्वर के अधीनस्थ देवता के रूप में सामने आते हैं। वाल्मीकि रामायण भारतवर्ष में एक प्रमुख धार्मिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित है जबकि रामकीर्ति थाईलैंड में एक साहित्यिक और सांस्कृतिक ग्रंथ के रूप में मान्य है।

इन दोनों ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए आधार ग्रंथों के रूप में मैंने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (सचित्र, हिंदी अनुवाद श्लोकाङ्कसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर) तथा रामकीर्ति (रामकियन, रामायण का थाई रूप) को लिया है। यहाँ एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि वाल्मीकि रामायण एक बहुत विशाल ग्रंथ है, इसमें घटनाएं और वर्णन बहुत व्यापक हैं और 'रामकियन' भी अपने मूल रूप में पर्याप्त विस्तृत है, किंतु स्वामी सत्यानंद पुरी द्वारा उस ग्रंथ की अंग्रेजी में संक्षिप्त प्रस्तुति की

हिंदी में अनुवादित पुस्तक 'रामकीर्ति' को मैंने तुलनात्मक अध्ययन का आधार बनाया है।

तुलनात्मक अध्ययन के लिए रामकीर्ति में वर्णित प्रसंग और घटनाएं ही ली गई हैं और उन्हीं को वाल्मीकि रामायण में खोजने का प्रयास किया गया है। इन घटनाओं में कहाँ–कहाँ पर समानता रही है और कहाँ–कहाँ पर अंतर है, अगर अंतर है तो संभवतः उसका कारण क्या रहा, इन सब बातों की जाँच–परख की गई है। पाठकों की रुचि को समझते हुए इसमें मैंने उन प्रसंगों और घटनाओं को भी प्रस्तुत किया है जो रामकीर्ति में तो हैं लेकिन रामायण में कहीं वर्णित नहीं हैं।

वाल्मीकि रामायण के लिए संक्षिप्त शब्द वा. और रामकीर्ति के लिए रा. का प्रयोग किया गया है।

'आपकी दिव्य कृपा से ही सब कार्य संभव होते हैं।' परम चेतना एवं समर्थ सद्‌गुरु श्री रामचंद्रजी महाराज (बाबूजी) की दिव्य कृपा के प्रति कोटिशः नमन। समय–समय पर प्रेरित एवं प्रोत्साहित करने वाले श्रद्धेय गुरुवर प्रो. पूरन चंद टंडन जी के लिए 'धन्यवाद, आभार' शब्द लघु लगते हैं।

मैं ह्रदय से आभार प्रकट करती हूँ प्रो. सत्यव्रत शास्त्री जी का जिन्होंने इस पुस्तक के प्राक्कथन को लिखना स्वीकार किया। पद्‌मभूषण और राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त, ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित, महामहोपाध्याय विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड, दिल्ली विश्वविद्यालय के सम्मानित आचार्य तथा पुरी (उड़ीसा) के श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. शास्त्री ने जब इसका प्राक्कथन लिखना स्वीकार किया, मैं प्रसन्नता से अभिभूत हो गई।

भारतीय राजदूतवास, बैंकॉक के धीर, गंभीर, मृदुभाषी एवं हिन्दी प्रेमी माननीय राजदूत श्री भगवंत सिंह विश्नोई तथा डी.सी.एम. पद पर कार्यरत श्री अब्बागनी रामू जी के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। जब मैंने से इस पुस्तक के प्रकाशन के संदर्भ में उनके समक्ष प्रस्ताव रखा तो जिस सहजता और प्रसन्नता से उन्होंने इसके प्रकाशन में रुचि दिखाई, उसने मेरे उत्साह को और बढ़ा दिया। राजदूतावास के काउंसलर श्री प्रवीण कुमार जी तथा अधिकारी श्रीमती पुष्पा कुमार जी द्वारा प्रकाशन के लिए किए जाने वाले प्रयासों के प्रति विनम्र धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

अपने जीवन–सहचर श्री राजेन्द्र कुमार के लिए धन्यवाद लिखना उनके द्वारा किए गए सहयोग को कम कर देना होगा। उनका सांसारिक जीवन में सहयोग तो कदम–कदम पर मिला ही, किंतु प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से मेरे लेखकीय व्यक्तित्व को सँवारने में उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। जब 'रामकीर्ति (रामकियन) रामायण का थाई रूप' का प्रकाशन संपन्न हो गया, तब वाल्मीकि रामायण से थाई रामायण की तुलना करने का प्रथम विचार उनके द्वारा ही दिया गया।

किसी काम का संपन्न होना एक टीम वर्क होता है। कुछ लोगों का प्रत्यक्ष सहयोग होता है और कुछ का अप्रत्यक्ष सहयोग। अग्रज श्री अमरेन्द्र नारायण जी, आचार्य चिरापत प्रपंडविद्या जी, श्री सुशील कुमार धानुका जी तथा डा. मिथिलेश कुमारी मिश्र के सहयोग के प्रति मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ। पुस्तक के कलेवर को सुंदर स्वरूप प्रदान करने में मेरे साथी डॉ बंडित अरोमान (Dr. Bundit Aroman)एवं मेरे लाडले दौहित्र शिवम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ बंडित को बहुत–बहुत धन्यवाद और शिवम के लिए मेरा विशेष आशीर्वाद।

अथक परिश्रम के परिणाम को पुस्तक के रूप में हिन्दी प्रेमियों को सौंपते हुए असीम एवं सुखद आनन्द की जो अनुभूति हो रही है, उसका वर्णन संभव नहीं। आशा करती हूँ कि सहृदय पाठक इससे अवश्य लाभान्वित होंगे। सुझावों का स्वागत रहेगा।

19. 07. 2016

गुरु पूर्णिमा

डॉ. करुणा शर्मा

बैंकॉक, थाईलैंड

karunajee1957@gmail.com

विषय–सूची

विषय **पृष्ठ संख्या**

प्रथम भाग–वाल्मीकि रामायण और उसका बदलता स्वरूप

- महर्षि वाल्मीकि 3
- रामायण की रचना का प्रेरणा स्त्रोत 6
- रामायण की महत्ता 9
- रामायण का बदलता स्वरूप 11
- थाई रामायण में हुए परिवर्तन का कारण 17
- स्वामी सत्यानंद पुरी का संक्षिप्त जीवन परिचय 19
- रामकीर्ति के संदर्भ में स्वामी सत्यानंद पुरी के विचार 20

द्वितीय भाग–वाल्मीकि रामायण और रामकीर्ति का तुलनात्मक अध्ययन 27

- अयोध्या का प्रथम राजा 29
- राम और उनके भाईयों का जन्म 32
- लंका तथा रावण द्वारा उसकी प्राप्ति 36
- गौतम मुनि और अहल्या प्रसंग 39
- बाली और सुग्रीव का जन्म 43
- हनुमान का जन्म 47
- सीता का जन्म 52
- ताटका वध 56
- राम और सीता का विवाह 59
- राम–परशुराम प्रसंग 63

- राम वनवास 65
- राम की चरणपादुकाओं का अधिष्ठापन 71
- राम का दंडकारण्य के लिए प्रस्थान 77
- शूपर्णखा का आगमन और खर–दूषण वध 79
- सीता का अपहरण 84
- सीता की खोज 91
- शबरी प्रसंग 95
- हनुमान की राम से भेंट 98
- राम की सुग्रीव से भेंट 100
- वाली वध 106
- युद्ध की तैयारी 111
- संपाति प्रसंग 114
- हनुमान की लंका यात्रा और उनके साहसिक कार्य 118
- हनुमान की सीता से भेंट और लंका दहन 123
- विभीषण का निष्कासन 131
- सेतु निर्माण 135
- लंका की किलाबंदी 138
- कुंभकर्ण वध 141
- इंद्रजित वध 149
- रावण वध 161
- सीता की अग्नि परीक्षा 191
- राम की अयोध्या वापसी 196
- सीता का निर्वासन 202
- लव और कुश का जन्म 210
- राम का अश्वमेध यज्ञ और सीता का रसातल में प्रवेश 213

तृतीय भाग—रामकीर्ति के वे प्रसंग जो वाल्मीकि—रामायण में नहीं हैं। 225

- दसकंठ का पूर्ववृत्त 226
- दसकंठ का मंडो के साथ विवाह 227
- अंगद का जन्म 230
- दसकंठ का अमरत्व 231
- राम का अपहरण और मैयराव वध 232
- लंका में विद्रोह 237
- राम का जंगल में प्रवास 241
- राम और सीता का पुनर्मिलन 243

प्रथम भाग

वाल्मीकि रामायण
और
उसका बदलता स्वरूप

महर्षि वाल्मीकि

चौबीस सहस्त्र श्लोकों, पाँच सौ सर्गों, सात कांडों में श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की रचना करने वाले महर्षि वाल्मीकि का नाम आदि कवि के रूप में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वाल्मीकि, व्यास और कालिदास, ये तीनों भारत के सांस्कृतिक निर्माता माने जाते हैं, इनमें भी वाल्मीकि सर्वश्रेष्ठ **स्**थान के अधिकारी स्वीकार किए जाते हैं। उन्होंने उत्तर और दक्षिण के मध्य सांस्कृतिक सेतु का कार्य किया। वे ही ऐसे प्रथम कवि थे जिन्होंने सभ्य, अर्द्धसभ्य और असभ्य जातियों के आचार–व्यवहार का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया और उनमें पारस्परिक आदान–प्रदान की दिशा निर्धारित की। उनके द्वारा प्रतिपादित जीवन–दर्शन और चरित्र सामान्य जनों के लिए आदर्श बने। इन सबसे ज्ञात होता है कि रामायण के रचनाकार वाल्मीकि अपनी रचना के माध्यम से जन–जन की रग में बसे हैं। किंतु यह देखकर विस्मित रह जाना पड़ता है कि वाल्मीकि की रचना ने अपनी सर्वोच्चता और श्रेष्ठता के आवरण में अपने रचनाकार के जीवन को ही छिपा लिया। रामायण की चर्चा तो अपने सृजन के समय से ही होती रही लेकिन रचनाकार के जीवन के संबंध में जानने के लिए विरले ही उत्सुक दिखाई दिए। रामकथा से संबंधित साहित्य का सृजन करने वाले सहित्यकारों ने इसके रचनाकार वाल्मीकि के प्रति श्रद्धा–सुमन अवश्य अर्पित किए किंतु उनको लेकर वे बहुत जिज्ञासु नहीं दिखाई दिए। यही कारण रहा कि वाल्मीकि के विषय में किसी प्रभावपूर्ण रचना का सृजन नहीं हुआ। परिणामस्वरूप ऋषि के जीवन के प्रति अल्पज्ञता बनी रही और रचनाकार के संबंध में अलग–अलग प्रकार की धारणाएं सामने आने लगीं। उनके संबंध में कल्पित कथाओं का सृजन होने लगा। कपोल–कल्पित कथाओं के कारण सामान्य वर्ग में यह धारणा व्याप्त हो गई कि राम का उल्टा जप करके ऋषित्व प्राप्त करने वाले वाल्मीकि ने ही रामायण की रचना की थी। इस बात का भी प्रचार होने लगा कि दीर्घ काल तक तपस्या में रत रहे ऋषि के शरीर पर बांबियों ने घर बना लिया था, इसीलिए उन्हें वाल्मीकि कहा जाने लगा। वाल्मीकि शब्द की व्युत्पत्ति 'वल्मीके भवः इति वाल्मीकि' के आधार पर ही अनेक कथाएं उनसे जुड़ गईं। कोई उन्हें ब्राह्मण मानने

लगा तो कोई उनका संबंध शूद्र अथवा दस्यु से जोड़ने लगा। यह तो एक लोकमान्य तथ्य है कि जब व्यक्ति बहुत लोकप्रिय हो जाता है, तब हर व्यक्ति उससे संबंध जोड़ना चाहता है, चाहे वह रूप कोई भी हो।

संस्कृत ललित साहित्य का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वाल्मीकि कालिदास से लेकर भवभूति के समय तक मंत्रदृष्टा, आदिकवि एवं प्रचेता के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध रहे। वाल्मीकि–रामायण के उत्तरकांड में वाल्मीकि को प्रचेता का दसवाँ पुत्र कहा गया है। वे सभी विद्याओं में दक्ष एवं ब्रह्मोपदेष्टा के रूप में भी जाने गए। यद्यपि अत्यधिक लोकप्रियता के कारण महर्षि वाल्मीकि के अनेक रूप जैसे–वैदिक वैयाकरण वाल्मीकि, प्राचेतस एवं भार्गव वाल्मीकि, सुपर्ण वाल्मीकि, ब्रह्मघ्न शिवभक्त वाल्मीकि, प्राकृत वैयाकरण वाल्मीकि, ब्रह्मा–पुत्र एवं ब्रह्मावतार वाल्मीकि, दस्यु वाल्मीकि, श्वपच वाल्मीकि आदि भारतीय साहित्य एवं जनश्रुतियों में उपलब्ध हैं तथापि आमजनों में वे दस्यु वाल्मीकि के रूप में अत्यधिक मान्य हैं। वाल्मीकि के दस्यु जीवन का सर्वप्रथम उल्लेख स्कंदपुराण के वैष्णव खंड, आवन्त्य खंड, प्रभास खंड तथा नोगर खंड में मिलता है। वहाँ उनके जीवन की कुछ कथाओं में उन्हें प्राथमिक जीवन में दस्यु के रूप में दिखाया गया है। मुरारि कवि ने 'अनर्घराघव' नाटक में वाल्मीकि की उत्पत्ति वल्मीक से मानी है। इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि छठी–सातवीं शताब्दी तक वाल्मीकि विषयक कोई कथा प्रचलित नहीं थी और उनके नाम की व्युत्पत्ति भी साहित्य में नहीं की गई थी। अनेक नाटकों एवं काव्यों में जो उनके दस्यु जीवन से संबंधित कथाओं का वर्णन मिलता है, उन पर विविध पुराणों एवं रामायणों का प्रभाव है। चूंकि पुराणों का प्रभाव भारतीय जनजीवन पर बहुत अधिक रहा, अतः उनमें वर्णित वाल्मीकि से संबंधित कथाएं इतनी अधिक लोकप्रिय हो गईं कि ऋषि का वास्तविक स्वरूप छिप गया।

आदिकवि वाल्मीकि कहाँ रहते थे, इस तथ्य को निश्चित करने के लिए उनकी रामायण और उससे संबंधित अन्य साहित्य को आधार बनाया गया है। वाल्मीकि–रामायण के बालकांड में कहा गया है कि ऋषि

वाल्मीकि स्नानार्थ गंगा के समीप तमसा के तट पर जाते हैं।[1] उत्तरकांड में राम लक्ष्मण से वाल्मीकि के आश्रम की स्थिति इसप्रकार कहते हैं—गंगा के पार दूसरी ओर तमसा के किनारे वाल्मीकि का दिव्य आश्रम है।[2] कवि कालिदास ने भी वाल्मीकि का आश्रम गंगा के पार तमसा के तट पर ही माना है। अयोध्याकांड में उल्लेख हैं—राम जब वनवास का आदेश प्राप्त करके अयोध्या नगरी से प्रस्थान करते हैं तब वे प्रजा के साथ अपनी प्रथम रात्रि तमसा नदी के तट पर ही व्यतीत करते हैं। रात के समय वे सोई प्रजा को छोड़कर इस तमसा नदी को पार करते हैं।[3] इस बात की पुष्टि आधुनिक प्रमाणों से भी हो जाती है। 'इलाहाबाद जिले में मेजारोड नामक रेलवे स्टेशन से पाँच किलोमीटर दूरी पर स्थित सिरसा नामक कस्बा है जिसे 'सिरसा बाजार' भी कहते हैं। सिरसा बाजार से लगभग मिला हुआ, उससे पश्चिम दिशा में सटा हुआ 'उपरौंडा' नामक एक गाँव है। इस गाँव के पश्चिम में गंगा और तमसा के संगम के समीप, तमसा के दाँये किनारे पर आज भी महर्षि वाल्मीकि का आश्रम है।[4] इस तथ्य से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि वे तमसा नदी के किनारे रहने वाले एक तपोनिष्ठ ऋषि थे और इसी स्थान पर उन्होंने रामायण की रचना की थी।

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि को आदि कवि और रामायण को आदिकाव्य कहा जाता है। वाल्मीकि के काल को निश्चित करने के लिए रामायण के रचनाकाल पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है। रामायण के दो रूप माने जाते हैं—1. आदि रामायण 2. परिवर्द्धित अथवा प्रचलित रामायण। वाल्मीकि का समय 'आदि रामायण' को ध्यान में रखकर निश्चित करने का प्रयास किया गया है। पाश्चात्य विद्वान विलियम जॉन 'आदि रामायण' का समय 2029 ईसा पूर्व मानते हैं, जबकि टोड 1100 ईसा पूर्व और गोरोसियो 13वीं शताब्दी ईसा पूर्व स्वीकारते हैं। डा. याकोबी

---

1 वा. रा. बा. 2.3

2 वा. रा. उ. 45.17—18

3 वा. रा. अयो. 46.1, 16.28

4 महर्षि वाल्मीकि—एक समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ मंजुला सचदेव, पृ सं 100

रामायण को महाभारत तथा बुद्ध से पूर्व की रचना मानते हैं। उनके मतानुसार प्रचलित रामायण का समय ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी है और 'आदि रामायण' का समय ईसा पूर्व छठी तथा आठवीं शताब्दी का मध्य है। इसके संबंध में जो तथ्य याकोबी ने प्रस्तुत किए, उन्हें काटते हुए ए. बी. कीथ आदि रामायण का समय ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी मानते हैं।

भारतीय विद्वानों में श्री चिंतामणि विनायक वैद्य रामायण को बुद्ध से पूर्व का स्वीकार करते हैं। श्री कृष्ण कुमार ओझा तथा रामाश्रय शर्मा भी इसे बुद्ध से पूर्व की रचना मानते हैं। बुद्ध के जन्म से पूर्व इसकी रचना होने का एक आधार यह भी माना जाता है कि जैन तथा बौद्ध ग्रंथों में राम कथा के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। बौद्धों ने ईसवी सन् से कई शताब्दी पहले राम को बोधिसत्व मानकर रामकथा की लोकप्रियता और प्रभाव का परिचय दिया है। किंतु डॉ सत्यव्रत शास्त्री रामायण का काल पाणिनि के बाद का मानते हैं।

इसप्रकार पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने अपनी–अपनी युक्तियों के आधार पर वाल्मीकि और उनकी रचना का समय निर्धारित करने का प्रयास किया है किंतु इस बात पर समालोचकों में अभी तक सहमति नहीं बनी है। परंतु एक बात पर सभी सहमत हैं कि यह ग्रंथ ढाई हजार वर्ष पूर्व लिखा गया है।

इस बात से भी प्रायः लोग सहमत हैं कि रामायण अन्य सभी काव्यों से प्राचीन है और भारत के कई प्रांतों में इसका प्रचार कई शताब्दी ईसा पूर्व हो चुका था। रामायण प्रथमतः मौखिक रूप में प्रचलित रही होगी और इसमें समय–समय पर प्रक्षेप भी होते रहे होंगे, इसी कारण रामायण के जो तीन रूप–पश्चिमोत्तरी, दाक्षिणात्य और गौडीय–आज प्राप्त हैं, उनके पाठों में भी पर्याप्त अंतर मिलता है। परिणामस्वरूप रामायण का मूल स्वरूप आज तक भी निर्धारित नहीं हो सका है और वाल्मीकि के जन्म काल के विषय में भी विद्वानों में सहमति नहीं बन पाई है।

●

रामायण की रचना का प्रेरणास्त्रोत

महर्षि वाल्मीकि को रामायण रचने की प्रेरणा कैसे हुई, इस तथ्य से संबंधित जानकारी उनकी रामायण के बालकांड में ही उपलब्ध है। इस कांड के प्रथम सर्ग के अनुसार तपस्वी वाल्मीकि ने देवमुनि नारद से पूछा, 'इस समय इस संसार में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है?'[5] तब नारद ने उनसे कहा, 'इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं जो लोगों में राम नाम से विख्यात हैं, वे ही मन को वश में रखने वाले, महाबलवान, कांतिमान, धैर्यवान और जितेन्द्रिय हैं' और बाद में उनकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने उस समय में प्रचलित राम कथा में राम के वनगमन से लेकर राज्यप्राप्ति पर्यंत तक की कथा सुनाई।[6] वाल्मीकि उस कथा को सुनने के बाद स्नानार्थ तमसा नदी के किनारे चले गए। वहाँ उन्होंने रमणीय कानन में काममोहित एक क्रौंच मिथुन को देखा। उसी समय एक निषाद ने वहाँ आकर नर क्रौंच का वध कर दिया। पति के वियोग से विह्वल क्रौंची के हृदयविदारक करुणक्रंदन को सुनकर वाल्मीकि का हृदय द्रवित हो गया। 'यह अधर्म हुआ है' ऐसा सोचते हुए उनके मुख से अनुष्टुप् छंद में यह श्लोक प्रस्फुटित हुआ–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।[7]

हे निषाद! तुम चिरस्थाई प्रतिष्ठा को प्राप्त न हो क्योंकि तुमने काममोहित इस क्रौंच के जोड़े में से एक का वध कर दिया है। स्नान के पश्चात् वाल्मीकि अपने आश्रम में आए। किंतु उनका ध्यान अकस्मात् घटी इस घटना पर ही केंद्रित रहा। तभी ब्रह्मा जी वहाँ आए और उनसे कहा, 'हे ब्राह्मण! मेरे आदेश से सरस्वती तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हुई हैं। हे श्रेष्ठ

5 वा. रा. बा.1. 2–5

6 वा. रा. बा. 1. 8–97

7 वा. रा. बा. 2. 15

ऋषि! तुम राम का चरित श्लोकबद्ध करो।[8] जैसा तुमने नारद से सुना है, वैसा ही उनके चरित्र का चित्रण करो। श्री राम, लक्ष्मण, सीता और राक्षसों से संबंधित सब गुप्त वृतांत तुम्हें ज्ञात हो जाएंगे।'[9] ब्रह्मा के चले जाने के पश्चात् वाल्मीकि ध्यानस्थ हो गए और योग का आश्रय लेकर उन्होंने सभी चरित्रों का यथार्थ रूप से निरीक्षण किया। उन्हें राम के जन्म से लेकर सीता निर्वासन तक की सभी घटनाएं ज्ञात हो गईं। श्रीराम जी ने जब वन से लौटकर राज्य का शासन अपने हाथ में ले लिया, उसके बाद वाल्मीकि ने 24 हजार श्लोकों, पाँच सौ सर्गों तथा उत्तरसहित सात कांडों में इस जगतप्रतिष्ठित महाकाव्य 'रामायण' जिसका एक नाम पौलस्त्यवध अथवा दशाननवध[10] भी था, की रचना की।

यद्यपि वाल्मीकि राम के अवतार के स्वरूप पर विश्वास करते थे, तथापि उन्होंने अपने नायक के अद्‌भुत, रहस्यमय एवं दैवीय शक्ति से युक्त स्वरूप का वर्णन नहीं किया। उन्हें मानवीय भावनाओं तथा मानवीय सामर्थ्यसंपन्न मनुष्य के रूप में ही चित्रित किया। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि ऋषि वाल्मीकि जानते थे कि यदि उनका अवतारस्वरूप वर्णित किया गया तो लोग उनका नाम–स्मरण ही करेंगे, अनुकरण नहीं। ऋषि चाहते थे कि लोग मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आचरण का अनुकरण करें ताकि एक स्वस्थ समाज की स्थापना हो सके। वाल्मीकि की सुंदर रचना पर विमुग्ध होकर प्रोफेसर ग्रिफिथ अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में कहते हैं, 'संसार में काव्य ग्रंथों की कमी नहीं, परंतु आचरण की पवित्रता का रामायण में जिस दृढ़ता, मनोहरता और रसिकता से निर्वाह हुआ है, ऐसा अन्यत्र सुलभ नहीं। काव्य संसार में यह ही ऐसा ग्रंथ है, जो मानव–हृदय में सौंदर्यपूर्ण शैली में सत्य, प्रेम उत्पन्न करने की शक्ति रखता है।'[11]

---

8 वा. रा. बा. 2. 31–32

9 वही 33–34.

10 वा. रा. बा. 4. 5–7

11 रामकथा की ऐतिहासिकता, विश्वनाथ लिमए, पृ 14

रामायण में वर्णित राम के चरित्र की प्रशंसा तो सभी ने की है। श्री विश्वनाथ लिमए भी राम के सुंदर चरित्र के बारे में लिखते हैं, 'रामायण की हृदय को स्पर्श करने वाली, मस्तिष्क को शांत रखने वाली, आर्य जाति में गौरवपूर्ण उत्तरदायित्व की रक्षा करने वाली बात तो राम की ऐश्वर्य तथा माधुर्यात्मक चरित्र चित्रावली में ही है। वही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, ज्ञात–अज्ञात ढंग से उसके संपूर्ण सत्य, तथ्य और कवित्व को समुज्ज्वल करने वाली है। किंतु राम की चारुचरितावली में भी राम की संपूर्ण विशेषता तो उनके क्षत्रियोचित मानवीय नैतिक मर्यादावाद में बंद है। इसी में उनके अवतारवाद की सार्थकता है और यही बात मुख्यतः रामायण को रामायण बनाने वाली है। भक्तों की माला के प्रत्येक मनके के साथ ही मध्यमावाणी द्वारा उच्चारित होने वाली राम की गुणगरिमा भी इसी में सन्निहित है।'[12]

●

रामायण की महत्ता

कभी–कभी विद्वज्जनों में इस बात को लेकर भी चर्चा होती है कि रामायण में वर्णित राम, सीता और लक्ष्मण जैसे चरित्र ऐतिहासिक हैं अथवा नहीं। अरबी–फारसी में मसीह नामक एक कवि ने रामायण की पूरी कथा को फारसी में काव्यबद्ध किया था, 'दी बाचाए रामायण' जिसमें 346 वें शेर में स्पष्ट लिखा है, 'के ई अफसाना तरीख अस्त ई जा।' अर्थात् रामायण एक अमिट ऐतिहासिक कथा (तारीखे अफसाना) बन चुकी है। इसमें वर्णित चरित्र कैसे थे, क्या थे, इस तर्क में पड़े बिना मेरा तो यही मानना है कि यदि आज ये चरित्र अपना महत्व और अस्तित्व स्थापित किए हुए हैं, तो इसका एकमात्र आधार रामायण ही है। यह रामायण ही है जिसका आधार लेकर रचे गए अनगिनत साहित्य रत्न न केवल भारत में, बल्कि संपूर्ण विश्व के साहित्य–भंडार की शोभा बढ़ा रहे हैं। कई देशों के मंदिरों, स्मारकों एवं पूजास्थलों में वास्तु, मूर्ति, चित्र और संगीत के प्रदर्शन रामायण के जीवंत प्रभाव के साक्षी हैं। आदिकवि के काव्य की लोकप्रियता

---

[12] रामकथा की ऐतिहासिकता, विश्वनाथ लिमए, पृ 14

और व्यापकता केवल भारतीय सीमाओं में ही बद्ध नहीं रही अपितु विदेशों में भी इसका प्रभाव पड़ा। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा से संबंधित जिन ग्रंथों की रचना हुई है तथा एशिया के दक्षिण–पूर्व, पूर्व तथा उत्तर–पश्चिम के देशों एवं यूरोप के इंगलैंड, फ्रांस, रूस, जर्मनी, इटली, डेनमार्क, स्पेन आदि देशों में जो भी रामविषयक साहित्य एवं सामग्री उपलब्ध है, उन सबका आधार पूर्ण अथवा आंशिक रूप से रामायण ही है। दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों की संस्कृति और ललित कलाओं पर रामायण के प्रभाव और अनुकरण को देखकर विद्वानों का विचार है कि संसार का बहुत सा भाग वाल्मीकि के महाकाव्य पर ही निर्मित है और अगर कोई गाथा है जिसे पूरा एशिया अपना कह सकता है, वह राम गाथा है।

रामायण चाहे जब भी रची गई हो, लेकिन यह तो इस रचना का अद्‌भुत चमत्कार ही कहा जाएगा कि जब से यह रची गई, तब से लेकर आज तक यह साहित्यकारों के लिए अक्षय प्रेरणा का स्त्रोत ही बनी हुई है। संस्कृत भाषा में कालिदास, भवभूति जैसे अनेक कवियों ने महाकाव्य, खंडकाव्य, चम्पूकाव्य, नाटक आदि का सृजन किया, तो दूसरी अन्य भाषाओं में अनेक कवियों ने इसे आधार बनाकर अनेक रामायणों की रचना की जैसे तमिल की कंब रामायण, बंगला की कृत्तिवास, मराठी की भावार्थ रामायण, तेलगु की श्रीरंगनाथ रामायण, कन्नड़ की रामचंद्र चरित पुराणम्, मलयालम की अध्यात्म रामायण, उर्दु की चकबस्त रचित, अवधी की श्रीरामचरितमानस आदि। आधुनिक युग में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' इसका सटीक उदाहरण है। 'साकेत' में कवि ने लिखा है,

'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।

कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है।।'

कहने का अर्थ है कि राम का चरित आज भी परवर्ती कवियों की प्रतिभा का मूल उत्स और प्रेरणा का स्त्रोत बना हुआ है।

कवियों में कवि, विद्वानों में विद्वान, सहृदयों में सहृदय, वैज्ञानिकों में वैज्ञानिक, ऐसी बहुमुखी प्रतिभा के धनी, समस्त भारतीय विधाओं के महान उन्नायक राजा भोज अपने 'चंपू रामायण' के प्रारंभ में

राम कथा के चिरन्तन आकर्षण की घोषणा करते हुए पूछते हैं, 'यदि भगीरथ की कठोर तपस्या से किसी प्राचीन काल में लाई गई गंगा के प्रवाह से चुल्लू भर जल लेकर आज तक के मानव अपने पितरों का तर्पण कर सकते हैं, तो भला मैं भी वैसे ही प्राचीन युग के ऋषि वाल्मीकि के द्वारा संसार में अवतरित की गई काव्य–गंगा में निहित राम की अनंत कीर्ति–गाथा में से थोड़ा–सा अंश लेकर मानव–जाति को आनंद विभोर क्यों नहीं कर सकता?'[13] युग–युगांतरों से वंदित इस ऋषि के ऋषित्व एवं कवित्व पर सामान्यवर्ग एवं विद्वत्वर्ग दोनों ही नतमस्तक हैं। शताब्दियाँ बीत जाने पर भी रामकथा जनमानस पर अपना प्रभाव स्थापित किए हुए है, उनके जीवन का अभिन्न अंग बने हुए है।

अलंकार के उद्भट विद्वान मम्मटाचार्य ने काव्यप्रकाश में काव्य का लक्षण देते हुए कहा है 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।' अगर यश की दृष्टि से विचार किया जाए तो इस ग्रंथ और इसके रचनाकार को सर्वोत्तम स्थान प्राप्त है। उनके बाद भी जिन कवियों ने रामकथा विषयक ग्रंथों की रचना की, वे सब भी वाल्मीकि के ऋणी हैं। इस ग्रंथ को पढ़कर पाठक अपनी असंख्य कामनाओं की पूर्ति करता है, अतः अर्थ की दृष्टि से भी इस ग्रंथ का उत्तम स्थान है। दैनिक जीवन में व्यक्ति को कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसके लिए भी यह मार्गदर्शक का काम करता है। कवि वाल्मीकि ने अत्यंत निपुणता से शिवेतर घटनाओं की क्षति का मंगलमय–प्रशस्त–उपसंहार किया है। कांता–सम्मत उपदेशों की तो यह ग्रंथ खान ही है क्योंकि कदम–कदम पर इसमें स्पष्ट संकेत है कि सत्य और धर्म के पालन से मनुष्य का कल्याण होता है।

●

रामायण का बदलता स्वरूप

जैसाकि ऊपर बताया गया है कि रामायण का प्रभाव दूसरे देशों खासकर एशियाई देशों में सर्वाधिक देखने को मिलता है। इन देशों पर न

---

[13] चंपू रामायण, बालकांड–4

केवल वाल्मीकि 'रामायण' का प्रभाव पड़ा, बल्कि भारत में रची गईं अन्य रामायणों का प्रभाव भी पड़ा। एशियाई देशों में रामकथा का जो स्वरूप विकसित हुआ वह इन सभी रामायणों का अच्छा सम्मिश्रण था जिसमें स्थानीय छोटी–छोटी कथाओं का भी समावेश हो गया। जिन–जिन मार्गों से होती हुई राम कथा दूसरे देशों में पहुँची, उनका प्रभाव और उस देश की अपनी संस्कृति का प्रभाव भी उस पर पड़ा जिससे उसके स्वरूप में परिवर्तन आता चला गया। रामकथा का स्वरूप हर देश में इतना बदल गया कि वह दूसरों के स्वरूप से बहुत कुछ भिन्न लगने लगा। अपने मूल तत्व को बिना क्षति पहुँचाए इसने अपना अलग रूप और आकार धारण कर लिया। इन देशों तक आते–आते सबसे पहले तो उसके नाम में ही परिवर्तन हो गया जैसे इंडोनेशिया में 'राम ककविन', म्यन्मार में 'राम थग्यन् अथवा रामावत्थु, थाईलैंड में 'रामकियन', लाओस में 'फ्र लक् फ्र लाम', कंबोडिया में 'रामाकेर् (ति)', मलेशिया में इसे 'हिकायत सरी राम' कहा गया। जैसे कथा के नाम में परिवर्तन हुआ, वैसे ही पात्रों के नामों में भी परिवर्तन हुआ। उदाहरणार्थ वाल्मीकि रामायण में जिस पात्र को दसग्रीव तथा रावण कहा गया, वही पात्र म्यन्मार की 'रामावत्थु' में दत्थागिरि, थाई 'रामकियन' में थोसाकन अथवा दसकंठ, मलेशियन 'हिकायत सरी राम' में रुवाना अथवा दुवाना के नाम से जाना जाने लगा। रावण के वध से संबंधित घटनाएं विभिन्न रामायणों में किस तरह वर्णित हैं, उदाहरण के रूप में इसका प्रस्तुतीकरण डॉ सत्यव्रत शास्त्री के लेख[14] से किया जा रहा है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार जब राम और रावण के बीच भयंकर युद्ध हो रहा था और राम रावण को मार नहीं पा रहे थे, तब उनके बीच हो रहे युद्ध को देखने के लिए उपस्थित महर्षि अगस्त्य राम को चिन्तित देखकर उनके पास गए और उनसे परम पवित्र और संपूर्ण शत्रुओं का नाश करने वाले 'आदित्यहृदय' नामक मंत्र का एकाग्रचित्त होकर जप करने के लिए कहा। उन्होंने यह भी बताया कि इस मंत्र का तीन बार जप करने पर वे उसी क्षण रावण का वध कर सकेंगे। उनका

---

[14] 'भारतीय अध्ययन केंद्र, बैंकॉक' द्वारा 2015 में प्रकाशित पत्रिका का विशेष अंक।

उपदेश सुनकर राम का शोक दूर हो गया। शुद्धचित्त से 'आदित्यहृदय' को धारण करने के बाद वे पुनः धनुष उठाकर रावण का वध करने का निश्चय कर युद्धक्षेत्र की ओर बढ़े। राम और रावण के मध्य क्रूरतापूर्ण युद्ध आरंभ हुआ। राम रावण के एक के बाद दूसरा सिर काटने लगे लेकिन राम जैसे ही एक सिर काटते, रावण के वैसा ही दूसरा सिर फिर निकल आता। राम तेजी से उसे काटते लेकिन फिर वैसा ही दूसरा सिर निकलता देख राम आश्चर्यचकित और संभ्रमित हो गए। तब उनके सारथि मातलि ने उनसे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने के लिए कहा। ब्रह्मास्त्र का स्मरण होते ही राम ने उस मर्मभेदी बाण को रावण पर चला दिया जिसने उसके हृदय को विदीर्ण कर उसे मार डाला।

रामकियन के अनुसार, ये थोसाकन (दसकंठ) के सिर नहीं थे, ये उसकी भुजाएं थीं जो बार–बार कट जाती थीं और पुनः शीघ्रता से जुड़ जाती थीं। इस बात से अत्यंत आश्चर्यचकित राम को बिभेक ने बताया कि कोई भी हथियार थोसाकन को मार नहीं सकता क्योंकि उसकी आत्मा उसके शरीर से निकाली जा चुकी है जो उसके गुरु गोपुत्र के संरक्षण में रखी गई है। थोसाकन केवल तभी मर सकता है जब पात्र में रखी आत्मा को कुचलकर मार दिया जाए। हनुमान ने इस काम को करने की इच्छा व्यक्त की। राम को सतर्क करके वे अंगद को साथ लेकर थोसाकन के गुरु गोपुत्र के पास गये। बहुत ही चतुराई से हनुमान आत्मा के पात्र को गोपुत्र से ले आए। राम और थोसाकन के बीच फिर से युद्ध होने पर उन्होंने आत्मा को कुचल दिया और उसे समुद्र की रेत की गहराई में दबा दिया। उसके बाद ही राम ने ब्रह्मास्त्र छोड़कर थोसाकन को मार दिया।

मलेशिया की रामायण 'हिकायत सरी राम' में रावण की मृत्यु को लेकर एक असामान्य सी बात मिलती है कि रावण के दाँये कान के पीछे एक छोटा सा ग्यारहवाँ सिर भी था। राम के द्वारा भीषण युद्ध किए जाने के बाद भी जब रावण नहीं मरा तो सीता ने राम के पास संदेश भेजा कि रावण के इस ग्यारहवें सिर में ही उसके प्राण हैं। यही उसके प्राणों का आधार है। रावण तभी मृत्यु को प्राप्त हो सकता है, जब राम उस सिर पर घातक प्रहार करें। तब राम ने रावण के उस सिर को घायल किया और

उस घायल सिर के साथ उसे सरनदीव पर्वत पर पड़ा छोड़ दिया। वहीं जीवन ने रावण से धीरे–धीरे विदा ली।

इंडोनेशिया की राम ककविन में यह प्रसंग बिल्कुल अलग तरीके से वर्णित है। राम ने रावण पर बाणों की बरसात की लेकिन उनसे उसे कुछ भी क्षति नहीं पहुँची। उन बाणों का केवल इतना प्रभाव हुआ कि वह उनसे बचने के लिए पीछे तब तक हटता रहा जब तक वह दो चट्टानों के बीच में नहीं पहुँच गया। जैसे ही वह वहाँ पहुँचा, चट्टानें तेजी से उसकी ओर बढ़ती गईं और उन्होंने उसे अपने बीच दबोच लिया। ज्यों–ज्यों वह उनसे अपने को छुड़ाने की कोशिश करता, त्यों–त्यों उस पर उनकी पकड़ मजबूत होती जाती। उनके बीच फँस जाने पर अंततः उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। वे दोनों चट्टानें और कोई नहीं बल्कि उसकी अपनी बेटियाँ थीं जिन्हें उसने पहले मार दिया था। उनकी आत्माएं उससे बदला लेने के लिए प्रतीक्षा कर रही थीं। वह अवसर तब उनके हाथ में आ गया जब रावण राम के बाणों से बचने के लिए पीछे हटा था।

इसी प्रकार सीता भी रामायण की एक महत्वपूर्ण पात्र है। जिस तरह से रावण की मत्यु की घटना अलग–अलग रामायणों में वर्णित की गई है, उसी प्रकार सीता के जन्म की घटना भी दक्षिणपूर्व एशिया के रूपांतरों में अलग–अलग दिखाई देती है। इसे भी रामायण विशेषज्ञ प्रो. सत्यव्रत शास्त्री ने एक अन्य लेख[15] में इसप्रकार स्पष्ट किया है–

राम और हनुमान के बाद राम कथा की सबसे महत्वपूर्ण पात्र राम की पत्नी सीता हैं। उनके बिना राम कथा की कल्पना करना संभव नहीं है। आरंभ से अंत तक सीता की उपस्थिति दिखाई देती हैं, विशेष रूप से राम से उनके विवाह के बाद। वे कहानी का केंद्र बिंदु हैं जिनके इर्द–गिर्द कहानी आगे बढ़ती है।

---

15 "Sita—how she is depicted in the Rama story of Southeast Asia" Syamadesa Sanskritpurush Acharya Chirapat Prapandvidyah, 2013. Published by Silpakorn University, Bangkok

उनका जन्म ही रहस्यमय रहा है। वाल्मीकि ने वर्णित किया है कि जब जनक द्वारा भूमि पर हल चलाया जा रहा था, तब वे पृथ्वी से प्रकट हुई थीं। सीता नाम भी उन्हें उसी घटना के कारण प्राप्त हुआ क्योंकि सीता का शाब्दिक अर्थ ही है हल की रेखा। वे उनको अपने साथ मिथिला की राजधानी ले गए और उन्हें अपनी बेटी के रूप में अपना लिया।

दक्षिणपूर्व एशिया के रूपांतरों में उनके जन्म से संबंधित उनकी अपनी ही कहानियाँ हैं। थाई रामायण में उन्हें लक्ष्मी का अवतार माना गया है। जैसे भारतीय रूपांतरों में वर्णित है वैसे ही दक्षिणपूर्व एशिया के रूपांतरों में भी जनक द्वारा उन्हें धरती से प्राप्त किया माना जाता है, सिवाय इस अंतर के कि इससे पहले की घटनाएं जो दक्षिणपूर्व एशिया के रूपांतरों में वर्णित हैं वे भारतीय रूपांतरों में कहीं नहीं पाई जातीं।

लाओस के रूपांतर (Laotian Version) फ्र लक् फ्र राम (Phra Lak Phra Ram) में इंद्र की पत्नी रावण से बदला लेने के लिए उसकी पुत्री के रूप में जन्म लेती है क्योंकि रावण ने उसके पति इंद्र का रूप धारण करके उसके साथ बलात्कार किया था। जन्म लेने के तुरंत बाद ही वह चाकू से रावण पर हमला करना आरंभ कर देती है जिससे क्रुद्ध होकर रावण उसे जल में फेंकने की आज्ञा देता है। परंतु वह एक साधू द्वारा बचा ली जाती है जो उसे अपनी बेटी की तरह अपना लेता है।

लाओस के ही राम कथा के दूसरे रूपांतर ग्वेय थोराफी (Gvay Thoraphi) में भी इंद्र की पत्नी का उल्लेख मिलता है। उसमें वह अपने स्वयं के 'सुजाता' नाम से उल्लिखित है। वह स्वयं रावण की पुत्री के रूप में पुनः जन्म लेती है। यहाँ पर उसका रावण की गोद में प्रकट होना वर्णित है, कारण वही है जो दूसरे रूपांतरों में बताया गया है। उन ज्योतिषियों की राय पर जिन्होंने भविष्यवाणी की कि वह रावण की मृत्यु का कारण होगी, उसे एक सोने के बक्से में रख दिया जाता है और एक

बेड़े पर रखकर समुद्र में बहा दिया जाता है। बाद में उसे एक साधू द्वारा अपनी पुत्री के रूप में अपना लिया जाता है।

लाओस के दूसरे रूपांतर 'राम जातक(The Ram Jataka) में भी वह इंद्र की पत्नी के अवतार के रूप में उल्लिखित है, जिसे उसके पिता रावण द्वारा अपने भाई विभीषण की सलाह पर त्याग दिया जाता है क्योंकि विभीषण की भविष्यवाणी के अनुसार वह रावण के विनाश का कारण होगी। शिशु की रक्षा वन के देवी–देवताओं द्वारा की जाती है और बाद में उसे एक साधू द्वारा अपनी पुत्री के रूप में अपना लिया जाता है।

म्यन्मार के सबसे प्रसिद्ध रूपांतर' राम थग्यन (Rama Thagyan) में सीता को एक सुंदर स्वर्गिक युवती बताया गया है, जिससे रावण ने छेड़छाड़ करने की कोशिश की थी। वह उससे बच निकलती है, धरती पर नीचे आ जाती है, अग्नि प्रज्ज्वलित करती है और पुनः शिशु कन्या के रूप में जन्म लेने के लिए उसमें कूद जाती है। उसे लंका ले जाया जाता है, एक बक्से में रखा जाता है और भयानक रावण द्वारा समुद्र में बहा दिया जाता है। बक्सा लहरों द्वारा भूमि के एक टुकड़े पर पहुँच जाता है। राजा जनक उस समय ब्राह्मणों की सलाह पर तप के भाग के रूप में भूमि को हल से जोत रहे थे, वे उस बक्से और उसके अंदर रखे शिशु को देखते हैं और उसे अपनी पुत्री के रूप में अपना लेते हैं।

सीता के बहने का मूल प्रसंग ख्मेर (Khmer) के साहित्यिक रूपांतर 'रियाम के' अथवा 'रामकीर्ति' (Riam-ke or Ramakirti) में भी पाया जाता है। लेकिन वहाँ पर यह समुद्र नहीं है बल्कि यमुना नदी है। वहाँ वह रावण की पुत्री नहीं बताई गई है। यद्यपि राजा जनक द्वारा उसे अपनी पुत्री के रूप में अपनाना वहाँ भी पाया जाता है।

मलय की हिकायत सरी राम (Malay Hikayat Seri Ram) के अनुसार यह मंदोदरी नहीं थी जिसने कौए के रूप में राक्षसी द्वारा लाए गए हवन के खाद्य पदार्थ के टुकड़े को खाया था बल्कि यह

रावण था जिसने इसे स्वयं खाया था। इसके साथ ही वहाँ एक अन्य प्रसंग भी मिलता है जिसमें दसरथ का, रावण की पत्नी मंडुडकी(Mandudaki) जो दसरथ की अपनी पत्नी मंडुडरी (Mandudari) की प्रतिकृति थी, के साथ सोने का उल्लेख मिलता है। इन दो घटनाओं के परिणामस्वरूप रावण की पत्नी सीता को जन्म देती है। चूंकि ज्योतिषी भविष्यवाणी करते हैं कि उसकी नियति में रावण का विनाश निश्चित है, अतः उसे लोहे के एक बक्से में रखकर समुद्र में बहा दिया जाता है और अंततः वह दुर्वातिपूर्वा के महर्षि काली (Maharisi Kali of Durwatipurwa) की दत्तक पुत्री बन जाती है।

जावा की राम कथा के सरत काण्ड(Sarat Kanda) नामक रूपांतर में सीता को रावण की पुत्री के रूप में विष्णु की पत्नी मदंग (Madang)का पुनर्जन्म कहा गया है। वयंग सियाम (Wayang Siam) रूपांतर के अनुसार भगवान विष्णु की पत्नी, सीता अंदंग देवी (Sita Andang Dewi) अपने बलात्कारी सिराजुक (सिरांकक) (Sirajuk/sirancak)जो भविष्य का रावण है, से बदला लेने के लिए पृथ्वी पर स्वयं अवतार लेती हैं। वह रावण की पत्नी के मुख द्वारा उसके अंदर प्रवेश कर जाती हैं और उसे गर्भवती बना देती हैं। रावण के भाई की भविष्यवाणी पर कि वह घोर विपत्ति का कारण बनेगी, उसे एक जार में रखकर समुद्र में बहा दिया जाता है। अंततोगत्वा वह महर्षि कला अपि द्वारा खोज लिया जाता है और वह सीता देवी नाम से एक सुंदर कन्या के रूप में बड़ी होती हैं।

इसप्रकार दक्षिणपूर्व एशिया के रूपांतरों ने रामकथा में रावण और सीता के बारे में अपनी ही जादुई कहानियों व किंवदन्तियों का जाल बुन लिया है जिसकी पकड़ बहुत प्रभावी है। इसीप्रकार के परिवर्तन अन्य पात्रों के संदर्भ में भी देखे जा सकते हैं।

●

थाई रामायण में हुए परिवर्तन का कारण

इस संबंध में 'रामकीर्ति' विशेषज्ञा प्रो, स्रिसुरांग फूलथुफ्या (Professor Emeritus Srisurang Poolthupya) के अनुसार 'रामाकियन' भारतीय रामायण ग्रंथ है जो थाई भाषा में फिर से लिखा गया है। इसकी कथा राजा राम–प्रथम, (राजा बुद्ध योदफा चूलालॉक महान, King Buddha Yodfa Chulalok the Great) के शासनकाल में प्रायः होने वाले युद्धों को प्रतिबिम्बित करती है। जब राजा राम–प्रथम ने 1782 में बैंकॉक को अपनी राजधानी बनाया था, तब भी थाईयों और उनके उत्तर–पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी पडौसियों के बीच बहुधा युद्ध होते रहते थे। उस समय राजा राम–प्रथम ने अनुभव किया कि देश को ऐसे बुद्धिमान लोगों की आवश्यकता है जो साहस व धैर्य के साथ कठिन परिस्थितियों का मुकाबला करने में सक्षम हों।

थाई लोग रामायण के विषय में लगभग 13वीं शताब्दी से जानते थे। अयुथ्या राज्य के युद्ध में नष्ट होने के बाद रामायणी साहित्य के मात्र कुछ अंश ही बचे रह गए। अतः राजा राम प्रथम ने अनुभव किया कि थाई संस्कृति को दोबारा स्थापित किया जाए, विशेष रूप से साहित्य और कला के क्षेत्र में। इसलिए उन्होंने थाई कवियों को संगठित किया और 'रामकीर्ति' को इसप्रकार से रचने के लिए प्रेरित किया कि वह थाई मान्यताओं और सांस्कृतिक परंपराओं को व्यक्त कर सके। लेखिका का मानना है कि उन्होंने इस संबंध में अपने सुझाव भी दिए होंगे और उसके कुछ अंशों का सृजन भी किया होगा। लेकिन यह वास्तविकता है कि इसकी रचना उनके निरीक्षण में हुई और अंत में उन्होंने उसे अपनी स्वीकृति प्रदान की। तभी से यह रचना राजा राम–प्रथम की 'रामाकियन' के नाम से जानी जाती है।

राजा राम–प्रथम के शासनकाल में भी पड़ौसी देशों जैसे बर्मा (अब म्यॉमार), लाओस, कंबोडिया, मलय (अब मलेशिया) के साथ बहुत युद्ध होते थे। चूंकि बहुत से युद्धों से बचा नहीं जा सकता था, इसलिए भारतीय रामायण को थाई परिस्थितियों के अनुकूल रूपांतरित कर दिया गया। वीरता, सतर्कता, देशभक्ति और सबसे महत्वपूर्ण अनुशासन पर बल देने के लिए 'रामाकियन' में युद्ध संबंधी कई नए प्रसंग जोड़ दिए गए।

वाल्मीकि रामायण में उत्कृष्ट युद्धों के प्रसंग दस से अधिक नहीं हैं जबकि रामाकियन' में थोसाकन (दसकंठ) की मृत्यु से पहले पंद्रह से अधिक महत्वपूर्ण युद्धों का वर्णन है।' [16]

●

स्वामी सत्यानंद पुरी का संक्षिप्त जीवन परिचय

थाई–भारत कल्चरल लॉज के संस्थापक स्वामी सत्यानंद पुरी का जन्म 3 मार्च, 1902 को भारत के बंगाल राज्य में हुआ था। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की।

अपनी उपाधि प्राप्त करने के बाद, उन्होंने दो वर्ष तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्य किया। इस समय में उन्होंने दर्शनशास्त्र तथा संस्कृति पर कुछ पत्रिकाएं संपादित कीं और उन्होंने कलकत्ता में 'सोसाइटी ऑफ ओरियंटल कल्चर' की स्थापना की जिसके अध्यक्ष डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन थे। पौरोहित्य–दीक्षा लेने के कुछ ही समय बाद वे महान भारतीय कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के आग्रह पर सन् 1932 में भारत छोड़कर थाइलैंड चले आए।

यद्यपि थाईलैंड के लिए वे बिल्कुल अजनबी थे तथापि स्वामी सत्यानंद पुरी ने थोड़े ही समय में थाई लोगों और भारतीयों का दिल जीत लिया और साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों में उनसे सहायता और सहयोग प्राप्त किया।

यहाँ आने के तुरंत बाद, उन्होंने थाई भाषा सीखनी शुरू कर दी और छह महीने के अंदर ही उन्होंने भाषा पर पर्याप्त अधिकार कर लिया। इसी भाषा में उन्होंने चूलालोंकोर्न विश्वविद्यालय के एक समारोह में भाषण

---

16 'भारतीय अध्ययन केंद्र' थम्मासॉट विश्वविद्यालय, बैंकॉक द्वारा 2015 में प्रकाशित पत्रिका का विशेष अंक।

दिया जो महामहिम राजा प्रजाधिपॉक और रानी रंभाई बरनी (Their Majesties King Prajadhipok and Queen Rambhai Barni) की कृपालु उपस्थिति से सुशोभित था।

वे 3 मार्च 1942 को, जो संयोग से उनका जन्मदिन था, जापानी अधिकारियों के निमंत्रण पर सिंगापुर गए। वहाँ से वे टोकियो के लिए हवाईजहाज पर चढ़े और फिर समाचार आया कि आइस की खाड़ी में विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया। यह दिन था 24 मार्च 1942।

स्वामी सत्यानंद पुरी ने थाई भाषा में लिखित 'रामकीर्ति (रामकियन)' को संक्षेप में अंग्रेजी में प्रस्तुत किया।

●

'रामकीर्ति' के संदर्भ में स्वामी सत्यानंद पुरी के विचार

काव्यात्मक प्रतिभा की उन सभी श्रेष्ठ कृतियों में जिन्होंने संपूर्ण विश्व के साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है, कोई भी रामायण महाकाव्य से श्रेष्ठ नहीं हो सकती क्योंकि उसका विस्मयकारी प्रभाव भारत की सीमाएं पार करके अन्य देशों के धर्म, कला और साहित्य को भी कई अज्ञात शताब्दियों से सुव्यवस्थित रखे हुए है। यदि विश्व ने कभी ऐसा कवि दिया है जिसकी अमर कलम ने न केवल साहित्य के विशाल क्षेत्र में बल्कि धर्म और कला के क्षेत्र में भी एक विशिष्ट धार्मिक विश्वास स्थापित किया है, तो वे केवल वाल्मीकि हैं, संस्कृत काव्य के जनक, मानवता के प्रथम कवि। विद्वत्ता उस चेतना को खोज पाने में विफल रही है जिसने कभी उस कवि को इतना अधिक प्रेरित किया कि उसकी कलम के हल्के से स्पर्श मात्र ने अनन्त प्रेरणा के भण्डार का सृजन किया जो बहुत लंबे समय से न केवल अपनी मातृभूमि वरन् भारत से भी बहुत दूर देशों की भी सांस्कृतिक चेतना का पोषण करती आ रही है।

वाल्मीकि की मातृभूमि से बहुत दूर, कवियों ने उनकी रचना के असीम भंडार में से अनेक उत्कृष्ट प्रसंगों को एकत्रित किया है और अपने

साहित्य को समृद्ध किया है। कलाकारों ने चिरसम्मानित कला को प्राप्त करने की प्रेरणा प्राप्त की और स्वयं को अमर बना लिया, कृषकों ने उन्हें अपने खेतों में और लोगों ने नदियों में नाव खेते हुए अपने परिश्रम की थकान को दूर करने के लिए उन्हें गुनगुनाया। वास्तव में किसी अन्य कवि की कलम मानव मन को इतना अधिक प्रभावित करने में सफल नहीं रही जितनी कि वाल्मीकि की कलम।

वे लोग भी, जो अभी तक संदेहग्रस्त हैं कि क्या राम ऐतिहासिक राजा थे–जिसकी सच्चाई से कोई भी भारतीय इंकार नहीं करता, निस्संदेह, स्वीकार करेंगे कि जिस राम का सृजन वाल्मीकि की कलम से हुआ है, वह अब भी जीवित है और आने वाले समय में भी सदैव जीवित रहेगा। भारतीय इतिहास राम जैसे कर्तव्यपरायण पुत्रों से, सीता जैसी निष्ठावान पत्नियों से और लक्ष्मण जैसे समर्पित भाईयों से भरा हुआ है, फिर भी इस आदि महाकवि के अनुपम सृजन के सामने उनकी चमक वैसे ही फीकी पड़ जाती है जैसे कि तारों का प्रकाश चंद्रमा के रुपहले प्रकाश में धुंधला पड़ जाता है। बीती सदियों में कवि गण अपने संरक्षक राजाओं को अमर बनाने का प्रयास कर चुके हैं, किंतु उन सब के प्रयत्न साहित्य के सुखद संगीत में उच्चतम स्तर की बहुत थोड़ी सी ध्वनि, यद्यपि मधुर, उत्पन्न करने में सफल हुए। लेकिन वह गीत, जिसका जन्म मानव सभ्यता के अज्ञात पालने में हुआ था और वह भी आधे–अधूरे इतिहास के धुंधले दिनों में, थाईलैंड जैसे सुदूर देशों में आज भी साहित्यिक संगीत में गूँज रहा है।

थाईलैंड के रामायण से संबद्ध साहित्य में एक अनोखी बात देखने में आती है कि 'रामायण' शब्द ही उनके साहित्य में देखने को नहीं मिलता और इसका लेखक भी जनसाधारण के लिए अज्ञात है। हालांकि वे 'राम की कीर्ति' अथवा 'रामकीर्ति' जैसे थाई लोग उसे पुकारते हैं, से बहुत अच्छी तरह परिचित हैं, यह बात राजा राम **छह** के शासन से पहले तक पता नहीं थी। जब उन्होंने रामकीर्ति के उद्‌भव की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या की तब वे लोग रामायण के मूल नाम और इसके लेखक वाल्मीकि को जान पाए और केवल वही लोग इसके बारे में जान पाए जिन्होंने थाई

भाषा के प्रतिष्ठित ग्रंथों में सक्रिय रुचि ली थी। जहाँ तक जनसाधारण का संबंध है, वे आज भी इसके मूल नाम और इसके लेखक से अनभिज्ञ हैं।

जैसे एक प्रसिद्ध गीत का रचयिता धीरे–धीरे उन लोगों की दृष्टि से लुप्त हो जाता है जो उसके संगीत के जाल में फँस जाते हैं, ऐसे ही वाल्मीकि का अस्तित्व भी जनसाधारण के लिए समाप्त होता प्रतीत होता है क्योंकि वे इसके संगीत के आकर्षण से इतने अधिक सम्मोहित हो गए कि उनमें इसके रचनाकार को ढूंढने की इच्छा ही नहीं बची। वास्तव में वह कवि सौभाग्यशाली होता है जो अपनी काव्यमय प्रतिभा की ज्योति में वैसे ही छिपा रहता है, जैसे चकाचौंध करने वाली अपनी किरणों से सूर्य। हम खिली हुई धूप का आनंद लेते हैं किंतु हमारी आँख उसकी चकाचौंध को वेध कर सूर्य को देखने में असमर्थ होती है।

थाईलैंड की संस्कृति पर रामायण के प्रभाव की अभिव्यक्ति तीन अलग–अलग क्षेत्रों में हुई है, वे हैं, साहित्य, कला और नाट्यशास्त्र। यद्यपि थाईलैंड में रामायणीय साहित्य के पहले परिचय के संकेत, जहाँ तक पीछे जाएं, ईसा की तेरहवीं शताब्दी के समय के मिलते हैं, फिर भी इसका तब तक पता नहीं चला जब तक रत्नाकोसिन काल (लगभग 1781ई.) शुरु नहीं हुआ था, जब राम की कीर्ति की अभिव्यक्ति सुंदर काव्यात्मक ग्रंथ में हुई जो आज भी थाई के गौरव ग्रंथों में उत्कृष्ट मानी जाती हैं। उन प्रारंभिक शताब्दियों में रामायण का प्रभाव अकसर राजाओं और कुलीन व्यक्तियों के नामों और साहित्यिक उद्धरणों के रूप में पाया जाता है। रामकीर्ति का पहला कवि होने का श्रेय राजा राम प्रथम को जाता है जो वर्तमान में शासन करने वाले चक्री वंश के संस्थापक थे। इसके बाद इनके पुत्र राजा राम द्वितीय (1809–1824ई.) के द्वारा ग्रंथ का नाट्य रूपांतरण किया गया और तब से यह मुखौटे के रूप में खेला जाने लगा। अपने अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की भड़कीली पोशाकों से अलंकृत, उनके कोमल स्वरूपों की सुर–तालबद्ध क्रियाओं से आकर्षक और मुग्धकारी मधुर धुनों से सराबोर, ये मुखौटों वाले खेल सार्वजनिक

समारोहों में आज भी खेले जाते हैं और आज के चलचित्रों और फिल्मों के समय में भी दर्शकों को आकर्षित करते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मुखौटे से संबंधित पहला साहित्य अयुध्या (1349–1647ई.) के समय का है। किंतु बहुत से रामायणीय नाटकों के समान, इनके कथानक भी रामायण की कुछ एकाकी घटनाओं पर निर्भर होते थे और उनमें कोई निरंतरता भी नहीं होती थी जैसी कि राजा राम द्वितीय के बाद वाले मुखौटों में हम पाते हैं। थोनबुरी के राजा, जो राजा राम प्रथम के एकदम पूर्ववर्ती थे, ने भी रामायण की कुछ घटनाओं को पद्य रूप में लिखने का प्रयास किया, जो अब भी विद्यमान हैं।

लेकिन मुखौटों का मंचन शुरु होने से बहुत पहले एक विशेष प्रकार का नाटक प्रचलित था, थाई भाषा में उसे ह्नांग कहा जाता था जिसका अर्थ होता था खाल अथवा त्वचा, जिसमें सभी रामायणीय आकृतियाँ खाल काटकर बनाई जाती थीं, उनको विशिष्ट पात्र के रंग के अनुरूप रंग दिया जाता था क्योंकि प्रत्येक रामायणीय पात्र का अपना एक विशेष रंग होता था जैसे राम का हरा रंग, लक्ष्मन का सुनहरा रंग आदि, और वे मंच पर नाटक करते थे, वे बहुत कुछ कठपुतलियों के समान हुआ करते थे, किंतु उन पर नियंत्रण डोरी के स्थान पर हाथ से किया जाता था। ह्नांग प्रायः रात में होने वाले उत्सवों में खेले जाते थे, लेकिन अब उनका समय लगभग समाप्त हो चुका है और खाल की इस प्रकार की आकृतियाँ थाई कला की दुर्लभ वस्तु के रूप में संग्रहालयों में शरणागत हो चुकी हैं। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि थाइलैंड में ह्नांग जावा से आया था और संस्कृत के छाया नाटक का रूपांतर है।

इनके अतिरिक्त, हम रामायण का प्रभाव पूर्ण रूप से ललित कलाओं में देख सकते हैं, उनमें एमरॉल्ड बुद्ध के मंदिर की दीवारों पर बनाई गई रामायण पर आधारित चित्रकारी उल्लेखनीय हैं। इस श्रंखला में लगभग दो सौ चित्र हैं जो राजा राम प्रथम के समय के हैं। रामायणीय आकृतियाँ पंखों, तकियों आदि पर भी काढ़ दी जाती हैं, और नीलो धातु की वस्तुओं पर उन्हें उत्कीर्ण किया जाता है जैसे पेटियों के सिर, सिगरेट

के डिब्बे आदि। वास्तव में, हम कह सकते हैं कि राम के महान यश के चारों ओर ललित कलाओं का विशेष प्रचलन शुरू हो गया है जिन्हें हम निश्चित तौर पर थाई ललित कलाओं की रामायणीय पद्धति से नामित कर सकते हैं। इस बात से कोई भी इंकार नहीं कर सकता कि रामकीर्ति के बिना और अपनी संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में इसके अनेक प्रकार के योगदानों के बिना थाईलैंड बहुत कुछ अपनी पारंपरिक महत्ता खो देगा। रामकीर्ति ने आकृतियों और मुहावरों, विचारों और प्रेरणाओं से उसे अविरत प्रवाह प्रदान किया है और अपनी काव्यात्मक व्याख्या के कल्पनाप्रधान आकर्षण से यह आज के समय में भी प्रशिक्षित तथा अप्रशिक्षित सभी को एक समान बाँधे हुए है, जबकि पूर्व का गौरव पश्चिम की चकाचौंध के सामने धीरे–धीरे धुंधला पड़ता जा रहा है।

जैसी राम की महानता है, उसका विस्तृत वर्णन है, किंतु यह रामायण से कभी भी प्रत्यक्षतः प्रभावित नहीं हुई। रामकीर्ति अपने कलेवर में उत्तरी भारत से मलाया तक के बहुत से देशों के प्रसिद्ध रामायणीय कहानी–किस्सों को समाए हुए है। इससे निस्संदेह यह पता चलता है कि जिस मार्ग से राम की कहानी ने थाईलैंड में प्रवेश किया, वह बहुत से अलग–अलग देशों से होकर गुजरता है। हालांकि, जहाँ तक इसके कथानक का संबंध है, यह रामायण की प्रमुख कहानी से पूर्णतया मेल खाता है, फिर भी इसका विवरण अपने मूल से इतना अलग हो जाता है कि हम उसको पूरी तरह भुला देते हैं और इस कारण हम यह सोचने लगते हैं कि हम राम का पूरी तरह से एक बिल्कुल अलग वृतांत पढ़ रहे हैं। संस्कृत रामायण वाल्मीकि के नारद से प्रश्न पूछने से प्रारंभ होती है, उससे भिन्न रामकीर्ति नारायण के तीसरे अवतार को अपना प्रारंभिक विषय बनाती है। इससे रामकीर्ति के मूल का श्रेय पुरानी पुस्तक 'नारायणा सिप्पांग'–नारायण के दस अवतार को जाता है, जिसके अनुसार नारायण के दस अवतारों का क्रम इस प्रकार है– 1. वराह 2. कच्छप 3. मत्स्य 4. भैंसे को मारने के लिए भैंसा 5. त्रिपुरम से शिव लिंग को लुभाने के लिए तपस्वी 6. हिरण्यपाकासुर को मारने के लिए सिंह (नृसिंह) 7. तवन नामक राक्षस को धोखा देने के लिए कुबड़ा (वामन) 8. कृष्ण 9. अप्सरा (अध्याय 4 में) 10. राम। दूसरी रोचक विशेषता यह है कि जहाँ रामायण के सभी

रूपांतरों में राम अथवा नारायण को सभी देवताओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, वहीं हम रामकीर्ति में उनकी स्थिति देवताओं में सर्वोच्च ईस्वर के अधीन पाते हैं।

हम इस पर भी संक्षेप में विचार विमर्श करना उचित समझते हैं कि रामकीर्ति में जो रामायणीय नाम हैं, वे मूल रामायण से किस तरह से भिन्न हैं। पुस्तक का ध्यानपूर्वक अवलोकन प्रमाणित करेगा कि व्यक्तियों और स्थानों के नामों के संदर्भ में तीन विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाएं देखी जा सकती है। पहली, कुछ नाम तो पूर्ण रूप से वैसे ही लिए गए हैं जैसे राम, हनुमान आदि, दूसरी, कुछ नाम मूल से पूर्णतः भिन्न हैं जैसे मंथरा का नाम कुक्की, जो निश्चित रूप से संस्कृत शब्द कुब्जी का विकृत रूप है और तीसरी, ये कुछ रूपांतर के साथ हैं जैसे सत्रुघ्न का नाम सत्रुद, कुवेर का नाम कुपेरन।

इसप्रकार के परिवर्तनों और रूपांतरणों का श्रेय भाषा की ध्वन्यात्मक विशिष्टताओं को दिया जा सकता है। कभी–कभी दो वर्णों के मध्य में आने वाले 'अ' को पहले वर्ण को दूसरे वर्ण से मिलाने के कम में लुप्त कर दिया गया है, जबकि शब्द का अंतिम 'अ' प्रायः मौन कर दिया गया है जैसे कि हम प्रायः बंगाली भाषा में देखते हैं। इसलिए 'गरुड़' का उच्चारण 'खुत' है। इसके अतिरिक्त, मौलिक रूप से अल्पभाषी भाषा होने के साथ–साथ शब्द के सही वर्णविन्यास के स्थान पर शब्द की ध्वनि से चिपक जाने की प्रवृत्ति के कारण हम प्रायः अल्प उच्चारण के साथ शब्द का परिवर्तित रूप पाते हैं। 'लक्ष्मण' 'लक्षण' लिखा जाता है, जो थाई भाषा में सामान्य शब्द है, इसमें पहले अक्षर की ध्वनि को बनाए रख बाकी ध्वनियों को समाप्त करते हुए इसका उच्चारण 'लक' किया जाता है। थाई भाषा की एक अन्य विशिष्टता यह है कि इसमें एक वर्ग के तीसरे और चौथे वर्णों का उच्चारण एक ही तरह से किया जाता है, जिसकी ध्वनि संस्कृत के दूसरे वर्ण के समान होती है। इसप्रकार 'ग, घ' का उच्चारण संस्कृत के 'ख' की तरह होता है। यह रामायणीय नामों में बदली हुई ध्वनि के कारणों में से एक माना जा सकता है। इसलिए हम पाते हैं कि शब्द 'भरत' का उच्चारण 'फ्रौट' होता है और 'बरत' लिखा जाता है।

संयोग से यह देखा जा सकता है कि 'a' का अल्प उच्चारण होता है जैसे ditto में 'o'।

लेकिन फिर भी कुछ परिवर्तित और रूपांतरित नाम ऐसे हैं जो भाषा की ध्वन्यात्मक विशिष्टताओं को पूरा नहीं करते, और ये वे नाम हैं जो हमें रामायण के थाई रूपांतर के उद्गम के बहुत नजदीक ले जाते हैं, क्योंकि ये निश्चित रूप से रामकीर्ति के कलेवर में छोड़े हुए विभिन्न प्रभावों को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, कुपेरन नाम पर विचार किया जा सकता है। यद्यपि बहुत सी थाई रचनाओं में हम प्रायः संस्कृत शब्द कुवेर पाते हैं जबकि रामकीर्ति में धन के स्वामी का नाम हमेशा कुपेरन ही रहा है, जो कुवेर के लिए तमिल शब्द है और इसलिए तमिल प्रभाव को भी इसमें सरलता से पहचाना जा सकता है। रामकीर्ति में वर्णित रामायणीय नामों का संपूर्ण अध्ययन, निस्संदेह, राम की कीर्ति के थाई रूप के उद्गम तक पहुँचाने में उपयोगी सिद्ध होगा। लेकिन यह इतना अधिक विस्तृत है कि इसे प्राक्कथन की कुछ पंक्तियों में नहीं लिखा जा सकता, इसलिए यहाँ हम इस विषय पर पूर्ण विवेचन नहीं कर रहे हैं, इससे हमारा आशय है कि इसे एक अलग पुस्तक में और एक उचित समय पर करना होगा, जब हमारे पाठकों को थाई रूपांतर के विषय में यथेष्ट बोध हो जाएगा।

इसलिए इस पुस्तक का एकमात्र उद्देश्य यह ध्यान में रखा गया है कि रामकीर्ति का स्पष्ट रूप, इसकी विशेषताओं में किसी प्रकार की काट–छाँट किए बिना अपने पाठकों तक पहुँच सके, ताकि यह इन सभी अतिरिक्त दंतकथाओं के उद्गम स्थान तक पहुँचाने में हमारा मार्गदर्शन कर सके।

●

द्वितीय भाग

वाल्मीकि रामायण
और
रामकीर्ति (रामकियन)
का
तुलनात्मक अध्ययन

अयोध्या का प्रथम राजा

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

महर्षि वशिष्ठ ने राजा जनक और उनके लघु भ्राता कुशध्वज के सम्मुख राजा दशरथ की कुल परंपरा का परिचय देते हुए कहा कि ब्रह्माजी की उत्पत्ति का कारण अव्यक्त है–ये स्वयंभू हैं, नित्य, शाश्वत और अविनाशी हैं। उनसे मरीचि की उत्पत्ति हुई। मरीचि से कश्यप, कश्यप से विवस्वान, विवस्वान से वैवस्वत मनु का जन्म हुआ। मनु पहले प्रजापति थे जिनसे इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन इक्ष्वाकु को ही अयोध्या के प्रथम राजा के रूप में समझा गया।

इक्ष्वाकु के बाद क्रमशः कुक्षि, विकुक्षि, वाण, अनरण्य, पृथु, त्रिशंकु, धुंधुमार, युवनाश्व, मांधाता, सुसंधि, ध्रुवसंधि, भरत, असित, असित की विधवा कालिंदी से सगर, असमंज, अंशुमान, दिलीप, भगीरथ, कुकुत्स्थ, रघु, प्रवृद्ध(ये शाप से राक्षस हो गए थे, बाद में ये ही कल्माषपाद के नाम से प्रसिद्ध हुए थे), शंखण, सुदर्शन अग्निवर्ण, शीघ्रग, मरु, प्रशुश्रक, अंबरीष, नहुष, ययाति, नाभाग तथा अज हुए। अज से ही दशरथ का जन्म हुआ। राम और लक्ष्मण इन्हीं दशरथ के पुत्र हैं।

रामकीर्ति के अनुसार

जब एक बार नारायण क्षीरसागर में स्थित अपने घर में वैदिक मंत्रों का जाप कर रहे थे, तभी समुद्र की सतह पर एक पूर्ण विकसित सुंदर फूल के साथ कमल का एक पौधा उग आया और इसकी कोमल और सुगंधित पंखुड़ियों के बीच एक शिशु विद्यमान था जो रमणीयता में देवताओं से भी उत्कृष्ट था। नारायण ने इसे अपनी बाहों में ले लिया और उसे ईस्वर को समर्पित करने के लिए कैलास पर्वत की ओर चल पड़े।

ईस्वर की दैवीय इच्छा से शिशु की नियति में संसार का पहला राजा होना तय था और दानवों के अत्याचारी शासन से संसार को मुक्त

कराने के एकमात्र उद्देश्य के लिए नारायण के वैभवशाली वंश[17] की स्थापना करना था।

यह चमत्कारिक बालक कल्याणकारी राज्य की शुरुआत कर सके, इसके लिए जम्बुद्वीप नामक देश चुना गया और उसकी राजधानी का निर्माण करने का दायित्व इंद्र को सौंपा गया।

इसलिए ईस्वर के आदेश का पालन करने के लिए इंद्र नीचे जम्बुद्वीप आ गया जहाँ वह अचनागवी, युगाग्र, दाह और याग नामक चार ऋषियों से मिला। उन्होंने देवताओं के राजा इंद्र को अपने निवास स्थान द्वरावती[18] के जंगल में राजधानी बनाने का परामर्श दिया। तदनुसार नारायण के वंशज राजाओं की राजधानी वहाँ स्थापित की गई, जहाँ कभी द्वरावती का जंगल हुआ करता था और उन चार ऋषियों के नामों के चार प्रारंभिक वर्णों के आधार पर उसका नाम अयुध्या रखा गया। तब उस बालक का अनोमतान[19] नाम से अयुध्या के राजा के रूप में राज्याभिषेक

---

17 यह उल्लेखनीय है कि यहाँ राम का वंश सूर्यवंश नहीं है जैसाकि मूल रामायण में है बल्कि उसे नारायण के वंश के नाम से जाना जाता है। रामकीर्ति पृ. 4

18 स्पष्ट रूप से यह नाम महाभारत से लिया गया है। शायद, महाभारत के अप्रत्यक्ष प्रभाव के कारण अथवा किसी भ्रमवश यह नाम रामायण की कहानी में जोड़ दिया गया है। रामकीर्ति पृ. 5

19 अनोमतान स्पष्ट रूप से रघु हैं। लेकिन यह नाम बहुत विचित्र है। तमिल मूल के किसी संदर्भ के बिना यह तमिल भाषा को प्रतिध्वनित करता है। यद्यपि किसी भी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना बहुत कठिन है तथापि कुछ संकेत देखे जा सकते हैं। सबसे पहले लेखक 'अनोमा' नाम से परिचित कराता है। यदि ऐसा है, तब यह पालि शब्द अनोमा हो सकता है। (सं. अनावामा) जिसका अर्थ है 'महा यशस्वी'। अथवा यदि यह शब्द 'अनोमतान' है तब यह शब्द 'अनो' और 'मैत्री' शब्दों से उत्पन्न हुआ माना जा सकता है, जिसका अर्थ होता है–जिसकी माँ नहीं है। चूंकि बालक बिना माता के पैदा हुआ था, इसे 'अनोमता' कहा गया हो, या 'अनोमतान' जो इसका विकृत रूप है। रामकीर्ति पृ. 5

कर दिया गया तथा उसे दानवों के दमन और संसार की रक्षा के लिए नारायण के अवतार के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। उसे अलौकिक शक्तियाँ प्रदान की गईं और उसे चार शस्त्र–तीर, त्रिशूल, गदा और चक्र दिए गए ताकि वह संपूर्ण और निश्चित रूप से अपने दैवीय कर्तव्यों का पालन कर सके। कहीं अनोमतान की मृत्यु के साथ नवस्थापित वंश समाप्त न हो जाए, इंद्र ने इस बात को ध्यान में रखकर उन्हें मणिकेसर नाम की एक रानी भेंट की। उनसे अजपाल नामक पुत्र का जन्म हुआ। जब अजपाल परिपक्व हो गया, अनोमतान ने उसे अयुध्या की गद्दी पर प्रतिष्ठापित कर दिया और स्वयं स्वर्ग सिधार गया।

अपने पिता की तरह राजा अजपाल ने भी देवताओं और प्रजा की इच्छापूर्ति करने के साथ ही दानवों से संसार की रक्षा की। दीर्घ काल तक गौरवपूर्ण शासन करने के बाद अपने पुत्र दसरथ को वंश परंपरा का दायित्व सौंपकर वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

उल्लेखनीय बिंदु

वा. में राम की वंश परंपरा ब्रह्माजी से उत्पन्न मानी गई है जो स्वयंभू हैं, वैसे ही रा. में भी जिस बालक से राम के वंश की परंपरा चली, वह भी स्वयंभू है। वा. में इक्ष्वाकु को अयोध्या का पहला राजा माना गया जबकि रा. में अनोमतान को। वा. में राम के वंश की लंबी परंपरा का उल्लेख है जबकि रा. में अनोमतान, उनके पुत्र अज और अंत में अज के पुत्र दसरथ का ही उल्लेख है। वा. में अयोध्या का निर्माण कैसे हुआ, इसका कोई वर्णन नहीं है, जबकि रा. में अयुध्या की स्थापना का पूरा वर्णन है। वा. के अज ही रा. में अजपाल हैं, दोनों ही ग्रंथों में इनके पुत्र दशरथ हैं, उच्चारणगत विशिष्टता के कारण ये रा. में दसरथ हो जाते हैं। दशरथ के पुत्र राम हैं। वा. में राम सूर्यवंशी हैं जबकि रा. में ये नारायणवंशी हैं।

राम और उनके भाईयों का जन्म

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

दूरदर्शी, सत्यपरायण, महात्मा दशरथ अत्यंत प्रभावशाली होते हुए भी पुत्रहीन होने की बात से सदैव चिन्तित रहते थे। उनके कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा नाम की तीन रानियाँ थी। किंतु वंश को आगे चलाने के लिए किसी से भी उनके कोई पुत्र नहीं था।

इस पर बहुत अधिक चिंतन करते–करते एक दिन उनके मन में विचार आया कि पुत्र–प्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया जाए। उस पर मंत्रणा करने के लिए उन्होंने वेदविद्या में पारंगत मुनियों सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप तथा कुलपुरोहित वशिष्ठ जी तथा अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों को बुलवाया। सभी ब्राह्मणों ने उनके अश्वमेध करने के विचार की प्रशंसा की और ऐसा करने के लिए उन्हें आश्वस्त किया, साथ ही अश्वमेध की तैयारी करने के लिए कहा। फिर वे राजा को बधाई देते हुए उनकी आज्ञा लेकर चले गए।

मुनियों के जाने के बाद मंत्री सुमंत्र ने राजा दशरथ से एकांत में अश्वमेध यज्ञ के लिए मुनिकुमार ऋष्यश्रृंग को बुलवाने का निवेदन किया और उनसे प्रार्थना की कि वे ऋषि को स्वयं बुलाकर लाएं। उनकी प्रार्थना का सम्मान करते हुए राजा स्वयं ऋषि ऋष्यश्रृंग को उनकी पत्नी शांता सहित अंगदेश से अयोध्या में बुलाकर लाए।

ऋष्यश्रृंग के नेतृत्व में वशिष्ठ ऋषि आदि सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने सरयू नदी के तट पर तैयार की गई यज्ञ भूमि में शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ आरंभ किया। अवध नरेश ने अपनी पत्नियों के साथ यज्ञ की दीक्षा ली। देवता, सिद्ध, गंधर्व और महर्षिगण अपना–अपना भाग लेने के लिए उस यज्ञस्थल पर एकत्रित थे। उसी समय देवताओं ने ब्रह्माजी से रावण के अत्याचारों से संसार को मुक्त करने के लिए कोई युक्ति सुझाने का निवेदन किया। ब्रह्माजी ने देवताओं को बताया कि रावण ने उनसे देवता, गंधर्व, यक्ष, तथा राक्षसों से न मारे जाने का वरदान

मांगा था, मनुष्य को तुच्छ समझने के कारण उससे अवध्य होने का नहीं। इसलिए अब मनुष्य के द्वारा ही उसका वध होगा। तभी भगवान विष्णु जी भी वहाँ आ गए। देवताओं ने उनसे प्रार्थना की, 'आप धर्मज्ञ, उदार और तेजस्वी राजा दशरथ की तीनों रानियों के गर्भ से अपने चार स्वरूप बनाकर पुत्र रूप में अवतार ग्रहण कीजिए। इसप्रकार मनुष्यरूप में प्रकट होकर आप संसार के लिए कंटकरूप रावण का समरभूमि में वध कर दीजिए।' इस प्रार्थना को स्वीकार कर विष्णु जी ने अपने को चार रूपों में प्रकट करके राजा दशरथ को पिता बनाने का निश्चय किया।

जब राजा दशरथ यज्ञ कर रहे थे, तभी यज्ञ कुंड में से एक विशालकाय पुरुष प्रकट हुआ। वह प्रज्ज्वलित अग्नि की लपटों के समान दैदीप्यमान था। उसके हाथ में जाम्बुनद नामक स्वर्ण की बनी हुई एक बड़ी परात थी जो चांदी के ढक्कन से ढकी हुई थी। उसमें दिव्य खीर भरी हुई थी। उसने स्वयं को प्रजापतिलोक का पुरुष बताया और राजा से स्वयं देवताओं द्वारा बनाई गई दिव्य खीर को स्वीकारने और उसे अपनी पत्नियों को खिलाने के लिए कहा ताकि इससे उन्हें अनेक पुत्रों की प्राप्ति हो सके। इसके बाद वह कांतिमान पुरुष अंतर्धान हो गया।

राजा ने उस पुरुष की बात को मानते हुए उस खीर का आधा भाग कौशल्या को दे दिया। फिर बचे हुए आधे का आधा भाग सुमित्रा को दे दिया। उन दोनों को देने के बाद जितनी खीर बची थी, उसका आधा भाग कैकेयी को अर्पित किया और अवशिष्ट खीर को कुछ सोचकर पुनः सुमित्रा को दे दिया।

यज्ञ समाप्ति के बाद छः ऋतुओं के बीत जाने पर चैत्र के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्न में कौशल्या ने दिव्य लक्षणों से युक्त, सर्वलोक वंदित जगदीश्वर श्री राम को जन्म दिया जिनके नेत्रों में कुछ–कुछ लालिमा थी, ओठ लाल–लाल थे, भुजाएं बड़ी–बड़ी थीं और स्वर दुंदुभि के समान गंभीर था। कैकेयी ने सत्यवादी, पराक्रमी भरत को और सुमित्रा ने लक्ष्मण व शत्रुघ्न को जन्म दिया।

रामकीर्ति के अनुसार

अजपाल की मृत्यु के बाद राजा दसरथ अयुध्या के सिंहासन पर विराजमान हुए। उनके कौसुरिया, समुद्रजा और कैयाकेशी नामक तीन रानियाँ थीं।[20] यद्यपि वे राजसी वैभव व दांपत्य प्रेम से तो सुखी थे, किंतु पुत्र न होने के कारण वे काफी दुखी रहते थे। इस दुख के निवारण के लिए उन्होंने वसिट्‌ठ, स्वामित्र, वज्जावग्ग[21] और भारद्वाज ऋषियों को बुलवाया।

राजा के निवेदन पर उन ऋषियों ने बताया कि उनके पास जो दैवीय शक्ति है, वह नारायण के वंश के लिए ऐसा योग्य पुत्र प्रदान करने में सक्षम नहीं है जो संसार को दानवों के पंजों से मुक्त कराने के लिए नियत है। अतः उन्होंने राजा को सलाह दी कि वे शिशु हेतु यज्ञ संपन्न करवाने के लिए ऋषि सिंगमुनि के पुत्र महान शक्तिसंपन्न कोलायकोटि [22]ऋषि से सहायता मांगें। उन ऋषि की विशिष्टता के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा कि उनका जन्म हिरण से हुआ था जिसके कारण मुख तो उनका हिरण का था जबकि शरीर मनुष्य का था। अपनी युवावस्था में कोलायकोटि ऋषि ने रोमाबत्तन[23] देश में ऐसी घोर तपस्या की जिसके कारण वहाँ सूखा पड़ गया था। सूखे की समस्या को हल करने के लिए राजा ने अपनी पुत्री को उन्हें लुभाने हेतु भेजा। उसके प्रति आकृष्ट होने

---

20 सं कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी रामकीर्ति पृ 7

21 सं वशिष्ठ, विश्वामित्र रामकीर्ति पृ 7

22 कोलायकोटि स्पष्ट रूप ये 'ऋष्यश्रंग' हैं। किंतु यहाँ पर सिंगमुनि (ऋष्यश्रंग का विकृत रूप) पिता दिखाई पड़ते है। स्पष्ट रूप से यह पिता विभंडक और पुत्र 'ऋष्यश्रंग के बीच किसी भ्रांति के कारणवश ही है। रामकीर्ति पृ 7

23 वाल्मीकि के अनुसार, देश का नाम अंगरा था जबकि शासक राजा का नाम रोमापद था। निस्संदेह राजा का नाम गलती से देश के नाम के रूप में प्रयुक्त किया गया है। रामकीर्ति पृ 8

पर उन्होंने अपनी तपस्या त्याग दी। परिणामस्वरूप वहाँ बहुत अधिक बारिश हुई और ऋषि राजा के दामाद बनकर रहने लगे।

दसरथ के आमंत्रण पर उन्होंने अयुध्या में आकर यज्ञ का दायित्व सँभाल लिया। किंतु यज्ञ आरंभ करने से पहले उन्होंने ईस्वर से कैलास पर्वत पर जाकर परामर्श करना उचित समझा क्योंकि वे जान चुके थे कि तीनों देवताओं द्वारा दिए गए वरदानों के कारण दानव अपराजेय हो चुके हैं और इसीलिए वे सारे संसार को अमानवीय रूप से उत्पीड़ित कर रहे है। अतः उन्होंने ईस्वर से कहा कि वे नारायण से प्रार्थना करें कि दसरथ के पुत्र के रूप में वे अवतार धारण कर संसार पर मंडराती हुई आपदाओं से उसे छुटकारा दिलवाएं। नारायण ने ईस्वर की बात मान ली किंतु एक शर्त रखी कि उनके साथ ही लक्ष्मी, अनंत नाग, गदा, चक्र और शंख भी अवतार धारण करेंगे[24] जिसे ईस्वर ने तत्काल स्वीकार कर लिया।

ईस्वर ने ऋषियों को लौटने और यज्ञ करने की सलाह दी और बताया कि यज्ञ की अग्नि में से एक अर्द्धदेव निकलेगा जिसके सिर पर एक ट्रे होगी जिसमें दिव्य खाद्य–पदार्थ के चार केक होंगे। तभी एक कौआ उस ट्रे पर झपटेगा और एक केक के मात्र आधे टुकड़े को लेकर दक्षिण दिशा की ओर उड़ जाएगा। बाकी बचे हुए केक दसरथ की रानियों में बाँट देना ताकि वे उनके चार पुत्रों को जन्म दे सकें।

ईस्वर द्वारा बताई गई प्रत्येक घटना घटती गई। नारायण कौसुरिया के पुत्र राम के रूप में अवतरित हुए जो हरे रंग के थे; चक्र कैयाकेशी के पुत्र बरत के रूप में, जो लाल रंग के थे; नाग और शंख दोनों एक साथ समुद्रजा के पुत्र लक्षण के रूप में, जो पीले रंग के थे; जबकि गदा समुद्रजा के ही पुत्र सत्रुद के रूप में, जो बैंगनी रंग के थे। इन चारों में राम सबसे बड़े थे फिर क्रमशः बरत, लक्षण और सत्रुद थे।

---

24 यहाँ अवतार के वैभिन्न्य को स्पष्ट किया गया है कि यह भारतीय दृष्टि से कैसे अलग है। भारतीय रामायण के अनुसार स्वयं नारायण ने दसरथ के चार पुत्रों के रूप में अवतार धारण किया था।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों रचनाओं में कथा लगभग एक जैसी–सी ही है। राजा दशरथ ने पुत्र न होने के कारण यज्ञ का आयोजन किया। उनके तीन रानियाँ थीं। किंतु उनके नामों में अंतर है। वा. में कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी हैं, जबकि रा. में कौसुरिया, समुद्रजा और कैयाकेशी है। राजा दशरथ ने जिन मुनियों से परामर्श किया उनके नामों में भी अंतर है। वसिट्ठ और स्वामित्र वा. के वसिष्ठ और विश्वामित्र हैं। इस संबंध में यह माना जा सकता है कि यह अंतर थाई लोगों की उच्चारण व्यवस्था में अंतर होने के कारण है। वा. में तपस्या करने वाले ऋषि का नाम ऋष्यश्रृंग है जबकि रा. में कोलायकोटि है जो सिंगमुनि के पुत्र हैं। दोनों ग्रंथों में देश और राजा के नामों के बीच उत्पन्न हुए संदेह का निवारण इसी पुस्तक में किया है।

वा. में ऋषि ऋष्यश्रृंग की विशिष्टता तथा उनकी पत्नी शांता के विषय में पूरी बात सुमंत्र बताते हैं जबकि रा. में आमंत्रित ऋषि उनके वैशिष्ट्य का वर्णन करते हैं। इसमें उनकी पत्नी के नाम का उल्लेख नहीं है। साथ ही रा. में कोलायकोटि का जन्म हिरण से हुआ बताया गया है जबकि वा. में ऐसा कुछ नहीं मिलता।

वा. में नारायण ही चार पुत्रों के रूप में अवतार धारण करते हैं किंतु रा. में नारायण तो राम के रूप में जन्म लेते हैं, जबकि चक्र बरत, नाग और शंख एक साथ लक्षण तथा गदा सत्रुद के रूप में जन्म लेते हैं। रा. राम, लक्षण, बरत और सत्रुद के वर्णों का वर्णन मिलता है, किंतु इस प्रकार का कोई उल्लेख वा. में नहीं मिलता।

●

लंका तथा रावण द्वारा उसकी प्राप्ति

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

जब विश्रवा के पुत्र वैश्रवण का जन्म हुआ, तो पितामह पुलस्त्य को बहुत प्रसन्नता हुई क्योंकि वे दिव्य दृष्टि से देख चुके थे कि यह बालक संसार के लिए कल्याणकारी होगा और आगे चलकर धनाध्यक्ष

होगा। बड़े होने पर वैश्रवण ने घोर तपस्या की जिससे संतुष्ट होकर ब्रह्मा जी ने उसे यम, इंद्र और वरुण के बाद चौथा लोकपाल बनने और अक्षय निधियों का स्वामी कुबेर बनने का वरदान दिया तथा एक तेजस्वी पुष्पक विमान सवारी के लिए प्रदान किया (अब वैश्रवण कुबेर के नाम से भी जाना जाने लगा)। ब्रह्माजी के जाने के बाद जब कुबेर ने अपने निवास स्थान के बारे में पूछा तो उनके पिता विश्रवा ने उनसे दक्षिण समुद्र के तट पर स्थित त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बसी विशाल लंकापुरी में बसने के लिए कहा। उन्होंने कुबेर को बताया कि उस पुरी की चहारदीवारी सोने की बनी हुई है। उसके चारों ओर चौड़ी खाइयाँ खुदी हुई हैं और वह अनेकानेक यंत्रों और शस्त्रों से सुरक्षित है। इसमें पहले भी राक्षस रहते थे जिन्होंने भगवान विष्णु के भय से इसे त्याग दिया था। वे सभी लोग रसातल में चले गए, इसलिए लंकापुरी सूनी हो गई। पिता की आज्ञा से उन्होंने उस सूनी लंका को बसाया।

जब रावण का जन्म हुआ और बड़े होने पर उसने घोर तपस्या की, तब उसे देवताओं से अनेक वरदान प्राप्त हुए जिन्हें पाने के बाद वह मदमस्त हो गया। उसने कुबेर से लंका वापस करने को कहा, तब उन्होंने अपने पिता की राय लेकर लंका रावण को लौटा दी।

रामकीर्ति के अनुसार

जब अर्द्धदेवता यज्ञ की अग्नि में से बाहर आए, तभी ईस्वर की वाणी के अनुरूप एक कौआ वहाँ पहुँच गया। वह एक केक के आधे टुकड़े को लेकर दक्षिण दिशा की ओर उड़ गया। उस समय दक्षिण दिशा में लंका द्वीप स्थित था जिस पर दानवों का राज था। इस द्वीप के निलाकल पर्वत की चोटी पर कौओं का एक बड़ा घोंसला होने के कारण सबसे पहले लंका का नाम रंगका[25] पड़ा। साहपति ब्रह्मा[26] ने अपने भक्त

---

25 ठेठ थाई भाषा से व्युत्पन्न नाम है। दोनों शब्द ही थाई हैं। 'रंग' का अर्थ घोंसला और 'का' का अर्थ कौआ है।

26 शायद यह शब्द साहमपति ब्रह्म बुद्धवादी अवधारणा से उद्धृत किया गया हो।

सहमालिवान के लिए इस द्वीप का सृजन किया, अतएव वह लंका का पहला राजा बना। लेकिन नारायण से भयभीत होने के कारण उसने अपने द्वीप–राज्य को छोड़ दिया और पाताल लोक की ओर भाग गया।

अपनी सृष्टि को अशासित और असुरक्षित पाकर ब्रह्मा ने विश्वकर्मा को निलाकल पर्वत पर एक सुंदर नगर–निर्माण का आदेश दिया। इसके पूरे होने के पश्चात् उन्होंने इसका नाम विजय लंका[27] रखा और अपने भक्तों में से एक दूसरे भक्त चतुरवक्त्र को इसका राजा बनाकर सिंहासन पर बैठा दिया और साथ ही रानी मलिका को उसकी पत्नी बना दिया।

चतुरवक्त्र की मृत्यु के बाद उसका पुत्र लैस्टियन सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। वह एक भयानक दुर्जेय राक्षस था। उसकी पाँच रानियाँ थीं जिनके नाम थे–श्रीसुनंदा, कुपेरन की माता; चित्रमाली, देवनासुर की माता; सुवर्णमलाई, अश्धाता की माता; वर प्रभा, मारन की माता; और रजता जो छह पुत्रों और एक पुत्री की माता थी, जिनके नाम दसकंठ, कुंभकर्ण, बिभेक, दूषन, खर, त्रिशिरा और सम्मानखा थे।

उस समय कालनाग पाताल का राजा था। जैसाकि बताया जा चुका है कि लंका का भूतपूर्व राजा सहमालिवान पाताल में शरण ले चुका था। पाताल में उसका ठहरना कालनाग को स्वीकार्य नहीं था क्योंकि उसे निरंतर यह भय लगा रहता था कि किसी दिन यह भूतपूर्व राजा उसके शासन के खिलाफ विद्रोह कर उसका राज्य छीन सकता है। इसलिए उचित अवसर पाकर उसने सहमालिवान के विरुद्ध आक्रामक हमला कर दिया। उस समय सहमालिवान के लंका के तत्कालीन राजवंश के साथ

---

27 विजय' शब्द का एक विशेष प्रकार का अन्तर्वेश, परंपरा के प्रमाणीकरण के साथ यह स्वीकार किया जा सकता है कि बंगाल के एक राजकुमार विजय सिंह ने लंका को सबसे पहले जीता था और उसके नाम पर ही लंका का नाम 'सिंहल' पड़ा।

अच्छे संबंध थे, इसलिए उसने लैस्टियन से सहायता मांगी जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही उसने कालनाग को पराजित कर दिया। लैस्टियन के शस्त्रों के प्राणांतक प्रहार से बचने के लिए और कोई रास्ता न पाकर उसने अपनी पुत्री काल–अग्गी को उसे भेंट कर दिया और अपनी जान बचाकर भाग गया। लैस्टियन ने युवा राजकुमारी को स्वीकार कर उसका विवाह अपने पुत्र दसकंठ के साथ कर दिया।

जब लैस्टियन वृद्ध हो गया, उसने अपने राज्य को अपने दस पुत्रों में विभाजित कर दिया ताकि उसकी मृत्यु के उपरांत वे लड़ाई–झगड़ा न करें। उसके इस विभाजन के अनुसार दसकंठ लंका के राजा के रूप में उसका उत्तराधिकारी बना, जबकि कुपेरन कालचक्र का राजा बना दिया गया और उसने पुष्पक विमान को प्राप्त किया। देवनासुर चक्रवाल का शासक बना; अश्धाता बदकान का; मारन सोलाश का; खर रोमागल का; दूषन जनपद में चरिक का और त्रिशिरा मज्जावरी का शासक बना; जबकि सम्मानखा का विवाह राजा जिव्हा से कर दिया गया।

उल्लेखनीय बिंदु

वा. में लंका पहले से ही राक्षसों के लिए बनी हुई थी। इसमें लंका के सर्वप्रथम अस्तित्व में आने का कोई वर्णन नहीं है, जबकि रा. में साहपति ब्रह्मा ने अपने भक्त सहमालिवान के लिए लंका का सृजन किया था। वा. में रावण से पहले लंका में वैश्रवण अर्थात् कुबेर रहते थे। अपने पिता के कहने पर वे लंका रावण को सौंप कर कैलास चले गए थे, जबकि रा. में लैस्टियन ने अपने राज्य को दस पुत्रों में विभाजित किया था जिसके अनुसार दसकंठ लंका के राजा के रूप में उसका उत्तराधिकारी बना था।

●

गौतम मुनि और अहल्या प्रसंग

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

विश्वामित्र के साथ जाते समय जब राम ने एक सुनसान आश्रम देखा तो उन्होंने ऋषि से उसके सूनेपन का कारण जानना चाहा। इस बारे में बताते हुए ऋषि ने कहा कि यह महात्मा गौतम का आश्रम था जिसमें वे अपनी पत्नी के साथ रहते हुए तपस्या करते थे। एक दिन इंद्र ने गौतम ऋषि का वेश धारण कर उनकी पत्नी के साथ समागम करने की इच्छा व्यक्त की। इंद्र को पहचान लेने पर भी उस दुर्बुद्धि नारी ने सुखद आश्चर्य से सोचा, 'अहो! देवराज इंद्र मुझे चाहते हैं।' इस कौतुहलवश उसने इंद्र के समागम के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। रति के पश्चात् उसने इंद्र से कहा कि अब आप यहाँ से चले जाइए। महर्षि गौतम के कोप से अपनी और उसकी रक्षा कीजिए। गौतम के आ जाने की आशंका से इंद्र बड़ी उतावली से वेगपूर्वक भागने का यत्न करने लगा। तभी तपोबलसंपन्न महामुनि गौतम ने आश्रम में प्रवेश किया और कपटवेशधारी इंद्र को देखा। उन्होंने क्रोध में भरकर कहा, 'दुर्मते! तूने मेरा रूप धारण करके यह न करने योग्य पापकर्म किया है, इसलिए तू विफल (अण्डकोषों से रहित) हो जाएगा।' इंद्र को शाप देने के बाद उन्होंने अपनी पत्नी को भी शापित किया, 'दुराचारिणी! तू भी यहाँ कई हजार वर्षों तक केवल हवा पीकर या उपवास करके कष्ट उठाती हुई राख में पड़ी रहेगी। समस्त प्राणियों से अदृश्य रहकर इस आश्रम में निवास करेगी। जब दशरथ कुमार राम इस घोर वन में पदार्पण करेंगे, उस समय तू पवित्र होगी। उनका आतिथ्य–सत्कार करने से तेरे लोभ–मोह आदि दोष दूर हो जायेंगे और तू प्रसन्नतापूर्वक मेरे पास पहुँचकर अपना पूर्व शरीर धारण कर लेगी।' अहल्या के बारे में इस संपूर्ण वृतांत को सुनकर श्रीराम ने आश्रम में प्रवेश कर उनका उद्धार किया और अब वे सबको दिखाई पड़ने लगीं। इसप्रकार गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या अपनी तपस्या की शक्ति से विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त हुई। अपने पति के कहे गए वचनों के अनुरूप उन्होंने दोनों भाइयों का आतिथ्य–सत्कार किया तथा फिर वे अपने पति के पास चली गईं। महर्षि गौतम भी उन्हें पाकर सुखी हो गए।

रामकीर्ति के अनुसार

यह कथा बिल्कुल अलग रूप लिए है। साकेत के राजा गोतम[28] निस्संतान थे। इसलिए वे अपना विशाल राज्य और राज्य सिंहासन त्याग, सन्यास का आश्रय ले कर दो हजार वर्ष के लंबे समय तक ध्यान में लीन रहे। दाढ़ी के बहुत लंबी हो जाने पर उसमें दो बुनकर पक्षियों ने अपना घोंसला बना लिया और एक दिन मादा पक्षी ने कुछ अंडे दिए। नरपक्षी अपनी पत्नी से अंडे सेने के लिए कहकर स्वयं हिमवान पर स्थित कमल से भरी झील पर खाने की तलाश में चला गया। पर्याप्त मात्रा में भोजन पाकर और नए स्थान के अनूठेपन को देखकर उसे शाम होने का पता न चला। सूर्यास्त होने पर वह कमल की पंखुड़ियों के बंद हो जाने पर सारी रात उसके बीजकोष में बंदी बना रहा। उससे उसके शरीर में कमल की खुशबु समा गई।

अगली सुबह जब वह घर पहुँचा, उसके शरीर में से अब भी कमल की खुशबु आ रही थी। मादा पत्नी ने उस खुशबु का अनुभव किया। उसने स्त्री विचार से इसे किसी दूसरी मादा बुनकर पक्षी की खुशबु मान लिया जिसके साथ संभवतः उसके पति ने पिछली रात बिताई थी। इसलिए उसने अपने पति को विश्वासघात करने के लिए भला–बुरा कहा। नर पक्षी ने उसके दोषारोपण का खंडन किया और दृढ़तापूर्वक कहा कि यदि वह विश्वासघात का अपराधी हो तो तपस्वी के सारे पाप उसे लग जाएं।

इस बात से गोतम को बड़ा झटका लगा क्योंकि वह अपने को सदा निष्पापी समझता था। इसलिए उसने बुनकर पक्षी से उसके आरोप का कारण पूछा और उसे मालूम हुआ कि निस्संतान होने में ही उसका पाप निहित है। अतः उसने यज्ञ किया और उस यज्ञ की अग्नि से

---

28 'गोतम' स्पष्ट रूप से अहल्या के पति 'गौतम' हैं। यहाँ पर उनको राजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर 'साकेत' के प्रयोग में विचारों में भ्रांति दिखाई देती है। वास्तव में 'साकेत' अयोध्या का दूसरा नाम है, कोई दूसरा देश नहीं । रामकीर्ति, पृ 20

काल–अचना [29]नामक एक सुंदर युवती निकली। गोतम ने उसे अपनी पत्नी बना लिया। समय आने पर उसने एक कन्या को जन्म दिया। पिता ने उसका नाम स्वाहा रखा।

जब नारायण ने दसरथ के पुत्र के रूप में जन्म लेना स्वीकार कर लिया, तब इंद्र और दूसरे देवताओं ने दसकंठ के विरुद्ध लड़ाई में राम की सहायता के लिए सैनिकों की उत्पत्ति के बारे में विचार किया। अंत में उन्होंने काल–अचना के बारे में सोचा। इसलिए इंद्र नीचे आए और उनकी अलौकिक शक्ति से काल–अचना ने गर्भ धारण किया। समय आने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम काकशबिरि रख दिया। कुछ समय बाद आदित्य नीचे आए और उनके द्वारा काल–अचना ने गर्भ धारण कर सुग्रीव नामक दूसरे पुत्र को जन्म दिया। उनके जन्मदाताओं से अनभिज्ञ गोतम ने उन्हें अपना ही पुत्र समझा। किंतु स्वाहा अपनी माता के निष्ठाहीन व्यवहार की प्रत्यक्ष साक्षी थी।

जब एक दिन गोतम सुग्रीव को अपनी गोद में उठाए, काकश को अपने कंधे पर बिठाए और स्वाहा का हाथ पकड़ कर नहाने जा रहे थे, तब पिता का यह व्यवहार उसे बहुत बुरा लगा और उसने अपने पिता से कह दिया कि वह अपनी संतान को तो पैदल ले जा रहे हैं और दूसरों की संतान के प्रति अधिक दयालु हो रहे हैं। यह सुन गोतम स्तब्ध रह गए। उन्होंने अपनी पुत्री से इस आक्षेप का कारण पूछा जिसे उसने तुरंत बता दिया।

परंतु गोतम को अपनी पुत्री की बात पर विश्वास नहीं हुआ। इस बात की वास्तविकता जानने के लिए वे सभी बच्चों को नदी किनारे ले गए और इस प्रार्थना के साथ उनको पानी में फेंक दिया कि उनका अपना बच्चा तो तैरकर उनके पास आ जाए और दूसरों के बच्चे बंदर के रूप में बदल जाएं और जंगल में चले जाएं। उनकी प्रार्थना सत्य सिद्ध हुई और

---

[29] काल–अचना स्पष्ट रूप से अहल्या ही है। रामकीर्ति पृ 22

तदनुसार काकश और सुग्रीव ने बंदर बनकर पास के ही वन में आश्रय ले लिया।

तब गोतम ने घर आकर अपनी निष्ठाहीन पत्नी काल–अचना को शाप दिया कि वह एक पत्थर के रूप में बदल जाए ताकि जब नारायण दानवों के विनाश के लिए अवतार धारण करें तो पत्थर के रूप में उसका प्रयोग पुल बनाने के लिए हो और इसप्रकार वह सदा के लिए समुद्र में डूबी रहे।

उल्लेखनीय बिंदु

वा. में गौतम एक ऋषि के रूप में वर्णित हैं, जबकि रा. में उन्हें साकेत के एक राजा के रूप में प्रस्तुत किया है। वा. की अहल्या ही रा. की काल–अचना है। वा. में अहल्या ने इंद्र को पहचानने के बाद भी उसके साथ दुष्कर्म करने के लिए अपनी सहमति दी थी और रति के पश्चात् भाग जाने के लिए कहा। इसमें अहल्या गर्भवती नहीं हुई, जबकि रा. में इंद्र की अलौकिक शक्ति से काल–अचना ने गर्भ धारण किया था। दोनों ही ग्रंथों के अनुसार गौतम ने अहल्या को शाप दिया था। वा. में गौतम ऋषि ने अपनी तपस्या के बल से इंद्र द्वारा किए गए दुष्कर्म को पहचान लिया था, जबकि रा. में उनकी पुत्री स्वाहा ने अपने पिता को काल–अचना के दुष्कर्म के बारे में बताया था। वा. में अहल्या को मुक्ति के बारे में भी बताया गया जबकि रा. में इसप्रकार का कोई उल्लेख नहीं है।

●

वाली और सुग्रीव का जन्म

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

जब भगवान विष्णु ने राजा दशरथ के यहाँ पुत्र भाव से जन्म ले लिया, तब ब्रह्मा जी ने सभी देवताओं से कहा, 'भगवान विष्णु सत्यप्रतिज्ञ, वीर और हम लोगों के हितैषी हैं। तुम लोग उनके सहायक के रूप में ऐसे पुत्रों की सृष्टि करो, जो बलवान, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ, माया जानने वाले, शूरवीर, वायु के समान वेगशाली, नीतिज्ञ, बुद्धिमान,

विष्णुतुल्य पराक्रमी, किसी से परास्त न होने वाले, तरह–तरह के उपायों के जानकार, दिव्य शरीरधारी तथा अमृतभोजी देवताओं के समान सब प्रकार की अस्त्रविद्या के गुणों से संपन्न हों। प्रधान–प्रधान अप्सराओं, गंधर्वों की स्त्रियों, विद्याधारियों, किन्नरियों तथा वानरियों के गर्भ से वानररूप में अपने ही तुल्य पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करो।' तभी ब्रह्मा जी ने यह भी बताया कि ऋक्षराज जाम्बबान की सृष्टि तो उन्होंने पहले से ही कर ली है। ब्रह्मा जी के ऐसा कहने पर देवताओं ने उनकी आज्ञा स्वीकार कर वानर रूप में अनेक पुत्रों की उत्पत्ति की।

इसी क्रम में देवराज इंद्र ने वीरराज वाली को पुत्र रूप में उत्पन्न किया जो महेन्द्र पर्वत के समान विशालकाय और बलिष्ठ था और भगवान सूर्य ने सुग्रीव को जन्म दिया। इंद्र कुमार वाली और सूर्यकुमार सुग्रीव दोनों भाई थे। समस्त वानरयूथपति उन दोनों भाईयों की सेवा में रहते थे। वाली महान बल से संपन्न और विशेष पराक्रमी थे। उन्होंने अपने बाहुबल से रीछों, लंगूरों और वानरों की रक्षा की थी।

रामकीर्ति के अनुसार

पिछले अध्याय 'गौतम मुनि और अहल्या प्रसंग' में वर्णित है कि काल–अचना से पैदा हुए इंद्र और आदित्य के पुत्र काकशबिरि और सुग्रीव वानर बनकर जंगल में चले गए।

इंद्र और आदित्य ने जब अपने बच्चों की दुर्दशा देखी, उन्होंने उनके लिए एक नगर का निर्माण किया और उसका नाम खिडकिन रखा। तब उन्होंने मंत्रों की शक्ति से संसार के सभी वानरों को आने और सबसे बड़े वानर काकश के राज्याधिकार में उस नगर में बसने के लिए कहा। इसप्रकार काकश सभी वानरों का राजा बन गया।

काकशबिरि बाली कैसे बना, इस बारे में रा. में एक घटना का वर्णन किया गया है। एक बार की बात है, स्वर्ग में वसंत ऋतु थी। सभी देवता उस मनोहर ऋतु को बड़े ही हर्षोल्लास से मना रहे थे। समुद्र की देवी, मणिमेखला भी उस समारोह में भाग लेने के लिए जा रही थी। उस

समय उस देवी के पास एक रहस्यमय मणि थी जिसकी ख्याति दूर–दूर तक फैली हुई थी। अतुलनीय शक्ति वाला राक्षस रामासुर[30] भी स्वर्ग को जाने वाले रास्ते में ही था जब उसने मणिमेखला को उस मणि से खेलते हुए देखा। उसको अपने अधिकार में करने की इच्छा से वह देवी का पीछा करने लगा। चूंकि रामासुर अपनी अपराजेय वीरता के लिए विख्यात था, इसलिए उसके द्वारा मणिमेखला का पीछा किए जाने पर सभी देवी–देवताओं का हृदय भय से भर गया और वे बिना देरी किए अपने घरों को भाग गए। लेकिन इतने विशालकाय राक्षस के द्वारा अपना पीछा किए जाने से मणिमेखला को एक अनूठा आनंद मिल रहा था। इसलिए वह मणि दिखाकर उसे तरसाने लगी। रामासुर चाहे जितनी भी तेजी से दौड़ लेता, वह उसको नहीं पकड़ सकता था। लगातार तरसाने वाली, पर अपने आप को कभी भी उसके अधिक पास न होने देने वाली मणिमेखला अब तक उसकी पहुँच से बाहर थी। अंत में वह बहुत क्रुद्ध हो गया और अपनी कुल्हाड़ी फेंककर उसे मारने का प्रयास किया। लेकिन कुल्हाड़ी से देवी को कोई नुकसान नहीं पहुँचा। इसने केवल उसके क्रोध को अधिक बढ़ाने में सहायता की जो अब अपनी सीमा लाँघ चुका था।

ठीक उसी समय अत्यधिक शक्ति वाला अर्जुन[31] नाम का कोई देवता रामासुर के रास्ते में आ गया। उसने अभागे देवता को पकड़ लिया और उसे सुमेरु पर्वत पर दे मारा। इतने प्रचंड आवेग को सहने में असमर्थ पर्वत एक ओर झुक गया। इससे खुश होकर कि उसका क्रोध संतुष्ट हो चुका है, रामासुर अपने निवास को वापस लौट गया।

---

30 रामासुर स्पष्ट रूप से परशुराम हैं। लेकिन यहाँ उन्हें राक्षस कहा गया है, जो कि भारतीय अवधारणा से बिल्कुल अलग व्याख्या है क्योंकि इसमें उन्हें नारायण के एक अवतार के रूप में माना गया है। यह रामासुर उस रामासुर से बिल्कुल ही अलग है जिसने राम का सामना किया था। इस पर ध्यान देना आवश्यक होगा कि परशुराम की विभिन्न गतिविधियों के आधार पर एक जैसा 'रामासुर' नाम रखकर अलग–अलग व्यक्तित्व की संरचना की है।

31 अर्जुन निस्संदेह कर्तवीर्जार्जुन है जो कोई भगवान नहीं था बल्कि एक राजा था।

जब ईस्वर ने सुमेरु पर्वत को झुकी हुई स्थिति में देखा, उन्होंने तीनों लोकों के सभी प्राणियों को उसे उठाने के लिए बुलाया। उन्होंने पर्वत को सर्प से लपेटा और उसे ऊपर उठाने लगे। किंतु उन सभी के प्रयास निष्फल रहे। सुमेरु पर्वत वैसे ही झुका रहा, जैसे पहले था। अंत में सुग्रीव ने स्वेच्छा से अपनी सेवाएं अर्पित कीं। उसने सर्प के मध्य भाग को दबाया। स्पर्श के प्रति अति संवेदनशील होने के कारण उसने अपने शरीर से पर्वत को चारों ओर से जकड़ लिया। उसी समय काकश ने अपना कंधा सुमेरु पर्वत के साथ लगाया और उसे सीधा खड़ा कर दिया।

बुद्धि और शक्ति के अद्‌भुत प्रदर्शन से प्रसन्न होकर ईस्वर ने दोनों भाईयों को पुरस्कृत किया। काकश को त्रिशूल मिला जिसकी सहायता से वह किसी के विरुद्ध लड़ सकता था और उसे 'बाली', बलवान की उपाधि मिली। जबकि उस समय अनुपस्थित सुग्रीव के लिए उन्होंने तारा नाम की एक किशोरी को उसके भाई की देखरेख में भेज दिया। उसे एक पात्र में रख दिया गया। नारायण ने ईस्वर के इस निर्णय पर यह कहते हुए अप्रसन्नता जताई कि एक युवक के साथ एक किशोरी को भेजना वैसा ही है जैसा मधुमक्खी के सामने फूल रखना। किंतु बाली ने उन्हें आश्वस्त किया कि यदि वह अपने वादे से मुकरेगा तो राम के वाणों से मृत्यु का आलिंगन करेगा। बाली घर पर आया और तारा के सौंदर्य को निहारा। उसने उसे इतना अधिक वशीभूत कर लिया कि वह अपने वादे को भूल गया और उसे अपनी पत्नी बना लिया।

उल्लेखनीय बिंदु

वा. में वाली और सुग्रीव का जन्म वानरों के रूप में ही हुआ है जबकि रा. में ये दोनों पहले मानव रूप में थे। गोतम ऋषि के द्वारा तथ्य की जाँच के लिए किए गए निर्णय के आधार पर ये वानर रूप को प्राप्त हुए। वा. में इनकी माता के बारे में कोई वर्णन नहीं है और न ही मणिमेखला, रामासुर और अर्जुन वाला प्रसंग है। बाली और सुग्रीव द्वारा सुमेरु पर्वत को उठाने की घटना भी वा. में नहीं है। वा. में वाली का नाम वाली ही है जबकि रा. में उसका पहला नाम काकशबिरि बताया गया है और सुमेरु पर्वत को सही स्थिति में लाने के परिणामस्वरूप 'ईस्वर' ने

उसे 'बाली' अर्थात् बलवान की उपाधि से अलंकृत किया। रा. में बाली को राम के द्वारा मारे जाने का संकेत भी स्पष्ट है। इसके साथ ही रामासुर और अर्जुन के बारे में स्वामी जी का मानना है कि रामासुर स्पष्ट रूप से परशुराम हैं। लेकिन यहाँ उन्हें राक्षस कहा गया है, यह भारतीय अवधारणा से बिल्कुल अलग व्याख्या है।

●

हनुमान का जन्म

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

सुमेरु नाम का एक प्रसिद्ध पर्वत था जो सूर्यदेव के वरदानस्वरूप सुवर्णमय हो गया था। उस पर हनुमान के पिता केसरी राज्य किया करते थे। उनकी अंजना नाम से विख्यात एक पत्नी थीं। जब भगवान विष्णु ने राजा दशरथ के यहाँ पुत्रभाव से जन्म ले लिया, तब ब्रह्माजी ने सभी देवताओं से कहा कि वे लोग उनके सहायक के रूप में ऐसे पुत्रों की सृष्टि करें, जो बलवान, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ, माया जानने वाले, शूरवीर, वायु के समान वेगशाली, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, विष्णुतुल्य पराक्रमी, किसी से परास्त न होने वाले, तरह–तरह के उपायों के जानकार, दिव्य शरीरधारी तथा अमृतभोजी देवताओं के समान सब प्रकार की अस्त्रविद्या के गुणों से संपन्न हों। ब्रह्माजी की आज्ञानुसार वायुदेवता ने अंजना के गर्भ से हनुमान नाम के ऐश्वर्यशाली वानर को जन्म दिया। हनुमान वायुदेव के औरस पुत्र थे। उनका शरीर वज्र के समान सुदृढ़ था। उनकी गति गरुड़ के समान थी। वे सभी वानरों में सर्वाधिक बुद्धिमान और बलवान थे।

एक दिन माता अंजना फल लाने के लिए आश्रम से निकलीं और गहन वन में चली गईं। माता से बिछुड़ जाने और भूख से पीड़ित होने के कारण हनुमान जोर–जोर से रोने लगे। इतने में उन्होंने जपाकुसुम के समान लाल रंग वाले सूर्यदेव को उदित होते देखा। उन्होंने उसे कोई फल समझा और फल के लोभ से वे सूर्य की ओर जोर से उछले। सूर्य को पकड़ने की इच्छा से वे आकाश में उड़ते ही चले गए। अपने पुत्र को सूर्य की ओर जाते देख उसे दाह से बचाने के लिए वायुदेव

भी बर्फ के समान शीतल होकर उसके पीछे–पीछे चलने लगे। उड़ते हुए बालक हनुमान आकाश को लाँघते हुए सूर्यदेव के पास पहुँच गए। उन्हें बालक जान सूर्य ने भी उन्हें जलाया नहीं।

जिस दिन हनुमान सूर्यदेव को पकड़ने के लिए उछले, उसी दिन राहु द्वारा सूर्यग्रहण किया जाना था। हनुमान ने सूर्य के रथ के ऊपरी भाग से ज्यों ही राहु का स्पर्श किया तो वह डरकर वहाँ से इंद्र के पास भाग गया। हनुमान को दूसरा राहु समझकर उसने इंद्र से गुस्से में कहा कि जब वह सूर्य को ग्रस्त करने की इच्छा से वहाँ गया, तभी दूसरे राहु ने आकर सूर्य को पकड़ लिया। यह सुन इंद्र घबरा गए और गजराज ऐरावत पर आरूढ़ होकर उस स्थान की ओर चल दिया जहाँ हनुमान के साथ सूर्यदेव विराजमान थे। राहु इंद्र को छोड़कर बड़े वेग से आगे बढ़ गया। हनुमान सूर्य को छोड़कर, राहु को ही फल मानकर उसे पकड़ने के लिए पुनः आकाश में उछले। सूर्य को छोड़ अपनी ओर धावा करने वाले हनुमान को देख राहु अपनी रक्षा करने के लिए इंद्र को पुकारने लगा। इंद्र ने हनुमान पर वज्र के द्वारा प्रहार किया जिससे वे एक पहाड़ पर जा गिरे और उनकी बाँई ठुड्डी टूट गई।

अपने पुत्र के गिरते ही वायुदेव इंद्र पर कुपित हो उठे। उनका क्रोध प्रजाजनों के लिए बड़ा ही अहितकारक हुआ। प्रजाजनों से समस्त वायु खींचकर वे अपने शिशु पुत्र को लेकर एक गुफा में घुस गए। इधर वायु के प्रकोप से त्रस्त समस्त प्रजा दौड़ती हुई ब्रह्माजी के पास गई और वायुरोधजनित दुःख को दूर करने की प्रार्थना करने लगी।

इस पर ब्रह्माजी ने बताया कि इंद्र द्वारा उनके पुत्र हनुमान पर वार किए जाने के कारण वायुदेव कुपित हैं। सबको मिलकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। तब सभी उस स्थान पर गए जहाँ वायुदेव छिपे बैठे थे। ब्रह्माजी को देख वे अपने पुत्र को लिए हुए ही उनके सामने उठ खड़े हुए और उन्होंने ब्रह्माजी को नमन किया। जैसे ही उन्होंने उस शिशु पर हाथ फेरा, वैसे ही वह शिशु उठ खड़ा हुआ। अपने पुत्र को उठ खड़ा देख प्रसन्न हुए वायुदेव पूर्ववत् वायु का संचार करने लगे।

ब्रह्माजी ने तब सभी देवताओं से संसार का कल्याण करने और वायुदेवता की प्रसन्नता के लिए उस शिशु को वर देने के लिए कहा। इंद्र

ने कमलों की माला पहनाते हुए कपिश्रेष्ठ को 'हनुमान' नाम से अलंकृत किया। इसी तरह सूर्य, वरुण, यम, शंकर, विश्वकर्मा आदि अन्य देवताओं ने भी उसे अनेकानेक वरदान दिए। अंत में ब्रह्माजी ने वायुदेव से कहा, 'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकार के ब्रह्मदंडों से अवध्य होगा।' देवताओं के जाने के बाद वायुदेव उसे लेकर अंजना के पास आए और देवताओं के द्वारा दिए गए वरदान की बात बताकर चले गए।

वरदानों के वेग से भरे हुए हनुमान शांतचित्त महात्माओं के आश्रमों में जाकर भाँति–भाँति के उपद्रव मचाने लगे। केसरी और वायुदेव दोनों ने भी उसे ऐसा न करने के लिए कहा फिर भी वह वानरवीर उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर ही देते। इससे भृगु ऋषि और अंगिरा के वंश में उत्पन्न हुए महर्षि ने कुपित होकर उन्हें शाप देते हुए कहा, 'वानरवीर! तुम जिस बल का आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे शाप से मोहित होकर तुम दीर्घकाल तक भूले रहोगे–तुम्हें अपने बल का पता ही नहीं चलेगा। जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्ति का स्मरण दिलाएगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा।' महर्षियों के इन वचनों के प्रभाव से उनका तेज और ओज घट गया और फिर उन्हीं आश्रमों में वे मृदुल होकर विचरने लगे।

रामकीर्ति के अनुसार

गोतम मुनि और अहल्या प्रसंग' में बताया जा चुका है कि जब स्वाहा ने अपनी माता काल–अचना के निष्ठाहीन व्यवहार और काकशबिरि तथा सुग्रीव के जन्म की बात अपने पिता गोतम को बता दी थी। इस पर उन्होंने अपनी पत्नी को एक पत्थर के रूप में बदलने का शाप दे दिया था। तब काल–अचना को अपनी पुत्री पर बहुत क्रोध आया और उसने उसे शाप दिया कि वह एक हाथ से टहनी को पकड़कर खडी रहेगी और केवल हवा से अपना भरण–पोषण करेगी। उसे उस शाप से तभी मुक्ति मिलेगी जब वह एक शक्तिशाली वानर बच्चे को जन्म देगी।

संयोग से ईस्वर की दृष्टि स्वाहा की दुर्दशा पर पड़ी और उन्हें उस पर दया आ गई। इसके अतिरिक्त, उसमें उन्हें राक्षसों के विरुद्ध लड़ाई में राम की सहायता करने की संभावना दिखाई दी। इसलिए उन्होंने अपनी शक्ति और साथ ही अपने सभी दिव्यास्त्रों की शक्तियों को

विभाजित कर दिया और वायु से उन शक्तियों को लेकर स्वाहा के मुख में रख देने के लिए कहा ताकि उसके एक ऐसा पुत्र हो जिसका शरीर सभी अस्त्रों के समुच्चयन से बना हो। गदा उसकी मेरुदंड होगी ताकि वह आसमान में विचरण कर सके। त्रिशूल उसका शरीर, हाथ और पैर होने के साथ–साथ उसका विशेष अस्त्र होगा जो उसके वक्षस्थल से सदा चिपका रहेगा ताकि वह जब चाहे उसे बाहर निकाल सके। चक्र उसका सिर होगा, जबकि वायु को उसका पिता होने का आदेश दिया गया।

तदनुसार वायु ने ईस्वर की आज्ञा का पालन किया और तत्क्षण ही स्वाहा[32] ने गर्भधारण कर लिया। तीस महीने के लंबे अंतराल के बाद उसने सोलह साल के लड़के के समान बड़े, एक सुंदर सफेद वानर बच्चे को जन्म दिया। सामान्य मार्ग के स्थान पर वह अपनी माँ के मुख से बाहर आया। उसके पिता वायु ने उसका नाम हनुमान रखा। उसकी माता ने उसे बताया कि उसके शरीर पर कुछ विशेष चिन्ह हैं जैसे दोनों कानों में कुंडल, दो चमकीले तीक्ष्ण दाँत (श्वदंत) और एक सफेद घुंघराला बाल। लेकिन वे नारायण के अतिरिक्त अन्य सभी के लिए अदृश्य रहेंगे। इसलिए जो कोई भी उनको देख पाने में सक्षम होगा, वह अवश्य ही उनका अवतार होगा जिनकी सेवा हनुमान को ईमानदारी और निष्ठावान सिपाही की तरह करनी होगी। इस बच्चे को जन्म देने के बाद स्वाहा को शापित जीवन से छुटकारा मिल गया।

अब, एक दिन बालक हनुमान अपनी वानरीय शरारतें करते हुए बगीचे में खेल रहा था। संयोग से बगीचा देवी उमा का था। उन्हें जब यह पता चला कि उनका प्रिय बगीचा हनुमान की अपराजेय शक्ति से नष्ट किया जा चुका है, उन्होंने उसे तुरंत शाप दे दिया कि उसकी शक्ति कम होकर आधी रह जाएगी। लेकिन परेशान हनुमान द्वारा अनुनय–विनय

---

32 स्वाहा निस्संदेह वाल्मीकि की अंजना हैं, यद्यपि उसकी व्याख्या मूल से बिल्कुल अलग है, जहाँ पर यह केसरी की पत्नी और कुंजर की पुत्री के रूप में जानी जाती है और वह स्वयं पुंजिकस्थली नामक एक स्वर्गिक परी थी जिसे वानर के रूप में जन्म लेने के लिए शाप दिया गया था। रामकीर्ति, पृ 25

करने पर अंततोगत्वा उन्होंने उसे एक वरदान देने की कृपा की कि वह अपनी मौलिक शक्ति को पुनः प्राप्त कर लेगा जब नारायण राम के अवतार के रूप में उसके शरीर का सिर से पांव तक स्पर्श करेंगे।

कुछ दिनों के बाद उसके पिता वायु उससे मिलने आए। वे अपने पुत्र को ईस्वर के पास ले गए जिन्होंने उसे सिखाया कि कैसे रूप बदला जाता है और कैसे अदृश्य हुआ जाता है। वानर को कृपा करके अमरत्व का वरदान भी दे दिया गया। चूंकि हनुमान बाली और सुग्रीव के भानजे थे, इसलिए ईस्वर ने उन्हें कैलास पर्वत पर आने के लिए कहलवाया ताकि वे उनका परिचय उनके मामाओं से करवा सकें। इसके अतिरिक्त, उनकी त्वचा की सूखी पपड़ी से ईस्वर ने बाली के लिए जम्बुबान नामक वानर का सृजन किया जो औषध में निपुण हुआ। जब बाली और सुग्रीव ईस्वर से मिलने आए, तब उन्होंने नवसृजित वानर को पोष्य बालक के रूप में बाली को दे दिया। अतः हनुमान और जम्बुबान दोनों भाईयों के साथ उनके देश खिडकिन चले गए।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों ग्रंथों में हनुमान का जन्म वायुदेव से हुआ बताया गया है। वा. में उनके पिता केसरी का वर्णन है जबकि रा. में उनका वर्णन नहीं है। वा. में अनेक देवताओं और ब्रह्मा के वरदानों से हनुमान बलशाली तथा अवध्य बने जबकि रा में ऐसा वर्णन नहीं है। रा. में हनुमान के शरीर की संरचना ईस्वर की शक्ति तथा उनके विविध अस्त्रों के समुच्चयन से बनी बताई गई है। उनके शरीर को विशिष्ट चिन्हों से चिन्हित बताया गया है। वा. में हनुमान को भृगु तथा अनंग ऋषि के वंशज द्वारा शापित किया जाता है, जबकि रा. में उमा द्वारा। दोनों ग्रंथों में शाप उनकी शक्ति को कम करने के लिए दिया जाता है लेकिन वा. के अनुसार उन्हें अपने बल की याद तब आएगी जब किसी के द्वारा उसकी याद करवाई जाएगी, जबकि रा. में राम द्वारा उनके शरीर का स्पर्श करने पर उन्हें अपने मौलिक बल की याद आ जाएगी।

●

सीता का जन्म

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

एक बार रावण, जो दसग्रीव के नाम से भी जाना जाता था, हिमालय के वन में घूम रहा था। तभी उसने ब्रह्मर्षि कुशध्वज की अत्यंत सुंदर पुत्री वेदवती को ऋषिप्रोक्त विधि से तपस्या में संलग्न देखा। उसे देख कर वह काममोहित हो गया। उसने वेदवती से उसकी तपस्या करने का कारण पूछा। जब उसने बताया कि उसके पिता तीनों लोकों के स्वामी भगवान विष्णु से उसका विवाह करना चाहते थे किंतु बलाभिमानी दैत्यराज शंभु द्वारा उनकी हत्या कर दी गई। अतः उसने अपने पिता के मनोरथ को पूरा करने के लिए भगवान नारायण को पति के रूप में पाने की प्रतिज्ञा की है, इसीलिए वह यह महान तप कर रही है। यह सब जान लेने पर भी रावण ने उसे अपनी पत्नी बनाने का प्रलोभन कई बार दिया किंतु वह व्यर्थ गया। जब वह नहीं मानी, तब रावण ने अपने हाथों से उसके केश पकड़ लिए। इस पर क्रोधाभिभूत हो वेदवती ने अपने हाथों से अपने केशों को मस्तक से अलग कर दिया। फिर जल कर मरने के लिए उतावली हो, अग्नि की स्थापना करके उस निशाचर को दग्ध करती हुई–सी बोली, 'तुझ पापात्मा ने इस वन में मेरा अपमान किया है, इसलिए मैं तेरे वध के लिए फिर उत्पन्न होऊँगी। यदि मैंने कुछ भी सत्कर्म, दान और होम किए हों तो अगले जन्म मैं सती–साध्वी अयोनिजा कन्या के रूप में प्रकट होऊँ तथा किसी धर्मात्मा पिता की पुत्री बनूँ।' और अग्नि में प्रवेश कर अपने जीवन का अंत कर लिया।

तदन्तर दूसरे जन्म में वह कन्या पुनः एक कमल से प्रकट हुई। लेकिन उस राक्षस ने वहाँ से उस कन्या को प्राप्त कर लिया तथा अपने घर ले गया। उसने मंत्री को वह कन्या दिखाई। बालक–बालिका के लक्षणों को जानने वाले उस मंत्री ने कन्या को अच्छी तरह देखकर रावण को बताया, 'यह सुंदर कन्या यदि घर में रही तो आपकी मृत्यु का कारण होगी।' इस पर रावण ने उसे समुद्र में फेंक दिया। तत्पश्चात् वह कन्या समुद्र में बहती हुई राजा जनक के यज्ञमंडप के मध्यवर्ती भूभाग में जा पहुँची। एक दिन जब राजा जनक स्वयं हाथ में हल लेकर यज्ञ के योग्य

क्षेत्र को जोत रहे थे, तभी वह कन्या भूमि से प्रकट हुई। राजा जनक की दृष्टि उस पर पड़ी। उसके सारे अंगों में धूल लिपटी हुई थी। उस अवस्था में उसे देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन दिनों उनके कोई संतान नहीं थी, इसलिए स्नेहवश राजा जनक ने उसे अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार कर लिया और उसे पुण्यकर्मपरायणा बड़ी रानी को सौंप दिया जिन्होंने मातृ समुचित सौहार्द से उसका लालन–पालन किया। क्योंकि वह कन्या हल के अग्र भाग से खींची गई रेखा (सीता) से प्रकट हुई थी, इसलिए उसका नाम सीता रखा गया।

रामकीर्ति के अनुसार

दसकंठ अपनी सारी पत्नियों में रानी मंडो को बहुत प्रेम करता था। अपनी रानी की इच्छा को पूरा करने के लिए दसकंठ खुशी से अपनी जान भी दे सकता था।

जब दशरथ द्वारा संतान प्राप्ति के लिए यज्ञ किया गया, तब अग्नि में से निकले दिव्य भोजन की सुगंध दूर–दूर लंका तक फैल गई। उस सुगंध के प्रति रानी मंडो इस सीमा तक आकृष्ट हो गई कि उसने दसकंठ से इस भोज्य को लाने के लिए प्रार्थना की। दसकंठ अपनी प्रिय रानी की प्रार्थना को अस्वीकार न कर सका। उसने काकना नामक राक्षसी को कौए का रूप धारण करने और भोजन चुराने की आज्ञा दी। काकना केक के मात्र आधे टुकड़े को ही चुराने में सफल हो पाई और उसने उस टुकड़े को मंडो को लाकर दे दिया। इसके कारण रानी ने गर्भ धारण कर लिया। कुछ समय के बाद एक कन्या का जन्म हुआ जो वास्तव में लक्ष्मी का अवतार थी। जैसे ही कन्या ने आँखें खोलीं, वह चिल्ला पड़ी, 'रावण को मार डालो, रावण को मार डालो।' लेकिन उसकी आवाज उसके माता–पिता को सुनाई नहीं दी।

उसके जन्म के बाद दसकंठ द्वारा बिभेक सहित ज्योतिषियों को आमंत्रित किया गया और उनसे सलाह ली गई। उन्होंने भविष्यवाणी की कि कन्या की नियति में दसकंठ के संपूर्ण वंश का विनाश निर्धारित है। इतनी डरावनी भविष्यवाणी से घबराकर दसकंठ ने अपने भाई बिभेक को

आदेश दिया कि इस कन्या के साथ जैसा वह उचित समझे, व्यवहार करे। बिभेक ने उसको एक पात्र में रख दिया और एक राक्षस को उसे नदी में फैंकने का आदेश दिया।

लक्ष्मी के दिव्य प्रभाव के कारण नदी की सतह पर एक कमल उग आया जिसने पात्र को ग्रहण कर लिया। समुद्र की अधिष्ठात्री देवी मणि मेखला ने दूसरे सभी देवी–देवताओं के साथ मिलकर उस कन्या की रक्षा की, जबकि लक्ष्मी के दिव्य प्रभाव से वह पात्र संयोगवश राजा जनक नामक ऋषि के स्नान स्थल पर पहुँच गया।

यद्यपि जनक मिथिला के राजा थे। किंतु राजसी वैभव से ऊब कर वे संसार को त्याग कर नदी के किनारे एक तपस्वी जीवन जीने लगे थे। एक दिन जब वे प्रतिदिन की तरह स्नान करने आए, उन्होंने स्नान स्थल के सामने एक तैरते हुए पात्र को देखा। जिज्ञासु राजा ने जब उसका ढक्कन खोला तो उसमें उन्होंने एक नवजात शिशु को पाया। उसे तत्काल पिलाने के लिए दूध न पाकर उन्होंने प्रार्थना की कि उनकी अंगुली के अग्रभाग से दूध निकल आए और कन्या को भूखे मरने से बचा ले।

वे न तो अपने राज्य वापस लौटना चाहते थे और न ही बच्चे के कारण अपना तापसी जीवन खतरे में डालना चाहते थे। इसलिए वे बच्चे सहित पात्र को जंगल में ले गए। वहाँ उन्होंने पेड़ के नीचे एक गड्ढा खोदा और प्रार्थना की कि यदि इस कन्या की नियति में राजा के अवतार के रूप में नारायण की पत्नी होना तय है तो पात्र को ग्रहण करने के लिए इस गड्ढे में एक कमल खिल जाए। वास्तव में उनकी प्रार्थना से गड्ढे में एक कमल खिल गया। जनक ने सहायता के लिए देवताओं का आह्वान किया, पात्र को उसकी पंखुडियों में रख गड्ढे को मिट्टी से ढक दिया और देवताओं के संरक्षण और सुरक्षा में उस बच्चे को छोड़ दिया।

सोलह साल बीत जाने पर जब जनक की कोई आध्यात्मिक उन्नति नहीं हुई, तब तापसी जीवन को आगे चला सकने में असमर्थ उन्होंने अपने राज्य वापस लौटने का निर्णय किया। लेकिन उन्हें अब भी

पात्र में रखे बच्चे के प्रति प्रेम था, इसलिए उन्होंने अपने सेवक सोमा को पात्र को खोद निकालने का आदेश दिया। लेकिन सोमा के सारे प्रयास निष्फल सिद्ध हुए। परेशान और अचम्भित राजा जनक ने अपने एक सेवक को, खोदने और जोतने के औजारों सहित सैनिकों की एक टुकड़ी को लाने के लिए मिथिला भेजा।

उनके सारे प्रयत्नों के बावजूद पात्र अब भी उनकी पहुँच के बाहर था। अंत में ज्योंही ही राजा जनक ने स्वयं अपने हाथ में हल उठा कर उसे खोजना शुरू किया, त्योंही पात्र दृष्टिगोचर हो गया और उस पात्र के मध्य में कमल की पंखुड़ियों पर, अपने सौंदर्य की कांति से सभी की आँखों को चौंधियाती हुई, अत्यंत सुंदर युवती विराजमान थी। चूंकि कन्या हल की क्यारी से निकली थी, अतः उसे सीता नाम दिया गया।

जनक अपनी पोष्य पुत्री सीता और सेवकों के साथ राजधानी लौट आए। कुछ ही समय में सीता निस्संतान रानी रत्नामणि की आँखों का तारा हो गई और राज्य में दूर–दूर तक सभी की प्रिय हो गई।

उल्लेखनीय बिंदु

वा. और रा. में वर्णित सीता के जन्म की कहानी में सबसे बड़ी समानता यह है कि दोनों में ही सीता के पिता का नाम राजा जनक है और वे निस्संतान हैं। दोनों में ही सीता नाम रखने का कारण एक ही है। दोनों ही ग्रंथों में सीता को पैदा होने के बाद त्यागने का कारण भी एक सा ही है। किंतु इन दोनों ग्रंथों में सीता के जन्म के कारण में कई भिन्नताएं दिखाई देती हैं जो इसप्रकार हैं–वा. में सीता पूर्व जन्म में वेदवती थी, जो एक कमल से प्रकट हुई थी। रा. में सीता का जन्म मंडो के गर्भ से हुआ था। वह जन्म लेते ही चिल्ला पड़ी कि रावण को मार डालो। इसमें सीता को लक्ष्मी का अवतार माना गया है। किंतु इसप्रकार का कोई उल्लेख वा. में नहीं है। वा. में रावण ने स्वयं कन्या को समुद्र में फेंका था जबकि रा. में विभेक ने उसे एक पात्र में रख एक राक्षस द्वारा नदी में फिंकवाया था। वा. में जनक राजा ही हैं जबकि रा. में वे उस समय राजसी वैभव का त्याग कर तापसी जीवन व्यतीत कर रहे थे। वा.

में जनक की पत्नी के नाम का उल्लेख नहीं है, रा. में उनका नाम रत्नामणि बताया गया है।

●

ताटका वध

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

राजा दशरथ के चारों पुत्र जब वेदों के विद्वान, शूरवीर और सभी गुणों से संपन्न हो गए, तब एक दिन ऋषि विश्वामित्र उनके राजदरबार में उपस्थित हुए। राजा ने उन्हें अर्घ्य निवेदन कर उनके शुभ आगमन का उद्देश्य पूछा, साथ ही उसे पूर्ण करने का आश्वासन भी दिया।

इस पर ऋषि ने बताया, 'मैं सिद्धि के लिए एक नियम का अनुष्ठान कर रहा हूँ। उसमें इच्छानुसार रूप धारण करने वाले सुबाहु और मारीच नामक दो बलवान राक्षस मांस और रक्त की वर्षा करके विघ्न डाल रहे हैं। यद्यपि मैं स्वयं शाप देकर उन्हें नष्ट कर सकने में समर्थ हूँ तथापि मैं उन्हें शाप भी नहीं दे सकता क्योंकि वह नियम ही ऐसा है जिसे आरंभ करने पर किसी को शाप नहीं दिया जाता। अतः उन्हें मारने के लिए मुझे श्री राम को दे दीजिए। इनके अलावा अन्य कोई उन्हें नहीं मार सकता।' महर्षि की बात सुनकर राजा दो घड़ी के लिए संज्ञाशून्य हो गए। फिर सचेत होकर उन्होंने अनेक प्रकार के बहाने बनाकर उन्हें मना करने का प्रयास किया। राजा दशरथ के ऐसे वचन सुन ऋषि को क्रोधावेश हो आया। वे बोले, 'पहले वस्तु को देने की प्रतिज्ञा करके अब तुम उसे तोड़ना चाहते हो। प्रतिज्ञा का यह त्याग रघुवंशियों के विनाश का सूचक है।' विश्वामित्र को क्रोधाविष्ट देख महर्षि वशिष्ठ ने राजा को अनेक तरह से समझाया। इससे दशरथ का मन प्रसन्न हो गया और उन्होंने खुशी से राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ विदा कर दिया।

जब राम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ जा रहे थे, उन्होंने एक भयंकर वन देखा। उसके बारे में पूछने पर ऋषि ने बताया कि इस वन में ही इच्छानुसार रूप धारण करने वाली सुकेतु नाम से

प्रसिद्ध यक्ष की पुत्री यक्षिणी ताटका रहती है जो बुद्धिमान सुन्द की पत्नी है और इंद्र के समान पराक्रमी मारीच नामक राक्षस की माता है। मारीच ऋषि अगस्त्य के शाप से राक्षस हो गया था। ऋषि अगस्त्य के शाप से ही यक्षिणी ताटका नरभक्षिणी राक्षसी हुई थी। यह सब बताने के बाद ऋषि ने राम से उसे मारकर इस देश को निष्कंटक बना देने के लिए कहा। तब राम ने उसे मारने की प्रतिज्ञा की और फिर धनुष के मध्य भाग में मुट्ठी बाँधकर प्रत्यंचा पर तीव्र टंकार दी जिसकी आवाज से चारों दिशाऐं थर्रा उठीं।

ताटका भी उस आवाज को सुन पहले तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई, किंतु थोड़ी देर बाद कुछ सोचकर वह रोष में भरकर उस दिशा की ओर तेजी से दौड़ी जिधर से आवाज आई थी। उसने उन दोनों रघुवंशी वीरों पर धूल उड़ाना शुरू कर दिया, फिर माया का आश्रय लेकर उन पर पत्थरों की वर्षा करने लगी। यह देख राम कुपित हो उठे और उन्होंने अपने तीखे वाणों से उस निशाचरी के दोनों हाथ तथा लक्ष्मण ने उसके नाक–कान काट डाले। अदृश्य हुई ताटका पर जब राम ने शब्दवेधी वाण का संधान किया, तब वह जोर–जोर से गर्जना करती हुई दोनों भाईयों पर टूट पड़ी। पुनः राम ने एक वाण चलाकर उसकी छाती में मारा और उस का अंत कर दिया।

ताटका को मारी गई देख इंद्र आदि देवताओं ने राम की बहुत प्रशंसा की और विश्वामित्र जी से प्रजापति कृशाश्व के सत्यधारी और तपोबल संपन्न अस्त्रों को राम को समर्पित करने की प्रार्थना की। उस ताटका वन में ही मुनि ने अनेकानेक अस्त्र–शस्त्र तथा शक्तियाँ राम को प्रदान कीं तथा उन अस्त्रों की संहार विधि भी उन्हें समझाई।

तत्पश्चात् सिद्धाश्रम पहुँचकर मुनि विश्वामित्र ने विधि विधान से यज्ञ का आरंभ किया जिसकी रक्षा राम और लक्ष्मण करने लगे। तभी मारीच और सुबाहु नामक राक्षस अपने अनुचरों के साथ सब ओर अपनी माया फैलाते हुए यज्ञमंडप की ओर दौड़े आए और रक्त की वर्षा करने लगे। यह देख कमलनयन राम ने अपने धनुष पर मानवास्त्र का संधान कर मारीच की छाती पर मारा जिसके आघात से वह पूरे सौ योजन की

दूरी पर समुद्र के जल में जा गिरा और उसके बाद शीघ्र ही आग्नेयास्त्र का संधान कर सुबाहु की छाती पर चलाया जिसके लगते ही सुबाहु धरती पर गिर पड़ा।

रामकीर्ति के अनुसार

जब राम और उनके भाई यथेष्ट आयु के हुए, उन्हें शिष्य के रूप में ऋषि वसिट्ठ और ऋषि स्वामित्र को सौंप दिया गया। कुछ ही समय में वे ज्ञान के सभी क्षेत्रों में दक्ष हो गए। अपने शिष्यों की प्रगति से संतुष्ट हो, गौरवान्वित आचार्यों ने राम आदि के लिए शक्तिशाली बाणों को प्राप्त करने हेतु एक यज्ञ का आयोजन किया। जब पवित्र अग्नि प्रज्ज्वलित की गई, ईस्वर ने नीचे अग्नि के मध्य में बारह बाण गिराए, प्रत्येक के लिए तीन बाण जिन पर उनके नाम अंकित थे। उनमें से राम को ब्रह्मास्त्र, अग्निवत और ब्लैवत प्राप्त हुए जो सभी बाणों में सर्वोत्तम थे।

इसप्रकार विध्वंसक अस्त्रों को चलाने में निपुण और उन्हें धारण करने में शक्तिसंपन्न होकर वे चारों भाई घर वापस आ गए जिससे माता–पिता और प्रजा में हर्ष छा गया।

इसी बीच, जब दसकंठ को इस बात का भय हुआ कि तपस्यारत ऋषि अलौकिक शक्तियों में कहीं उससे आगे न निकल जाएं, उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए उसने काकनासुर [33]को भेजा। उसने और उसके दल ने अपने आप को कौओं के रूप में बदल लिया और ऋषियों के लिए भीषण बाधाएं उत्पन्न करने लगे। ऐसे राक्षसी खतरों का सामना करने में असमर्थ, वे सब मिलकर सहायता प्राप्ति हेतु वसिट्ठ और स्वामित्र के पास पहुँचे। दोनों ऋषि दसरथ के दरबार में गए और राम और लक्षण की सहायता पाने के लिए प्रार्थना की। सत्पुरुषों के निमित्त सदा समर्पित रहने वाले दोनों राजकुमार ऋषियों को दानवी विपत्ति से मुक्त कराने के लिए तुरंत चल पड़े। काकनासुर राम के तीक्ष्ण

---

33 ताड़का रामकीर्ति पृ 34

बाणों का शिकार हो गई। उसके दो पुत्र स्वाहु और मारीश[34] अपनी माँ की मृत्यु का पता चलने पर उसकी मौत का बदला लेने के लिए आए। स्वाहु का अंत तो उसकी माँ की तरह ही हुआ जबकि मारीश लंका भाग गया।

उल्लेखनीय बिंदु

वा. में राम आदि चारों भाईयों की शिक्षा–दीक्षा वशिष्ठ की देखरेख में हुई थी जबकि रा. में वसिट्ठ और स्वामित्र की देखरेख में हुई। वा. की ताटका, सुबाहु और मारीच ही रा. के काकनासुर, स्वाहु और मारीश हैं। वा. में जब राक्षस ऋषि विश्वामित्र की तपस्या में विघ्न डालने लगे, वे स्वयं राजदरबार में उपस्थित हुए। जबकि रा. में अन्य ऋषियों द्वारा निवेदन करने पर वसिट्ठ और स्वामित्र राजा दसरथ के दरबार में गए। वा. में राम और लक्ष्मण को अलौकिक वाणों की प्राप्ति ताटका–वध के बाद हुई, जबकि रा. में चारों भाईयों को अलौकिक वाण काकनासुर के वध से पहले ही प्राप्त हो चुके थे। ताटका–वध का तरीका भी दोनों में अलग–अलग है। वा. में ताटका बुद्धिमान सुन्द की पत्नी और मारीच की माता के रूप में वर्णित है, सुबाहु का उसके पुत्र के रूप में उल्लेख नहीं है जबकि रा. में उसके पति का उल्लेख नहीं है और सुबाहु और मारीश दोनों उसके पुत्र माने गए हैं।

●

राम और सीता का विवाह

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

जब सीता धीरे–धीरे युवा होने लगीं, राजा जनक को उनके विवाह की चिंता सताने लगी। उस समय जनक ने यह निश्चय किया, 'मैं धर्मतः अपनी पुत्री का स्वयंवर करूँगा।' स्वयंवर के लिए उन्होंने घोषणा

---

[34] सुबाहु, मारीच रामकीर्ति पृ 34

की कि जो भी अपने पराक्रम से भगवान शिव के द्वारा दिए गए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उसी के साथ सीता का विवाह कर दिया जाएगा। ऋषि विश्वामित्र को भी उस घोषणा की जानकारी थी। अतः विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मण को वहाँ लेकर आए। उन्होंने राजा जनक से उन दोनों को धनुष दिखाने के लिए कहा।

धनुष दिखाने से पहले राजा ने उस धनुष का पूरा वृतांत बताते हुए कहा कि बहुत समय पहले दक्ष के यज्ञ विध्वंस के समय परम पराक्रमी भगवान शंकर ने रोषपूर्वक इस धनुष को उठाकर देवताओं से कहा, 'मैं यज्ञ में अपना भाग प्राप्त करना चाहता था किंतु तुम लोगों ने मुझे नहीं दिया। इसलिए मैं इस धनुष से तुम लोगों के श्रेष्ठ अंग काट डालूंगा।' इसे सुनकर शिव के क्रोध से भयभीत देवतागण भगवान शिव की स्तुति करने लगे जिससे वे प्रसन्न हो गए। प्रसन्न होकर उन्होंने इस धनुष को देवताओं को अर्पित कर दिया। देवताओं ने इस धनुष को जनक के पूर्वज महाराज देवरात के पास धरोहर के रूप में रख दिया।

भगवान शंकर का यह धनुष इतना भारी था कि किसी से भी पूरा प्रयत्न करने पर भी यह हिल नहीं पाता था। भूमंडल के नरेश स्वप्न में भी उसे उठा सकने में असमर्थ थे। इस धनुष को पाकर जनक ने भूमंडल के राजाओं को आमंत्रित करके उपरोक्त घोषणा की। बहुत से पराक्रमी राजा आए और उन्होंने उसे उठाने का बहुत यत्न किया लेकिन कोई भी उसे उठाने अथवा हिलाने में समर्थ न हो सका।

पूरा वृतांत बताने के बाद जनक ने विश्वामित्र को धनुष दिखाते हुए कहा कि यही वह श्रेष्ठ धनुष है जिसका जनकवंशी नरेशों ने सदा पूजन किया है। उन्होंने ऋषि से इसे उन दोनों राजकुमारों को दिखाने का अनुरोध किया। तब विश्वामित्र ने राम से उसे देखने के लिए कहा। राम ने उनकी आज्ञा का पालन करते हुए उसे देखा और स्वयं ही कहा, 'मैं इसे उठाने और इस पर प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयत्न करूँगा।' महर्षि की आज्ञा से राम ने धनुष को बीच से पकड़कर लीलापूर्वक उठा लिया और खेल–सा करते हुए उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। ज्योंही उसे कान तक खींचा, त्योंही वह बीच से टूट गया। टूटते समय उससे वज्रपात के समान

बड़ी भारी आवाज हुई। तब राजा जनक ने कहा, 'महादेव के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना अत्यंत अद्भुत, अचिन्त्य और अतर्कित घटना है। मेरी पुत्री सीता दशरथकुमार राम को पति के रूप में प्राप्त करके जनकवंश की कीर्ति का विस्तार करेगी।' तदुपरांत राजा जनक ने ऋषि विश्वामित्र से आज्ञा लेकर राजा दशरथ को आमंत्रित करने के लिए अपने मंत्रियों को भेजा। राजा दशरथ के आ जाने पर जनक द्वारा उनका स्वागत–सत्कार किया गया और फिर बड़ी प्रसन्नता से अपनी दोनों पुत्रियों सीता को राम के लिए और उर्मिला को लक्ष्मण के लिए समर्पित करने की बात कही। उसके बाद वशिष्ठ सहित विश्वामित्र ने भरत और शत्रुघ्न के लिए क्रमशः मांडवी और श्रुतकीर्ति का वरण करने के लिए कहा। इसप्रकार राम का विवाह सीता के साथ, लक्ष्मण का विवाह उर्मिला के साथ, भरत का मांडवी के साथ और शत्रुघ्न का विवाह श्रुतकीर्ति के साथ संपन्न हुआ। चारों पुत्रों का विवाह संपन्न हो जाने पर राजा दशरथ ने विदेहराज मिथिला नरेश से अनुमति लेकर अपनी राजधानी अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।

रामकीर्ति के अनुसार

अप्रतिम सौंदर्यसंपन्न युवती सीता किसी और से नहीं, वरन् एक ऐसे वीर से विवाह करने योग्य मानी गई जो उसे विवाह भेंट के रूप में अपनी यथेष्ट वीरता का परिचय दे सके। इस समय राजा जनक के पास एक धनुष था जो ईस्वर ने उन्हें दिया था। ईस्वर ने इसका प्रयोग सोलाश राज्य पर शासन करने वाले त्रिपुरम नामक राक्षस को मारने के लिए किया था। लड़ाई के बाद उन्होंने धनुष जनक के पास भिजवा दिया था और कवच को ऋषि अगत के पास नारायण को उस समय देने के लिए रखवा दिया जब वे दसकंठ को पराजित करने के लिए अवतार लेंगे। जनक ने संसार के सभी राजाओं को सूचित किया कि जो कोई भी ईस्वर के धनुष[35] को उठाने में सफल होगा, उसे सीता का हाथ देकर सम्मानित

[35] वाल्मीकि के अनुसार, ईश्वर ने धनुष का प्रयोग दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने के लिए किया था। रामकीर्ति पृ 35

किया जाएगा। बहुत से राजा आए और प्रयास किया, लेकिन किसी को सफलता नहीं मिली।

उस समय राम के अदम्य पराक्रम से बहुत प्रसन्न दोनों ऋषियों, वसिट्ठ और स्वामित्र ने सोचा कि वे ही सीता के लिए योग्य पति होंगे। इसलिए काकनासुर के वध के उपरांत वे दोनों भाईयों को लेकर जनक के दरबार में गए। जब वे महल की खिड़की के नीचे से गुजर रहे थे, राम की दृष्टि सीता की दृष्टि से मिली और पहली ही दृष्टि में उन्हें एक दूसरे से प्रेम हो गया। फिर भी राम को अभी अपनी प्रेमिका का हाथ मांगने से पहले वीरता की कसौटी पर खरा उतरना था।

दोनों भाईयों को धनुष के पास लाया गया। लक्ष्मण ने पहले प्रयास किया और उसने जान लिया कि उसे उठाना बिल्कुल भी मुश्किल नहीं है। लेकिन सीता के प्रति अपने भाई के प्रेम से अवगत होने के कारण उन्होंने स्वयं को धनुष उठाने से रोक लिया। तब राम की बारी आई और उन्होंने उसे एक पंख की तरह उठा लिया और प्रत्यंचा चढा दी और इसप्रकार सुंदर सीता के पति बन गए।

अयुध्या से दसरथ को आमंत्रित किया गया और बड़ी धूमधाम से विवाहोत्सव मनाया गया। समारोह संपन्न हो जाने पर प्रसन्न राजा ने अपने पुत्र और पुत्रवधु के साथ अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान किया।

उल्लेखनीय बिंदु

वाल्मीकि के अनुसार, शिव ने धनुष का प्रयोग दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने के लिए किया था। जबकि रा. में ईस्वर ने इसका प्रयोग सोलाश राज्य पर शासन करने वाले त्रिपुरम नामक राक्षस को मारने के लिए किया। वा. में धनुष जनक के पूर्वज महाराज देवरात के पास रखवाया गया था जबकि रा. में ईस्वर ने स्वयं जनक को धनुष दिया था। वा. में स्वयंवर की जानकारी होने पर विश्वामित्र स्वयं ही राम और लक्ष्मण को धनुष दिखाने के लिए राजा जनक के पास लेकर गए थे, जबकि रा. में वसिट्ठ और स्वामित्र राम को सीता के योग्य जानकर राजा

जनक के दरबार में लेकर गए थे। रा. में राम और सीता के प्रेम का भी संकेत है जबकि वा. में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं है। वा. में केवल राम ने ही धनुष उठाया था जबकि रा. में लक्षण ने पहले धनुष उठाने का प्रयास किया और बाद में राम ने धनुष उठाया। वा. में जनक और कुशध्वज की पुत्रियों के साथ दशरथ के चारों पुत्रों के विवाह का वर्णन मिलता है जबकि रा. में केवल राम के विवाह का वर्णन है।

●

राम–परशुराम प्रसंग

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का विवाह हो जाने पर राजा दशरथ ने राजा जनक से अनुमति लेकर, समस्त महर्षियों को आगे करके अपने पुत्रों, सैनिकों तथा सेवकों के साथ अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया। प्रस्थान के कुछ समय के बाद ही क्षत्रिय राजाओं का मानमर्दन करने वाले, बड़ी–बड़ी जटाएं धारण करने वाले, कैलास के समान दुर्जयी, अत्यंत तेजोमय, भृगुकुलनंदन, जमदग्निकुमार परशुराम सामने से आते दिखाई दिए। राजा दशरथ के साथ विराजमान उन ऋषियों ने उनका स्वागत–सत्कार किया। परशुराम ने राम से कहा कि उनके द्वारा तोड़े गए शिव–धनुष का उन्हें पता चल गया है। उसके टूटने की बात जानकर वे एक दूसरा उत्तम वैष्णव धनुष लेकर आये हैं, वे इसे खींचकर इसके ऊपर बाण चढ़ाएं और अपना बल दिखाएं। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा, 'इस धनुष को चढ़ाने में तुम्हारा बल कैसा है? यह देखकर मैं ऐसा द्वंद्व युद्ध करूँगा जो तुम्हारे पराक्रम के लिए स्पृहणीय होगा।' राजा दशरथ उनके ऐसे वचनों को सुनकर उदास हुए और उन्होंने परशुराम को मनाने का प्रयास किया। किंतु उनके वचनों की अवहेलना करते हुए परशुराम ने पुनः राम को उत्तेजित–सा करते हुए उस वैष्णव धनुष पर बाण चढ़ाने के लिए कहा। उनकी ऐसी बातों को सुनकर राम मौन न रह सके। कुपित होकर राम ने उनके हाथ से वह उत्तम धनुष और बाण लेने के साथ–साथ अपनी वैष्णवी शक्ति को भी वापस ले लिया। उस धनुष की प्रत्यंचा पर

बाण रखकर यही कहा, 'आप ब्राह्मण होने के कारण मेरे पूज्य हैं तथा विश्वामित्र के साथ भी आपका संबंध है। इन सब कारणों से मैं इस प्राण संहारक बाण को आप के शरीर पर नहीं छोड़ सकता।' उसी समय परशुराम का वैष्णवी तेज राम में मिल गया और राम के द्वारा बाण के छोड़े जाने पर, उस बाण ने परशुराम के द्वारा उपार्जित किए गए सभी पुण्यलोकों को नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् परशुराम महेंद्र पर्वत पर चले गए। उनके चले जाने पर राम ने शांतचित्त होकर वह अपार शक्तिशाली वैष्णव धनुष वरुण के हाथ में दे दिया। उसके बाद वशिष्ठ आदि ऋषियों को प्रणाम कर राम ने अपने पिता राजा दशरथ तथा अपनी सेनाओं के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान किया।

रामकीर्ति के अनुसार

जब बारात एक जंगल से गुजर रही थी, अस्त्र के रूप में कुल्हाड़ी को धारण किए रामासुर नामक अर्द्धदेव ने अचानक उसके मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। उसने रास्ते में खड़े होकर बारात को आगे बढ़ने से रोक दिया और इसके मुखिया के बारे में पूछा। जब उन्हें दसरथ के विषय में और ईस्वर के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर सीता से विवाह करने वाले राम के बारे में बताया गया, उसने राम की वीरता की परीक्षा लेनी चाही। तत्पश्चात् उनके बीच युद्ध हुआ[36] जिसके अंत में रामासुर को अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी। राम ने अपने आप को नारायण के रूप में प्रकट किया। रामासुर ने उनका कृपा पात्र बनने के लिए उस धनुष को भेंट किया जो उनके पितामह त्रिमेघ को ईस्वर द्वारा दिया गया था। राम ने उसे आकाश में उछाल दिया ताकि वह बिरुन की देखरेख में रहे और जब कभी उन्हें उसकी आवश्यकता पड़े, उनके पास आ जाए। बारात ने तब फिर अयुध्या के लिए प्रस्थान किया और बिना किसी अन्य बाधा के सुरक्षित अयुध्या पहुँच गई।

---

[36] मूल रामायण के अनुसार, राम को परशुराम के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने की चुनौती दी गई थी। रामकीर्ति, पृ 37

उल्लेखनीय बिंदु

इस प्रसंग में दोनों की कथा में मामूली सा अंतर है। ऐसा लगता है कि वा. के परशुराम ही रा. का रामासुर है। दोनों में ही परशुराम और रामासुर ने बारात को आगे बढने से रोक दिया और राम के बल की परीक्षा ली। वा. में परशुराम ने राम को एक दूसरे शक्तिशाली वैष्णव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने की चुनौती दी। जबकि रा. में रामासुर ने राम से युद्ध किया और वह पराजित हुआ। वा. में राम के द्वारा वैष्णव धनुष धारण करते ही परशुराम को पता चल गया कि ये ही त्रिलोकीनाथ श्री हरि हैं जबकि रा. में उन्होंने अपना नारायण रूप प्रकट किया। दोनों ग्रंथों में एक समानता यही है कि वह धनुष अंत में वरुण अथवा बिरुन को दे दिया गया।

●

राम वनवास

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

जब राजा दशरथ ने देखा कि राम बल–पराक्रम में यम और इंद्र के समान, बुद्धि में बृहस्पति के समान और धैर्य में पर्वत के समान हो गए हैं और अपने गुणों से वह प्रजाजन में बहुत प्रिय हो चुके हैं, तब राम को युवराज बनाने के लिए उन्होंने अपने मंत्रिमंडल से परामर्श किया। सभी की सहमति पाकर उन्होंने राम के राज्याभिषेक की तैयारी के लिए आज्ञा दी। राजा ने भिन्न नगरों में निवास करने वाले प्रधान–प्रधान पुरुषों तथा अन्य जनपदों के समस्त राजाओं को अयोध्या आने का निमंत्रण दिया, किंतु केकयनरेश और राजा जनक को नहीं बुलवाया। सभी राजाओं की उपस्थिति में राजा दशरथ ने घोषणा की, 'पुष्यनक्षत्र से युक्त चंद्रमा की भाँति समस्त कार्यों को साधने में कुशल तथा धर्मात्माओं में श्रेष्ठ पुरुषशिरोमणि रामचंद्र को मैं कल प्रातःकाल पुष्यनक्षत्र में युवराज के पद पर नियुक्त करूँगा।' इसके साथ ही वहाँ उपस्थित अन्य राजाओं से इससे भी उत्कृष्ट विचार की सलाह मांगी गई। किंतु सभी ने राजा दशरथ

के विचार को ध्वनिमत से स्वीकार कर लिया। यह घोषणा सुनते ही सारी अयोध्या में खुशियाँ छा गईं।

कैकेयी की एक दासी थी जिसका नाम मंथरा था। जब उसने कैकेयी के महल की छत से अयोध्या में होने वाली तैयारियों को देखा, उसने राम की धाय से इसका कारण पूछा। जब मंथरा ने कल होने वाले राम के राज्याभिषेक का समाचार सुना तो वह मन ही मन ईर्ष्यालु हो गई। उसे इस बात में कैकेयी का अनिष्ट दिखाई दे रहा था। वह कैकेयी के पास गई और अत्यंत क्रोधावेग में कैकेयी के ऊपर आने वाली विपत्ति के बारे में सोचकर उसे उत्तेजित करते हुए कहा, 'कल दशरथ राम को युवराज के पद पर अभिषिक्त कर देंगे, यह समाचार पाकर मैं दुख और शोक से व्याकुल हो अगाध भय के समुद्र में डूब गई हूँ, चिंता की आग में जली जा रही हूँ और तुम्हारे हित की बात बताने के लिए यहाँ आई हूँ।' ऐसी ही उत्तेजित करने वाली अन्य बातें उसने कैकेयी से कहीं। किंतु राम के राज्याभिषेक की बात सुनकर कैकेयी हर्ष से भर गई और उसने उसे पुरस्कारस्वरूप एक दिव्य आभूषण प्रदान किया और कहा, 'यह तूने मुझे बड़ा ही प्रिय समाचार सुनाया। इसके लिए मैं तेरा और कौन–सा उपकार करूँ।' लेकिन उसने उस आभूषण को फेंक दिया और फिर कैकेयी को समझाने लगी। तब भी कैकेयी ने यही कहा कि यदि राम को राज्य मिल रहा है तो उसे भरत को मिला हुआ ही समझ। कैकेयी की यह बात मंथरा को अच्छी न लगी और उसने एक बार फिर कैकेयी को उकसाया कि वह कुछ इस प्रकार का उपाय सोचे जिससे उसके पुत्र को तो राज्य मिल जाए और राम को वनवास हो जाए। बार–बार एक ही बात को सनते–सुनते कैकेयी पर भी उसकी बातों का प्रभाव पड़ गया और उसे भी लगने लगा कि मंथरा जो कुछ कह रही है, सच है। अब उसने मंथरा से ही उपाय बताने को कहा।

उस समय मंथरा कैकेयी से इसप्रकार बोली, 'दक्षिण दिशा में दंडकारण्य के भीतर वैजयंत नाम से विख्यात एक नगर है जहाँ शंबर नाम से प्रसिद्ध एक महान असुर रहता था। वह अपनी ध्वजा में तिमि (ह्वेल मछली) का चिन्ह धारण करता था और सैंकड़ों मायाओं का जानकार था।

एक बार जब उसने इंद्र के साथ युद्ध छेड़ दिया और इंद्र उसे पराजित करने में असमर्थ रहा, तब राजर्षियों के साथ राजा दशरथ तुम्हें साथ लेकर देवराज की सहायता करने के लिए गए थे। राजा ने उसके साथ भयंकर युद्ध किया था किंतु उसमें असुरों ने अपने अस्त्र–शस्त्रों द्वारा उनके शरीर को जर्जर कर दिया था। जब राजा की चेतना लुप्त हो गई, उस समय सारथि का काम करती हुई तुमने अपने पति को रणभूमि से दूर हटाकर उनकी रक्षा की। जब वहाँ भी वे राक्षसों के शस्त्रों से घायल हो गए तब तुमने अन्यत्र ले जाकर उनकी रक्षा की। इससे संतुष्ट होकर राजा ने तुम्हें दो वरदान देने के लिए कहा था। उस समय तो तुमने वे वरदान नहीं लिए थे। मंथरा ने कहा कि अब उन दोनों वरदानों को माँगने का समय आ गया है। तुम उन दोनों वरदानों को अपने स्वामी से माँगो। आप राम को चौदह वर्षों के लिए बहुत दूर वन में भेज दीजिए और भरत को भूमंडल का राजा बनाइए।' ऐसी बातें कहकर मंथरा ने कैकेयी की बुद्धि में अनर्थ को ही अर्थरूप में जँचा दिया। अब कैकेयी को उसकी बातें अच्छी लग रही थीं। उसे लगने लगा था कि मंथरा ही उसकी असली शुभचिंतक है।

राज्याभिषेक की तैयारी के लिए आज्ञा दे कर जब राजा दशरथ रनिवास में आए, तब उन्हें पता चला कि कैकेयी कोपभवन में भूमि पर पड़ी हैं। कामाभिभूत राजा ने कैकेयी को मनाते हुए कहा, 'जो कुछ भी चाहती हो, बताओ। मैं राम की शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे मन की कामना अवश्य पूर्ण होगी।' राजा के ऐसा कहने पर कैकेयी ने राजा से अपने दोनों वर माँग लिए–पहले वर से उसने भरत का राज्याभिषेक और दूसरे वर से राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास। कैकेयी के ऐसे वचन सुन राजा एक बार तो मूर्च्छित हो गए। उनकी चेतना लुप्त–सी हो गई। चेतना लौटने पर उन्होंने कैकेयी को समझाने का काफी प्रयास किया लेकिन वह अपनी बात पर अड़ी रही।

प्रातःकाल ऋषियों के कहने पर जब सुमंत्र ने रनिवास में प्रवेश कर राजा की स्तुति कर उन्हें जगाने का प्रयास किया, तब दुख और दीनता से भरे राजा कुछ न कह सके। इस पर कैकेयी ने उन्हें राम को

बुला लाने के लिए कहा। किंतु सुमंत्र राजा की आज्ञा के बिना जाने को तैयार नहीं थे, तब राजा ने उन्हें राम को बुलाने की आज्ञा दी। राजा का संदेश पाते ही राम उत्सवकालिक कृत्य पूर्ण करके सुमंत्र के साथ राजा के पास पहुँचे। निकट पहुँच कर उन्होंने राजा को प्रणाम करने के बाद माता के चरणों में शीश झुकाया और बुलाने का कारण पूछा। राजा तो 'राम' के अलावा कुछ न कह सके किंतु कैकेयी ने बड़ी ही निर्लज्जता से उन्हें अपने दो वरदानों को माँगने की बात बताई और साथ ही यह भी कहा, 'तुम राजा की इस आज्ञा का पालन कर, अपने पिता के महान सत्य की रक्षा करके इन्हें महान संकट से उबार सकते हो।' कैकेयी के ऐसे कठोर वचनों को सुनकर राम को तनिक भी शोक न हुआ और उन्होंने कैकेयी को अपने वन में जाने के प्रति आश्वस्त किया। वे फिर अपनी माँ कौशल्या के पास गए और उन्हें वन जाने की बात से अवगत करवाया जिसे सुन वे फरसे से काटी गई शाल वृक्ष की शाखा के समान सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ीं। राम कौशल्या को समझा–बुझा कर, उनसे वनगमन की आज्ञा लेकर तथा उनसे स्वस्तिवाचन करवा के, सीता के भवन में आए और उन्हें भी कैकेयी के वचनों तथा पिता की आज्ञा के बारे में बताया। सीता ने उनसे उन्हें भी अपने साथ ले चलने के लिए कहा, किंतु राम ने उनसे घर पर रहने का अनुरोध किया। लेकिन सीता ने उनकी यह बात नहीं मानी और वे उन्हें अपने साथ ले चलने का आग्रह करते हुए करुणाजनक विलाप करने लगीं। इसे देख राम को उन्हें अपने साथ ले जाने का निर्णय करना पड़ा। राम और सीता के बीच हो रही बातचीत को जब लक्ष्मण ने सुना तो उन्होंने भी राम के पैर पकड़ लिए और कहा, 'मैं भी आपका ही अनुसरण करूँगा। धनुष हाथ में लेकर मैं आगे–आगे चलूँगा।' राम के बहुत समझाने पर भी जब लक्ष्मण नहीं माने तो राम ने उनसे माताओं से आज्ञा लेने और आयुधों को लेकर लौट आने के लिए कहा।

सीता और लक्ष्मण सहित राम राजा दशरथ से विदा माँगने के लिए आए। राजा दशरथ ने आर्त भाव से रोते हुए कहा, 'तुम कल्याण के लिए, वृद्धि के लिए तथा फिर लौट आने के लिए शांत भाव से जाओ। तुम्हारा मार्ग विघ्न–बाधाओं से रहित हो।' राम, लक्ष्मण और सीता अपने

पिता से आज्ञा लेकर, वल्कल वस्त्रों को धारण कर वनगमन के लिए तैयार हो गए। राम, लक्ष्मण के साथ ही जब दशरथ ने सीता को भी मुनि वेश में देखा तब उन्होंने कोषाध्यक्ष को सीता के पहनने योग्य बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण लाने की आज्ञा दी और उन वस्त्रों और आभूषणों से सज्जित होने के बाद ही सीता को वनगमन की आज्ञा दी। राम, लक्ष्मण और सीता ने हाथ जोड़कर दीन भाव से राजा दशरथ के चरणों का स्पर्श कर उनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की और माताओं से विदा लेकर, पहले से ही राजा दशरथ की आज्ञा से तैयार सुमंत्र के द्वारा चलाए जाने वाले रथ पर आरूढ़ हो वन के लिए चल दिए।

राम के वन के लिए प्रस्थान करते ही सारी अयोध्या में भीषण कोलाहल मच गया। हा राम! हा लक्ष्मण! हा सीते! की रट लगाए पुरवासियों के नेत्रों से गिरे आँसुओं से भीगकर धरती की उड़ती हुई धूल शांत हो गई। जब सुमंत्र राम, लक्ष्मण और सीता को छोड़कर आ गए और उन्होंने उस का समाचार राजा दशरथ को सुनाया, राजा मूर्च्छित हो गए। होश आने पर उनके बारे में सारा समाचार जानकर, पूर्व में किए गए एक दुष्कर्म अर्थात् श्रवणकुमार के वध का स्मरण करने के बाद, 'हा महाबाहु रघुनंदन! हा मेरे कष्टों को दूर करने वाले श्री राम! हा पिता के प्रिय पुत्र! हा मेरे नाथ! हा मेरे बेटे!' कहते हुए राजा दशरथ ने प्राण त्याग दिए।

रामकीर्ति के अनुसार

बूढ़े हो चुके राजा दसरथ अब आगे अपने विशाल साम्राज्य का दायित्व वहन करने में असमर्थ थे, वे राम को अयुध्या के राजा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने राजसभा के सभी सदस्यों को अपनी इच्छा से अवगत कराया। यह सूचना कैयाकेशी की कुबड़ी दासी कुच्ची[37] के कानों में भी पहुँची। इस समय इस दासी के मन में राम के प्रति द्वेष भाव था क्योंकि युवावस्था में राम ने उसके कूबड़ पर इतनी शक्ति से बाण मारा था कि वह आगे की तरफ हो गया था। फिर उन्होंने

[37] वा. मंथरा। शब्द स्पष्ट रूप से कुब्जी का विकृत रूप है। रामकीर्ति, पृ 38

दूसरा बाण लिया और इसे चला दिया जिससे वह पुनः अपनी पहली जैसी स्थिति में आ गया। उनके इस विचित्र कार्य से दर्शक तो खूब हँसे लेकिन कुच्ची के मन में बदले की भावना ने जन्म ले लिया था। अब वह सदैव ऐसे अवसर की तलाश में रहने लगी थी जब उसे राम के प्रति पाले गए अपने पुराने वैमनस्य का बदला लेने का अवसर मिल सके।

अंततः दसरथ द्वारा कैयाकेशी को दिए गए वरदान ने उसके सामने एक सुनहरा अवसर प्रस्तुत कर दिया। जब दसरथ राज–सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे, तब पदुतदंत[38] नामक राक्षस ने स्वर्ग पर आक्रमण किया था। उस समय इंद्र ने राक्षस को पराजित करने के लिए दसरथ से सहायता मांगी थी। अतः उन्होंने तुरंत स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया। उनकी तीनों रानियों में से कैयाकेशी लड़ाई के लिए उनके साथ हो लीं। अब राक्षस के साथ युद्ध करते समय एक भाला रथ की धुरी से आ टकराया और उसके टुकड़े–टुकड़े कर दिए, जिससे दसरथ की विजय की कोई संभावना न रही। अपने पति के इस दुर्भाग्य को देखकर कैयाकेशी ने इस प्रार्थना के साथ कि उसके जीवन पर कोई खतरा न आए, अपने हाथों को धुरी के स्थान पर लगा दिया। इसप्रकार सहायता करने पर दसरथ युद्ध में विजयी हुए। कृतज्ञ राजा ने उनको वरदान दिया कि जो कुछ भी वे चाहें, उन्हें दिया जाएगा। यह जानने पर कि राजा कैयाकेशी को कोई भी वरदान देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं, उसने रानी को वरदान के रूप में राम का निर्वासन और अपने पुत्र बरत के लिए सिंहासन माँगने के लिए उकसाया। कैयाकेशी सरलता से सहमत हो गईं। अपनी सुंदर आँखों में आँसू भरकर उन्होंने दसरथ से राम के लिए चौदह वर्ष का निर्वासन और उसकी जगह बरत को सिंहासन देने के लिए आग्रह किया। राजा ने इस लज्जाजनक कृत्य के लिए रानी को रोकने का भरसक प्रयत्न किया लेकिन रानी अपने आग्रह पर अडिग रही। सत्य के सच्चे अनुयायी होने के कारण राजा का मन अपनी प्रतिज्ञा से हटने के लिए नहीं माना। अत्यंत व्यथित मन से उन्होंने राम को चौदह साल के लिए निर्वासित कर दिया। राम अपने पिता को सत्य के पथ से विचलित नहीं करने देना चाहते थे,

---

38 वा. शंबरा

इसलिए उन्होंने अपनी समर्पित पत्नी और निष्ठावान भाई लक्षण के साथ वन के लिए प्रस्थान किया। सदा से ही मानव कल्याण के प्रबल प्रोत्साहक रहे राम अपने निर्वासन के समय का उपयोग धरती से राक्षसों के पूर्ण विनाश के लिए करना चाहते थे। अयुध्या के राजमहल से राम की अनुपस्थिति शोकसंतप्त राजा के लिए घातक प्रहार सिद्ध हुई और वह वृद्ध मृत्यु को प्राप्त हो गए।

उल्लेखनीय बिंदु

यद्यपि राम वनवास की घटना दोनों ग्रंथों में मिलती है। दोनों ग्रंथों में कैकेयी को वरदान देने का कारण उसके द्वारा दशरथ की युद्ध में रक्षा करना है। अभिव्यक्ति में थोड़ी सी भिन्नता दिखाई देती है। वा. की मंथरा ही रा. की कुच्वी है। मंथरा के मन में राम के प्रति कोई द्वेष हो, इसका वा. में कोई संकेत नहीं है जबकि रा. में इसका कारण पूरी तरह से स्पष्ट है। वा. में दशरथ ने उन्हें दो वरदान देने के लिए कहा था जबकि रा. में वरदानों की संख्या का उल्लेख नहीं है तथापि कैयाकेशी द्वारा दो वरदान ही माँगे गए थे। इसके अतिरिक्त सारी कथा मिलती–जुलती है।

●

राम की चरण पादुकाओं का अधिष्ठापन

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

पुरवासियों को सोता छोड़ राम, लक्ष्मण और सीता सुमंत्र के साथ श्रृंगवेरपुर राज्य से गुजरे, जहाँ त्रिपथगामिनी गंगा बह रही थी। उन्होंने सुमंत्र से वहीं ठहरने के लिए कहा। जब श्रृंगवेरपुर के राजा गुह को राम के आगमन की सूचना मिली, तो वह अपने बंधु–बांधवों के साथ वहाँ आ गया और उनका भलीभांति आतिथ्य–सत्कार किया। उसने राम से अपने राज्य का स्वामी बनकर शासन करने के लिए कहा। राम ने उसके आतिथ्य की बहुत प्रशंसा की और जो वस्तुएं उसने प्रदान की थीं, उन्हें स्वीकार कर पुनः विनम्रतापूर्वक लौटा दिया। सवेरा होने पर गुह से बड़ का दूध मंगवा कर राम और लक्ष्मण ने जटामंडल धारण कर, नाव में

बैठने के बाद सुमंत्र और गुह को वापस लौटा दिया। गंगा पार करने के बाद राम ने पैदल ही आगे बढ़ने का संकल्प किया। राम ने लक्ष्मण से कहा, 'अब तुम सजन या निर्जन वन में सीता की रक्षा के लिए तैयार हो जाओ। हम जैसे लोगों को निर्जन वन में नारी की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। अतः तुम आगे–आगे चलो, सीता तुम्हारे पीछे–पीछे चलें और मैं तुम्हारी और सीता की रक्षा करता हुआ सबसे पीछे चलूँगा।' इसप्रकार लक्ष्मण आगे–आगे, सीता बीच में और राम पीछे–पीछे चलने लगे।

आगे बढ़ते हुए वे भरद्वाज मुनि के आश्रम में जा पहुँचे। अपना परिचय देने के बाद राम, लक्ष्मण और सीता ने मुनि का आतिथ्य स्वीकार किया। किंतु जब मुनि ने उनसे वहाँ रुकने का अनुरोध किया, उनके वहाँ रुकने के प्रस्ताव को यह कहकर अस्वीकार कर दिया, 'मेरे नगर और जनपद के लोग यहाँ से बहुत निकट पड़ते हैं, अतः मैं समझता हूँ कि यहाँ मुझसे मिलना सुगम समझकर लोग इस आश्रम पर मुझे और सीता को देखने के लिए प्रायः आते–जाते रहेंगे; इस कारण यहाँ निवास करना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता। भगवन्! किसी एकांत प्रदेश में आश्रम के योग्य उत्तम स्थान बताइए, जहाँ सुख भोगने के योग्य विदेहकुमारी प्रसन्नतापूर्वक रह सकें।' ऋषि ने वृक्षों से हरे–भरे चित्रकूट पर्वत को उनके रहने योग्य स्थान बताया। ऋषि द्वारा बताए गए मार्ग पर चलते हुए उन तीनों ने कुशलतापूर्वक यमुना नदी पार की और रात वहीं पर व्यतीत की। अगले दिन सीता के साथ दोनों भाई पैदल ही यात्रा करते हुए यथासमय रमणीय एवं मनोरम चित्रकूट पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर राम ने लक्ष्मण से कहा, 'सौम्य! यह पर्वत बड़ा मनोहर है। नाना प्रकार के वृक्ष और लताएं इसकी शोभा बढ़ाते है। यहाँ फल–मूल भी बहुत हैं; यह रमणीय तो है ही। मुझे जान पड़ता है कि यहाँ बड़े सुख से जीवन–निर्वाह हो सकता है। इस पर्वत पर बहुत–से महात्मा मुनि निवास करते हैं। ...हम यहीं निवास करेंगे।' ऐसा विचार करके उन्होंने उस पर्वत पर अपनी दृष्टि दौड़ाई तो उन्हें वाल्मीकि मुनि का आश्रम दिखाई दिया। सीता, राम और लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश किया तथा ऋषि को सादर नमन किया। राम ने अपना यथोचित परिचय दिया। राम ने लक्ष्मण को वहीं पर कुटी बनाने का आदेश दिया।

उपयुक्त स्थान पर बनी उस कुटी में सीता, राम और लक्ष्मण ने निवास हेतु प्रवेश किया।

राम को वन में छोड़ने के बाद जब सुमंत्र अयोध्या पहुँचे, राजा दशरथ ने उनसे राम, लक्ष्मण और सीता की कुशलता पूछी। उसके कुछ ही समय बाद दशरथ ने 'हा राम' कहते हुए अपने प्राण त्याग दिए। राजा के दिवंगत हो जाने पर भरत और शत्रुघ्न जो पहले से ही अपनी ननिहाल में थे, को बुलाने के लिए शीघ्रगामी घोड़ों पर दूतों को भेजा गया। परिणामस्वरूप वे उसी रात उस नगर में पहुँच गए। जिस रात दूत नगर में पहुँचे थे, उसी रात भरत ने एक अप्रिय स्वप्न देखा था जिसके कारण वे बहुत भयभीत थे। दूतों ने भरत से शीघ्र ही चलने के लिए कहा। अपने नाना से आशीर्वाद लेकर उन्होंने अपनी यात्रा आरंभ कर दी।

रास्ते में अनेकानेक नगरों, गांवों और नदियों को पार करते हुए आठवें दिन भरत ने अयोध्या पुरी के दर्शन किए। उसे देख उनके मन में अनिष्ट की आशंका हो रही थी। राजा के दिखाई न देने पर वे अपनी माता के महल में गए। उन्हें देख कैकेयी प्रसन्नता से भर गईं और उनका हालचाल पूछा। सब बातें बताने के बाद जब उन्होंने उनसे अपने पिता, कौशल्या आदि के बारे में पूछा तो उन्होंने दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाया जिसे सुन वे पितृशोक से विह्वल होकर गिर पड़े। फिर कैकेयी ने बताया, 'राजकुमार राम वल्कल वस्त्र धारण करके सीता के साथ दंडकवन में चले गए हैं। लक्ष्मण ने भी उन्हीं का अनुसरण किया है।' और राम के वनगमन की पूरी बात बताई। भरत इस समाचार को सुन और भी संतप्त हो उठे, उन्होंने अपनी माँ से अत्यंत कठोर वचन कहते हुए राज्य लेने से मना कर दिया।

मुनि वशिष्ठ ने भरत से शोक छोड़ने और राजा दशरथ के प्रेतकर्म की तैयारी करने के लिए कहा। उनके कहे अनुसार भरत ने 13 दिन तक किए जाने वाले सभी संस्कार विधिविधान से पूरे किए। अंत्येष्टि क्रिया के संपन्न हो जाने के बाद 14वें दिन समस्त राजकर्मचारियों ने भरत से राज्यकार्य सँभालने का अनुरोध किया। भरत ने ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया और यही कहा कि राज्य पर ज्येष्ठ पुत्र का ही

अधिकार होता है। ऐसा कह उन्होंने वन से राम को लौटा लाने के लिए मंत्रियों, पुरोहितों माताओं तथा विशाल चतुरंगिणी सेना के साथ प्रस्थान किया।

निश्चित गंतव्य तक पहुँचने के बाद सेना को नीचे ही ठहराकर, भरत पैदल ही गुह, सुमंत्र, शत्रुघ्न गुरूजनों और माताओं के साथ चित्रकूट पर्वत पर स्थित राम की पर्णशाला की ओर बढ़ गए। राम को वहाँ देख भरत अपने शोकावेग को न रोक सके और अपनी निंदा करते हुए 'हा आर्य' कहते हुए चीखने लगे। राम के पूछने पर भरत ने उन्हें पिता की मृत्यु का समाचार बता कर उन्हें जलांजलि देने और वन छोड़ अयोध्या चल कर राज्य भार सँभालने के लिए कहा। किंतु दृढ़प्रतिज्ञ राम ने ऐसा करने से मना कर दिया और भरत को समझाते हुए यह भी बताया कि पिताजी का जब उनकी माता से विवाह हुआ था, तभी उन्होंने उनके नानाजी से कैकेयी के पुत्र को राज्य देने की उत्तम शर्त स्वीकार कर ली थी। अतः वह राज्याभिषेक कराएं और किसी प्रकार का विषाद न करें। भरत के साथ वशिष्ठ, जाबालि आदि ऋषियों ने राम को समझाने का प्रयास किया किंतु राम ने एक ही बात कही कि उनके पिता ने जो आज्ञा उन्हें दी है, वह मिथ्या नहीं होगी। भरत के बार–बार कहने पर जब राम नहीं माने तो भरत ने कहा, 'ये दो स्वर्णभूषित पादुकाएं आपके चरणों में अर्पित हैं। आप इन पर चरण रखें। ये ही संपूर्ण जगत का योगक्षेम करेंगी।' राम ने उन पादुकाओं पर अपने चरण रखकर उन्हें भरत को सौंप दिया। तत्पश्चात् भरत ने राम से कहा, 'वीर रघुनंदन! मैं भी चौदह वर्षों तक जटा और चीर धारण करके फल–मूल का भोजन करता हुआ आपके आगमन की प्रतीक्षा में नगर से बाहर ही रहूँगा। इतने दिनों तक राज्य का सारा भार आपकी इन चरण पादुकाओं पर ही रखकर मैं आपकी बाट जोहता रहूँगा। यदि चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर नूतन वर्ष के प्रथम दिन ही मुझे आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।' धर्मज्ञ भरत ने उन पादुकाओं को राजा की सवारी में आने वाले सर्वश्रेष्ठ गजराज के मस्तक पर स्थापित किया और शत्रुघ्न के साथ रथ पर बैठकर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।

रामकीर्ति के अनुसार

राम ने अपने समर्पित भाई और निष्ठावान पत्नी के साथ अपने भविष्य के निवास स्थान वन की ओर प्रस्थान किया। कुछ दूर चलने के बाद वे सतोंग नदी के किनारे आ गए, जहाँ उनकी भेंट शिकारियों के राजा खुखान[39] से हुई। राम के प्रति बहुत समर्पित होने के कारण उसने अपने स्थान पर उन्हें राजा बनने और अपनी वन्य जनजातियों पर शासन करने का अनुरोध किया। चूंकि वह स्थान अयुध्या के बहुत पास था, इसलिए उन्होंने उसके उत्कृष्ट आतिथ्य के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के साथ उसके विनम्र अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। खुखान के साथ उन्होंने नदी पार की और ऋषि भारद्वाज के आश्रम पहुँच गए। उन्होंने भी उनके लिए विनम्र आतिथ्य की व्यवस्था की। ऋषि ने उन्हें सरभंग ऋषि के आश्रम जाने का परामर्श दिया। अतः वे इस नए गंतव्य की ओर चल पड़े और वहाँ समय पर पहुँच गए। ऋषि ने भी उन्हें अपने साथ ठहरने का निमंत्रण दिया, लेकिन यह स्थान अब भी राजधानी से बहुत दूर नहीं था। इसके साथ ही बरत के द्वारा उनका पीछा करने का पूरा अवसर था, अतः राम को उनका यह अनुरोध अस्वीकार करना पड़ा। तब ऋषि ने उन्हें सत्कुट पर्वत पर जाने का परामर्श दिया जहाँ देवताओं ने उनके लिए आरामदायक आवास का निर्माण कर रखा था। इतना उत्साहवर्धक समाचार सुन, प्रसन्न होकर वे तुरंत सत्कुट पर्वत के लिए चल पड़े और एक लंबी यात्रा के बाद अपने इस नए आवास पर पहुँच गए जहाँ वे आराम से रहने लगे।

राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर बरत और सत्रुद फूले न समाए और इस शुभ समारोह में सम्मिलित होने के लिए वे राजधानी की ओर चल पड़े। लेकिन जब वे अयुध्या की सीमा पर पहुँचे, उन्होंने पाया कि इस शुभ अवसर के अनुरूप हर्षोल्लास के स्थान पर सारा शहर शोक के अंधकार में डूबा हुआ है। शीघ्र ही उन्हें इस छाए हुए शोक का कारण पता चल गया। राम के प्रति समर्पित बरत ने, उसके वैध

---

[39] वा. गुहा। यहाँ यह शब्द तमिल भाषा के 'कुकान' से आया है।

उत्तराधिकारी द्वारा छोड़ दिये गए सिंहासन पर आरूढ़ होने के लिए अपनी सहमति नहीं दी। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि पिता के दाह संस्कार के बाद वह जाकर राम को उनके राजसिंहासन के लिए वापस लेकर आयेंगे। मरणासन्न दसरथ के आदेश के अनुसार उन्हें और उनकी माता को धर्मानुष्ठान के किसी भी कार्य में भाग लेने से रोक दिया गया था, इसलिए वसिट्ठ और स्वामित्र के द्वारा उसको संपन्न किया गया। जब धर्मानुष्ठान संपन्न हो गया, बरत और सत्रुद अपनी माताओं के साथ वन के लिए निकल पडे, जहाँ राम निवास कर रहे थे। एक लंबी यात्रा के बाद वे अपने गंतव्य पर पहुँच गए और उन्होंने राम से राजधानी लौटने और प्रजा पर शासन करने के लिए प्रार्थना की। एक आज्ञाकारी पुत्र की तरह उन्होंने न तो इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और न ही उन्होंने इस दुखद घटना की जिम्मेदार कैयाकेशी के प्रति कोई रोष प्रकट किया। लेकिन श्रद्धापूर्ण समर्पण में बरत भी राम से पीछे नहीं रहे। वे भी सिंहासनारूढ़ होने के लिए सहमत नहीं हुए। अंततः इस गतिरोध को दूर करने की इच्छा से बरत ने राम से अपनी चरण पादुकाएं देने के लिए प्रार्थना की ताकि वे उसे राम के प्रतिरूप में सिंहासन पर अधिष्ठापित कर सकें और उनके प्रतिनिधि के रूप में शासन चला सकें। राम ने इस प्रस्ताव को सहमति दे दी। तब, इस अंतिम प्रार्थना के साथ, कि यदि राम चौदह वर्ष बीतने पर नहीं लौटे तो वह और सत्रुद जलती हुई चिता में अपने प्राणों को त्याग देंगे, वे राम के वियोग से संतप्त अयुध्या वापस लौट गए।

उल्लेखनीय बिंदु

चरणपादुकाओं के प्रतिष्ठापन की घटना दोनों ही ग्रंथों में एक जैसी मिलती है। अंतर केवल नामों में है जैसे गंगा नदी के स्थान पर रा. में सतोंग नदी का प्रयोग, चित्रकूट के स्थान पर सत्कुट का प्रयोग है। वा. में जो गुह है, वह रा. में खुखान है। एक थोड़ा–सा अंतर यह है कि वा. में भरत ने दशरथ का प्रेत संस्कार किया था जबकि रा. में दसरथ का अंतिम संस्कार वसिट्ठ और स्वामित्र ने किया था।

वा. में राम द्वारा भरत को बताई गई घटना का संकेत रा. में नहीं मिलता।

●

राम का दंडकारण्य के लिए प्रस्थान

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

भरत के चले जाने के बाद राम ने भी कई कारणों से वहाँ से चले जाना ही उचित समझा। वहाँ से प्रस्थान करते समय रास्ते में वे अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि ने अपनी पत्नी अनुसूया का परिचय सीताजी से करवाया। अनुसूया ने उन्हें पतिव्रत धर्म की शिक्षा दी, साथ ही कई आभूषण भी प्रदान किए। तपस्वी ऋषि–मुनियों से आज्ञा लेकर राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ दण्डक वन में प्रवेश किया।

दण्डकारण्य में प्रवेश करके राम ने मुनियों के बहुत–से आश्रम देखे। उस दुर्गम वन में उन्हें एक नरभक्षी विराध नामक राक्षस मिला जिसकी आँखें गहरी, मुँह बहुत बड़ा, आकार विकट था तथा जो उच्च स्वर में गर्जना कर रहा था। उन्हें देखते ही वह उन तीनों को मारने के लिए दौड़ा और सीता को झपट कर गोद में ले जाकर दूर खड़ा हो गया। विराध ने उनसे उनका परिचय पूछा और उनके द्वारा उसके बारे में पूछे जाने पर उसने बताया, 'मैं जव नामक राक्षस का पुत्र हूँ और मेरी माता का नाम शतह्रदा है। भूमंडल के राक्षस मुझे विराध नाम से पुकारते हैं। ब्रह्मा जी से प्राप्त वरदान के कारण मैं किसी भी शस्त्र से अभेद्य हूँ। तुम दोनों इस युवती को यहीं छोड़ जहाँ से आए हो, वहीं वापस लौट जाओ।' इसे सुन राम की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। फिर राम, लक्ष्मण और विराध में भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध के दौरान ही विराध ने राम, लक्ष्मण और सीता को पहचान कर अपने बारे में बताया कि वह पहले तुम्बुरु नामक गंधर्व था जिसे कुबेर ने राक्षस होने का शाप दिया था, साथ ही उस शाप से मुक्त होने का भी उपाय बताया था कि जब दशरथनंदन राम उसका

वध करेंगे, वह अपने पहले स्वरूप को प्राप्त कर स्वर्गलोक चला जाएगा। अब वह राम के वध द्वारा शापमुक्त हो चुका था। उस विराध ने ही पूर्वावस्था प्राप्त कर राम को शरभंग मुनि के आश्रम के बारे में बताया। उसी के कहने पर लक्ष्मण ने उसके शरीर को गड्ढे में गाढ़ दिया।

जब राम शरभंग मुनि के आश्रम में पहुँचे तो ऋषि ने उनका आतिथ्य–सत्कार किया और थोड़ी दूर पर रहने वाले सुतीक्ष्ण ऋषि के बारे में बताकर राम की अनुमति से उन्होंने अग्नि में प्रवेश कर अपने शरीर को समाप्त कर लिया।

शरभंग ऋषि के ब्रह्मलोक चले जाने पर राम के पास अनेक ऋषि आए। उन्होंने बताया कि इस वन में ब्राह्मण समुदाय राक्षसों द्वारा मारा जा रहा है तथा उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना की। ऋषि–मुनियों के दुख से दुखित हो राम ने उनकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद राम सुतीक्ष्ण ऋषि के पास पहुँचे और एक ऐसे स्थान के बारे में पूछा जहाँ वे कुटी निर्माण कर सुखपूर्वक रह सकें। इसे सुन कर ऋषि ने उन्हें अपने ही आश्रम में रहने को कहा किंतु राम ने उनकी इस बात को स्वीकार नहीं किया। इस पर ऋषि ने उन्हें दण्डकारण्य वन के आश्रमों में जाने के लिए कहा। ऋषि सुतीक्ष्ण के कहने पर वे धर्मभृत मुनि के साथ उस वन के आश्रमों में गए और दस वर्ष का समय वहीं व्यतीत किया।

रामकीर्ति के अनुसार

बरत और उनके परिजनों के अयुध्या प्रस्थान करने के बाद, राम ने सत्कुट से जाने का विचार किया। उन्होंने सोचा कि कहीं ऐसा न हो, अपनी माता से उनकी दुखद भेंट दोबारा हो जाए। इसलिए वे घने जंगल की ओर चल दिए। रास्ते में वे किसी सुदर्शन[40] नामक एक राजा से मिले जो अपनी पत्नी सुक्खई के साथ वानप्रस्थी जीवन बिता रहे थे। उन्होंने राम से अपने साथ ठहरने का निवेदन किया, पर ऊपर बताए कारण से

---

40 वा. सुतीक्ष्ण। मूल रामायण के अनुसार वे एक ऋषि थे। रामकीर्ति, पृ 42

उन्हें उनका निवेदन अस्वीकार करना पड़ा। फिर वे एक बगीचे में पहुँचे जिसका स्वामी कोई बिरवा[41] नाम का दानव था, जिसने ईस्वर की अनुकंपा से महासागर के अधिष्ठाता देवता समुद्र की तथा अग्नि की शक्तियाँ प्राप्त कर ली थीं, जिससे वह बहुत शक्तिशाली हो गया था। बगीचे से गुजरते समय इसके अनेक रक्षकों ने उन्हें ललकारा, पर वे सब के सब लक्षण के द्वारा मार दिए गए। उस समय बिरवा अपने घर पर न था। जब वह वापस लौटा और अपने अधीनस्थों पर पड़ी घोर आपदा को देखा, वह बदला लेने के लिए तुरंत चल पड़ा। लेकिन इतना शक्तिशाली होने पर भी वह राम और लक्षण की संयुक्त वीरता का सामना नहीं कर पाया। उन्होंने आक्रमणकारी का तत्क्षण अंत कर दिया।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों ग्रंथों में यह कथा थोड़ी परिवर्तित है। वा. में वन में प्रवेश करने पर राम की भेंट अत्रि ऋषि और उनकी पत्नी अनुसूया से होती है जबकि रा. में तापसी जीवन बिताने वाले राजा सुदर्शन और उनकी पत्नी सुक्खई से होती है। दोनों ने ही राम को अपने पास ठहरने का निमंत्रण दिया था जिसे राम ने अस्वीकार कर दिया था। अतः दोनों प्रसंगों में समानता है। वा. का विराध रा. का बिरवा है। किंतु इन दोनों की कथा में काफी अंतर है। विराध पहले गंधर्व था जिसे कुबेर ने शापित कर नरभक्षी राक्षस बना दिया था किंतु रा. में बिरवा के पिछले जीवन के बारे में ऐसा कोई वर्णन नहीं है। वा. में विराध का वध राम द्वारा किया गया था जबकि रा. में राम और लक्ष्मण ने संयुक्त रूप से बिरवा का वध किया था।

●

शूपर्णखा का आगमन और खर–दूषण वध

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

---

41 विराध। रामकीर्ति, पृ 42

दस वर्ष बीत जाने के बाद लक्ष्मण और सीता के साथ राम सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में लौट आए। आतिथ्य–सत्कार स्वीकारने के बाद राम ने उनसे महर्षि अगस्त्य के बारे में पूछा। उनके द्वारा बताए गए मार्ग के अनुसार वे महर्षि अगस्त्य के आश्रम पहुँचे। राम के आगमन की सूचना पाकर ऋषि बहुत हर्षित हुए और उनका यथोचित स्वागत किया। आतिथ्य स्वीकार करने के बाद राम ने उनसे ऐसे स्थान के बारे में जानना चाहा जहाँ वे आश्रम बनाकर सुखपूर्वक रह सकें। ऋषि ने कहा, 'यहाँ से दो योजन की दूरी पर गोदावरी के पास पंचवटी नाम से एक बहुत ही सुंदर स्थान है, वहीं जाकर आप लक्ष्मण के साथ आश्रम बनाइए और पिता की आज्ञा का पालन करते हुए वहाँ सुखपूर्वक निवास कीजिए।' यह सुनकर वे ऋषि से आज्ञा लेकर वहाँ के लिए प्रस्थित हुए। पंचवटी जाते समय बीच में राम को एक विशालकाय गीध मिला जो भयंकर पराक्रम प्रकट करने वाला था। राम और लक्ष्मण द्वारा उसका परिचय पूछने पर उसने अपने को राजा दशरथ का मित्र जटायु बताया। उसने कहा कि यह दुर्गम वन राक्षसों से सेवित है। लक्ष्मण सहित वे यदि पर्णशाला से कभी बाहर जाएं तो इस अवसर पर वह देवी सीता की रक्षा करेगा। इसे सुन राम ने उनका बहुत सम्मान किया। जटायु के साथ उन्होंने पंचवटी के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर लक्ष्मण ने उचित स्थान पर एक सुंदर–सी कुटिया का निर्माण किया। फिर शास्त्रीय विधि से पूजा–अर्चना करके और वास्तु शांति करके लक्ष्मण ने उस कुटिया को राम को दिखाया जिसे देख राम बहुत खुश हुए। तत्पश्चात् उन्होंने गोदावरी के तट पर स्नान करके जल से देवताओं और पितरों का तर्पण किया और वे सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे।

एक बार राम लक्ष्मण के साथ किसी बातचीत में व्यस्त थे, तभी दसमुख राक्षस की बहन शूपर्णखा नाम की एक राक्षसी वहाँ आ पहुँची जो राम को देखते ही काममोहित हो गई। उसने तपस्वी वेश धारण करने वाले, साथ में स्त्री और धनुष–बाण ग्रहण करने वाले राम से इस जंगल में आने का कारण पूछा। उन्होंने अत्यंत सहज भाव से अपने आने का कारण तथा लक्ष्मण और सीता के बारे में विस्तार से बता कर फिर उसके बारे में जानना चाहा। उसने भी अपने बारे में बताते हुए कहा कि वह इच्छानुसार

रूप धारण करने वाली, अकेले ही वन में विचरण करने वाली शूपर्णखा नाम की एक राक्षसी है। विश्रवा मुनि के वीर पुत्र रावण, कुंभकर्ण और धर्मात्मा विभीषण उसके भाई हैं। खर और दूषण भी उसके ही भाई हैं। उसने कहा कि उसका मन उन पर आसक्त हो गया है, इसलिए वह उन जैसे पुरुषोत्तम के प्रति पति की भावना रखकर बड़े प्रेम से आई है। किंतु राम उसकी बात को सुनकर हँसने लगे। अपने आप को विवाहित बताकर उन्होंने उससे लक्ष्मण के पास जाने के लिए कहा। लक्ष्मण के पास जाने पर उसने उन्हें भी मनाने का प्रयास किया जिसमें वह सफल न हो सकी। वह फिर राम के पास गई, सीता को राम के साथ बैठी देख वह उनके प्रति दुर्वचनों का प्रयोग करने लगी और सीता को खाने के लिए उन पर जोर से झपटी जिस के कारण राम ने कुपित होकर लक्ष्मण से उसे अंगहीन करने के लिए कहा। देखते ही देखते लक्ष्मण ने उसके नाक–कान काट दिए।

खून से भीगी हुई वह महाभयंकर एवं विकराल रूपवाली निशाचरी नाना प्रकार से चीत्कार करने लगी और भागकर राक्षससमूह से घिरे हुए भयंकर तेजवाले जनस्थान निवासी भाई खर के पास जाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। अपनी बहन को इस अवस्था में देख खर को बहुत क्रोध आया और उसने इस सब का कारण पूछा। शूपर्णखा ने वन में सीता और लक्ष्मण के साथ राम के आने और अपने कुरूप किए जाने का सारा वृतांत कह सुनाया। उसने कहा कि वह उस स्त्री सहित उन दोनों राजकुमारों का खून पीना चाहती है।

शूपर्णखा की बात से क्रुद्ध हुए खर ने अपने चौदह राक्षसों को उनका मुकाबला करने के लिए भेजा जिन्हें राम ने जड़ से कटे वृक्षों की भांति धराशायी कर दिया। उनको मरा देख शूपर्णखा खर के पास पुनः आई और वह समाचार सुनाया। उसे सुनकर क्रुद्ध हुए खर ने अपने सेनापति दूषण से सेना तैयार करने और उन पर आक्रमण करने के लिए कहा। सेना के साथ प्रस्थान करते ही अमंगलसूचक अपशकुन होने लगे जिसकी खर ने परवाह न की। उसे आता देख राम ने सीता को लक्ष्मण के साथ किसी गुफा में सुरक्षित भेज दिया और स्वयं खर, दूषण और सेना

के साथ लड़ने लगे। पहले सेना के साथ दूषण मारा गया, फिर त्रिशिरा आया, उसकी गति भी दूषण के समान ही हुई और अंत में राम का खर के साथ भीषण संग्राम हुआ। राम के द्वारा धनुष के खण्डित होने, रथ के टूटने और सारथि के मारे जाने पर खर हाथ में गदा लिए रथ से कूदकर धरती पर राम के सामने खड़ा हो गया। राम ने उसे बहुत फटकारा जिसे सुन वह तीव्र क्रोध में भर गया और उन पर भयंकर गदा चलाने लगा। राम ने अनेक बाण मारकर उस गदा के टुकड़े–टुकड़े कर डाले और अंत में राम ने इंद्र के द्वारा दिए गए तेजस्वी बाण से खर को धराशायी कर दिया। खर के मारे जाने के बाद लक्ष्मण भी सीता के साथ पर्वत की कंदरा से निकलकर प्रसन्नतापूर्वक आश्रम में आ गए।

रामकीर्ति के अनुसार

सदैव कामुक आमोद–प्रमोद में लिप्त रहने वाली सम्मानखा ने अचानक अपने पति जिव्हा की मृत्यु हो जाने पर अनुभव किया कि उसका विधवा–जीवन काम–सुख से वंचित हो गया है। इसलिए उसने अपने भाई दसकंठ से अपने पुत्र कुंभाकश से मिलने का बहाना बना कर जाने की अनुमति माँगी। लेकिन इसके पीछे उसका छिपा हुआ प्रयोजन रास्ते में नए पति की तलाश करना था।

अंत में एक सुंदर स्त्री के छद्मवेश में वह उस स्थान पर आई जहाँ राम ने अपना आवास बना रखा था। प्रथम दृष्टि में ही वह अयुध्या के राजकुमार के प्रति उन्मत्त प्रेम में पड़ गई। लेकिन राम ने उसके कामुक प्रदर्शन के प्रति कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। जब उसे सीता की झलक मिली, वह राम की निष्ठुरता का कारण समझ गई। इसलिए उसने सीता को मारने के बारे में सोचा ताकि वह राम के हृदय की रानी बन सके। अतः उसने अपना राक्षसी रूप धारण किया और सीता पर झपटते हुए उसे काटने और मारने लगी। राम ने उसे पलटकर मारा जबकि लक्षण ने उसके हाथ–पांव के साथ–साथ उसके कान और नाक

काट दिए और उसे दूर भगा दिया। सम्मानखा रोमागन नगर[42] पहुँची और उस देश के शासक, अपने भाई खर से झूठ बोला कि राम और लक्षण ने उसके साथ प्रेम जताया, किंतु उसके प्रति उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। इस कारण उन्होंने मेरे शरीर के अंगों को काटकर मुझसे बदला लिया। जब खर ने यह सुना, उसे बहुत क्रोध आया। इसलिए अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिए वह अपनी विशाल सेना को साथ लेकर चल पड़ा।

तब राम और खर के बीच एक भयंकर युद्ध छिड़ गया, अपने बाण के पहले ही प्रहार में उसने राम के धनुष को तोड़ दिया। इसलिए राम ने विरुन की देख–रेख में रखे गए रामासुर के धनुष का आह्वान किया। उस शक्तिशाली धनुष की शक्ति का सामना कर पाने में असमर्थ खर मृत्यु का शिकार हो गया। खर की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे भाई दूषन ने राम को युद्ध के लिए ललकारा। लेकिन वह अपने भाई से अधिक अच्छा कुछ न कर सका।

यह खबर तीन मुख वाले भयंकर राक्षस त्रिशिरा के पास पहुँची। उसका एक मुख क्रोधोन्माद में इतनी तेजी से गरजा कि उसकी आवाज देवलोक तक पहुँच गई; दूसरे मुख ने राम के शरीर को इतने महीन टुकड़ों में काटने का दृढ़ निश्चय किया कि वे कौओं के गले में न चिपकें, और तीसरे मुख ने ऐसी सेना को संगठित करने का आदेश दिया जिसके विचित्र सैनिकों के मुख तो नर–पशु के हों और शरीर दूसरे जानवर या अलौकिक प्राणी के हों। किंतु अपने तीनों सिरों और अनूठे दल के साथ वह केवल खर और दूषन के पीछे चल कर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

उल्लेखनीय बिंदु

इस प्रसंग में वा. में जो शूपर्णखा है, वही रा. में सम्मानखा है। किंतु वा. में शूपर्णखा के विवाहित अथवा विधवा रूप का कोई वर्णन नहीं

---

42 स्पष्ट रूप से यह एक जनस्थान है। रामकीर्ति, पृ 45

है और न ही उसके पति और पुत्र का कोई उल्लेख है जबकि रा. में वह जिह्वा की पत्नी और कुंभाकश की माता के रूप में वर्णित है। वा. में उसने युवती का स्वरूप धारण नहीं किया जबकि रा. में वह युवती के रूप में राम से मिली। वा. में राम ने उस पर प्रहार नहीं किया, केवल लक्ष्मण ने ही उसके नाक–कान काटे, जबकि रा. में राम ने भी उस पर प्रहार किया।

वा. में जिस जनस्थान का वर्णन है, उसे ही रा. में रोमागन कहा गया है। वा. में दूषण खर का सेनापति है, त्रिशिरा भी सामान्य राक्षस के रूप में वर्णित है, खर की मृत्यु सबसे अंत में होती है जबकि रा. में दूषण खर का छोटा भाई बताया गया है, त्रिशिरा तीन मुख वाला भयंकर राक्षस बताया गया है तथा खर की मृत्यु सबसे पहले हो जाती है। वा. में राम ने खर के जीवन का अंत इंद्र के धनुष से किया, जबकि रा. में विरुन के दिए हुए धनुष से। बाकी कथा लगभग समान है।

●

सीता का अपहरण

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

खर और दूषण के मारे जाने के बाद अकंपन नामक राक्षस ने बड़ी ही तेजी से अपनी जान बचाकर और लंका जाकर रावण से खर के मारे जाने का समाचार सुनाया। रावण के अत्यधिक क्रोधित होकर पूछने पर उसने राम और लक्ष्मण के पराक्रम और सीता की सुंदरता के बारे में बताया। रावण ने जब राम से युद्ध करने का निश्चय किया तो अकंपन ने ही उसे सीता का अपहरण करने की सलाह दी। रावण ने भी उसकी सलाह मानकर मारीच के पास जाकर अपनी योजना के बारे में बताया किंतु मारीच ने राम के बल और पराक्रम का वर्णन किया और उसे ऐसा न करने का परामर्श दिया। रावण उसकी बात मानकर लंका वापस लौट आया।

उधर शूपर्णखा ने जब देखा कि राम ने अकेले ही चौदह हजार राक्षसों के साथ दूषण, खर और त्रिशिरा को भी मार गिरया है तो वह मेघ गर्जना के समान जोर–जोर से चीत्कार करने लगी। वह अत्यंत उद्विग्न हो अपने भाई रावण के पास लंका चली गई और अत्यंत कुपित वाणी में राम, लक्ष्मण द्वारा की गई अपनी दुर्दशा के बारे में उसे बताया, साथ ही सीता के सौंदर्य की भी बहुत प्रशंसा की। उसने कपटपूर्वक कहा, 'मैं उस सुमुखी स्त्री को जब तुम्हारी भार्या बनाने के लिए ले आने को उद्यत हुई, तब क्रूर लक्ष्मण ने मुझे इस तरह कुरूप कर दिया।'

शूपर्णखा की बात सुनकर रावण ने अपने मंत्रियों से सलाह ली और अपने कर्तव्य का निश्चय कर अपने रथ पर सवार होकर वह पुनः मारीच के पास गया। रावण ने जनस्थान में रहने वाले खर, दूषण और त्रिशिरा के वध का वृतांत सुनाकर कहा, 'जिसने बिना किसी वैर–विरोध के मेरी बहन के नाक कान काट दिए, उनसे बदला लेने के लिए मैं उनकी पत्नी का अपहरण करना चाहता हूँ। इस कार्य में तुम मेरी सहायता करो।' मारीच ने रावण को पुनः अनेक प्रकार से समझाते हुए कहा, 'राजन्! पराई स्त्री के संसर्ग से बढ़कर दूसरा बड़ा कोई पाप नहीं है। तुम्हारे अंतःपुर में हजारों युवती स्त्रियाँ हैं, तुम अपनी उन्हीं स्त्रियों में अनुराग रखो।' लेकिन काल से प्रेरित उस राक्षसराज ने उसकी वह हितकारी बात नहीं मानी और अत्यंत कठोरता से उसके द्वारा बताए गए मायामय कंचन मृग का स्वरूप धारण करने के लिए कहा। मारीच के समक्ष उसकी बात को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था।

मारीच सीता को लुभाने के लिए विविध धातुओं से चित्रित, अत्यंत आकर्षक एवं मनोहर स्वर्ण मृग का रूप बना कर सीता के आश्रम के पास ही घास खाता हुआ विचरने लगा। कुछ समय बाद सीता की दृष्टि मृग पर पड़ी। सीता ने वैसा मृग कभी नहीं देखा था। वे अपने पति और देवर को हथियार लेकर आने के लिए पुकारने लगीं। लक्ष्मण के मन में उस मृग को देख कर संदेह उत्पन्न हुआ और वे बोले, 'भैया! मैं तो समझता हूँ कि इस मृग के रूप में वह मारीच नाम का राक्षस ही आया है। स्वेच्छानुसार रूप धारण करने वाले इस पापी ने कपट–वेष बनाकर वन में

शिकार खेलने के लिए आए हुए कितने ही हर्षोत्फुल्ल नरेशों का वध किया है। यह अनेक प्रकार की मायाएं जानता है। इसकी जो माया सुनी गई है, वही इस प्रकाशमान मृगरूप में परिणत हो गई है।' किंतु मारीच के छल से जिनकी विचारशक्ति हर ली गई थी, ऐसी सीता की जिद के सामने राम और लक्ष्मण की एक न चली और अंततः राम ने उस मृग को पकड़ कर लाने के लिए अपने आप को तैयार किया और लक्ष्मण से कहा, 'बुद्धिमान पक्षी गृधराज जटायु बड़े ही बलवान और सामर्थ्यशाली हैं, उनके साथ ही यहाँ सावधान रहना। मिथिलेशकुमारी सीता को अपने संरक्षण में लेकर प्रतिक्षण सब दिशाओं में रहने वाले राक्षसों से चौकन्ने रहना।'

वह मृग राम को जंगल में काफी दूर ले गया। वे बहुत थक गए थे। ज्योंही उन्हें वह मृग दिखाई दिया, उन्होंने अपना बाण चला दिया जिससे घायल होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसने अपने कृत्रिम शरीर को त्याग दिया। मरते समय रावण का स्मरण आने पर उसने रावण की सहायता करने के विचार से राम के स्वर में ही 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकारा और मृगरूप त्याग राक्षसरूप धारण करके अपने प्राण त्याग दिए। उसी समय राम को लक्ष्मण की कही बात याद आ गई। वे सोचने लगे कि लक्ष्मण की बात सही थी। आज उनके द्वारा मारीच ही मारा गया है। किंतु तभी मारीच द्वारा उच्चरित शब्दों की याद आ जाने पर सोचने लगे, 'उस शब्द को सुनकर सीता की और लक्ष्मण की कैसी दशा हो जाएगी।', इस बात से भयभीत राम ने शीघ्र ही पंचवटी की ओर प्रस्थान किया।

राम की करुण पुकार सुन कर घबराई हुई सीता ने लक्ष्मण से राम की सहायता हेतु जाने के लिए कहा। उनके ऐसा कहने पर भी भाई के आदेश का विचार कर वे नहीं गए, तब सीता ने उनसे कठोर वचन कहे, ''मेरे लिए तुम्हारे मन में लोभ हो गया है, निश्चय ही इसीलिए तुम श्री रघुनाथ के पीछे नहीं जा रहे हो। मैं समझती हूँ, श्री राम का संकट में पड़ना ही तम्हें प्रिय है। तुम्हारे मन में अपने भाई के प्रति स्नेह नहीं है।' तब भी लक्ष्मण ने उन्हें राम के पराक्रम को लेकर आश्वस्त करना चाहा तो सीता ने और भी कठोर वाणी में उन पर भीषण आक्षेप लगाया, 'तू बड़ा

दुष्ट है, श्रीराम को अकेले वन में आते देख मुझे प्राप्त करने के लिए ही अपने भाव को छिपाकर तू भी अकेला ही उनके पीछे–पीछे चला आया है, अथवा यह भी संभव है कि भरत ने ही तुझे भेजा हो।' इन आक्षेपों को सुनकर वे राम के पास चल दिए।

लक्ष्मण के वहाँ से चले जाने पर अत्यंत बलवान रावण को सीता का अपहरण करने का सुनहरा अवसर मिल गया। वह सन्यासी का वेश धारण करके, भव्य रूप में अपनी अभव्यता छिपाकर शीघ्र ही शोक और चिंता में डूबी हुई विदेहकुमारी सीता के सामने जा पहुँचा और मंत्रोच्चारण करने लगा। वेशभूषा से महात्मा बनकर आए रावण का सीता ने अतिथि सत्कार करते हुए उसे भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। उसके बाद उसने सीता से उनका परिचय पूछा। अपना परिचय बताने के बाद जब सीता ने उससे उसका परिचय पूछा तो रावण ने अपने बारे बताकर अपने आने का कारण भी बताया, 'यदि तुम मेरी भार्या हो जाओगी तो सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित पाँच हजार दासियाँ सदा तुम्हारी सेवा किया करेंगी।' रावण की इस प्रकार की बातों को सुनकर सीता कुपित हो उठीं। उन्होंने अपने पति के पराक्रम से रावण को डराने की कोशिश की। रावण ने अपने पराक्रम का बखान कर सीता को एक बार फिर से मनाने का प्रयास किया। लेकिन अपने प्रयास में असफल होने पर उसने तत्काल अपने सौम्य रूप को त्याग कर तीखा एवं काल के समान विकराल रूप धारण कर लिया और निकट जाकर सीता को पकड़ लिया। उसने बाँयें हाथ से सीता के केशों सहित मस्तक को पकड़ा तथा दाहिना हाथ उनकी दोनों जाँघों के नीचे लगाकर उन्हें उठा लिया। इस पर सीता जोर–जोर से 'हे राम!' कह कर पुकारने लगीं। उन्होंने एक वृक्ष पर बैठे हुए जटायु को देखा और उनसे उस समाचार को राम को बता देने की प्रार्थना की। सोते हुए जटायु ने सीता की उस करुण पुकार को सुना। सीता को ले जाते देख उसने रावण को समझाने का प्रयास किया किंतु जब वह नहीं माना, तब जटायु ने कहा, 'मुझे अपने प्राण देकर भी महात्मा राम तथा राजा दशरथ का प्रिय कार्य अवश्य करना है।' जटायु की ऐसी बातों को सुनकर रावण क्रोध से भर गया और उन दोनों के बीच महासंग्राम होने लगा। रावण ने गीध को क्षत–विक्षत कर दिया। गीध ने भी रावण का धनुष तोड़

दिया। वृद्ध गीध को थका देख हर्षित हो वह सीता को लेकर ऊपर की ओर उड़ने लगा किंतु गीध ने अपनी पूरी शक्ति के साथ एक बार फिर उस पर अपनी चंचु से प्रहार कर जख्मी कर दिया, फिर तो रावण को बहुत ही क्रोध आया और उसने उसके पंख, पैर तथा पार्श्व काट दिए जिससे वह जमीन पर गिर पड़ा। जटायु को जमीन पर पड़ा देख जनकनंदिनी जोर–जोर से विलाप करने लगीं।

लेकिन अब रावण का रथ निर्द्वंद्व गति से सीता को लेकर लंका की ओर उड़ रहा था। सीता के शरीर पर विद्यमान आभूषण खन–खन की आवाज के साथ धरती पर गिरते जा रहे थे। उस समय सीता को कोई भी अपना सहायक दिखाई नहीं दे रहा था। रास्ते में सीता ने एक पर्वत के शिखर पर पाँच वानरों को बैठे हुए देखा। उन्होंने सुनहरे रंग की रेशमी चादर उतार कर, उसमें वस्त्र आभूषण रखकर उसे उनके बीच फेंक दिया। रावण उनके इस कार्य को देख न सका। रावण ने सीता के साथ लंका में प्रवेश किया और अंतःपुर की राक्षसियों को बुलाकर कहा कि उसकी आज्ञा के बिना कोई भी सीता को देख न पाए अथवा इनसे मिल न पाए। रावण ने बाहर जाकर आठ महाबली भयंकर राक्षसों को जनस्थान की रक्षा के लिए वहाँ जाने की आज्ञा दी और पुनः अंतःपुर में आकर सीता को लुभाने का भरपूर प्रयास किया। किंतु सीता ने रावण की बातों का निर्भय होकर उत्तर दिया और उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए सारे प्रस्तावों को ठुकरा दिया जिससे कुपित होकर रावण ने राक्षसियों को आदेश दिया,'निशाचरियो! तुम लोग मिथलेशकुमारी सीता को अशोकवाटिका में ले जाओ और चारों ओर से घेरकर वहाँ गूढ़ भाव से इसकी रक्षा करती रहो।' तब वे राक्षसियाँ सीता को लेकर अशोकवाटिका में चली गईं।

रामकीर्ति के अनुसार

खर, दूषण और त्रिशिरा नामक तीनों राक्षसों की मृत्यु ने सम्मानखा को इतना अधिक भयभीत कर दिया कि वह पृथ्वी के नीचे से लंका की ओर चली गई। उस असंदिग्ध कपटी स्त्री ने दसकंठ को बताया कि वह सीता नाम की एक सुंदर स्त्री से वन में मिली थी। जब वह सीता को पत्नी के रूप में भेंट करने के लिए दसकंठ के पास ला रही थी,

लक्षण ने उसका पीछा कर, क्रूरता से उसे दण्डित कर, सीता को उससे छीन लिया। जब उसकी सहायता के लिए खर, दूषण और त्रिशिरा आए तो उन्हें राम ने मार दिया। इसलिए उसने दसकंठ से प्रार्थना की और उसे उकसाया कि वह राम के साथ युद्ध करे और उससे उसकी सुंदर पत्नी छीन ले।

जब दसकंठ ने सीता के सौंदर्य के बारे में सुना, वह सब कुछ भूल गया, यहाँ तक कि राम और लक्षण द्वारा किया गया अपनी बहन का अपमान भी। अब उसके मन में एक ही विचार प्रबल था कि सीता को कैसे पाया जाए। उसने रानी मंडो से सलाह माँगी कि क्यों न वह अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिए उन आदमियों को मारने के स्थान पर उनकी पत्नी सीता का अपहरण कर ले। मंडो को उसकी यह बात स्वीकार्य नहीं थी। किंतु सीता के अपहरण के लिए कृतसंकल्प मन वाले दसकंठ ने अपनी पत्नी मंडो की सलाह की परवाह न करते हुए, मारीश को सोने के हिरण का रूप धारण करने और राम और लक्षण को बहला–फुसला कर कुटिया से दूर ले जाने का आदेश दिया जिसका मारीश ने ईमानदारी से पालन किया।

हिरण मनोहारी तरीके से सीता की कुटिया के सामने चरने लगा। अपने रंग और फुर्ती में अत्यंत सुंदर लग रहे स्वर्णिम हिरण को पालने की इच्छा से सीता ने राम से उसे पकड लाने का अनुरोध किया। राम ने सीता को समझाया कि यह असली हिरण नहीं है बल्कि छद्म वेश में राक्षस है। लेकिन सीता ने राम की एक न सुनी। अंततः राम ने उनके सामने हार मान ली और वे हिरण के पीछे–पीछे चले गए। वह उनको वन के अंदर काफी दूर तक ले गया। लेकिन राम के तेजी से पीछा करने के कारण मारीश इतना अधिक थक चुका था कि वह अब हिरण के रूप में नहीं रह सका। वह अपने राक्षस रूप में आ गया जिसे राम ने तुरंत पहचान लिया। बिना देर किए राम ने उस पर बाण चला दिया जिसने उस पर प्राणघातक प्रहार किया। बचने का कोई रास्ता न पाकर, परंतु फिर भी दसकंठ की सहायता करने की भावना से उसने राम की आवाज की नकल की और चिल्लाया, 'सहायता करो, लक्षण, सहायता करो।

उसके चिल्लाने की आवाज सीता के कानों तक पहुँची। उन्होंने सोचा कि राम अवश्य किसी घातक संकट में हैं। इसलिए उन्होंने लक्षण से शीघ्र ही अपने भाई की सहायता के लिए जाने का आग्रह किया। किंतु लक्षण जानते थे कि यह राम की नहीं अपितु किसी राक्षस की आवाज है। उनके समझाने–बुझाने के बाद भी सीता ने एक बार फिर उनसे जाने का आग्रह किया किंतु उनकी बात के न माने जाने पर उन्होंने लक्षण को कटु शब्दों में फटकारा। अंततः लक्षण ने सीता की रक्षा हेतु देवताओं से सहायता के लिए आह्वान किया और राम की खोज में चल दिए।

अब दसकंठ ने उनकी अनुपस्थिति का लाभ उठाया और सीता के समक्ष साधु के वेश में प्रकट हो गया। एक धर्मात्मा को देखकर सीता ने उसका अपनी छोटी–सी कुटिया में स्वागत किया। लेकिन साधु ने सीता से कहा कि उस जैसी एक सुंदर स्त्री दसकंठ की पत्नी होने योग्य है जो सभी लोकों में सबसे शक्तिशाली राजा है। उस धर्मात्मा के मुख से ऐसी अपवित्र बातें सुनकर सीता ने उसे बुरी तरह फटकारा और निकाल दिया। उनकी झिड़की ने उसके क्रोध को भड़का दिया और वह अपने स्वरूप में आ गया। फिर उसने सीता को बलपूर्वक अपनी बाहों में ले लिया, अपने रथ में बैठाया और लंका की ओर उड़ गया।

उसी समय एक विशाल आकार वाला पक्षी और राम का मित्र सतायु उनसे मिलने आने के लिए रास्ते में था। आकाश के बीच में उसका सामना उसके मित्र की पत्नी को अपहरण करके ले जा रहे रावण से हुआ।

उसने उस राक्षसराज से सीता को तुरंत लौटाने की मांग की। दसकंठ के मना कर देने पर वह स्वयं उससे युद्ध करने लगा। दसकंठ के सारे अस्त्र, चाहे वे कितने भी विनाशकारी थे, उस विशाल पक्षी पर कोई भी असर नहीं डाल पा रहे थे। इस पर सतायु ने उसके निष्फल प्रयासों का मजाक उड़ाया और गर्व से कहा कि इस संसार में कोई अस्त्र उसे नहीं मार सकता सिवाय ईस्वर की अंगूठी के, जो उस समय सीता की अंगुली में थी। उसकी आत्मघाती गर्वोक्ति ने दसकंठ को एक अवसर दे दिया। उसने सीता की अंगुली से अंगूठी निकाली और उस पक्षी पर फेंक

दी। वह नीचे गिर कर मृत–सा हो गया। उसकी चोंच में अभी भी अंगूठी थी और उसकी आत्मा राम की प्रतीक्षा में थी। इसप्रकार, दसकंठ उस इकलौते विरोधी से छुटकारा पाकर लंका पहुँच गया और सीता को अपने हजार पुत्रों की निगरानी में उद्यान में रख दिया।

उल्लेखनीय बिंदु

वा. का रावण ही रा. का दसकंठ है। दोनों ग्रंथों में ही मारीच अथवा मारीश ने सोने के मृग का रूप धारण कर सीता को आकृष्ट किया, राम को सीता की जिद के समक्ष हार माननी पड़ी और मृग का पीछा करने के लिए वन में जाना पड़ा, मरते समय मारीच ने राम की आवाज में 'हा लक्ष्मण!' कहा, सीता का अपहरण सन्यासी रूप धारण करने वाले रावण ने किया, विशालकाय गीध ने सीता को बचाने के लिए रावण से युद्ध किया था। इस प्रसंग में जो अंतर दिखाई देता है, वह इसप्रकार है– वा. में सीता पर्वत पर बैठे वानरों को देख कर अपने वस्त्र और आभूषण फेंकती हैं, जबकि रा. में वह एक वानर के पास अपना दुपट्टा फेंकती है, अकंपन द्वारा रावण को भड़काने की घटना रा. में नहीं मिलती, वा. में मारीच घायल हो जाने पर अपने पूर्व रूप में वापस आया था जबकि रा. में उसने बहुत थक जाने पर ही राक्षस स्वरूप धारण किया था, वा. में मंदोदरी द्वारा रावण को समझाने की बात नहीं है जबकि रा. में है, वा. में जटायु दशरथ का मित्र बताया गया है जबकि रा. में राम का मित्र, रा. में सतायु ने जिस प्रकार की गर्वोक्ति की है वैसी कोई घटना वा. में नहीं है।

●

सीता की खोज

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

इधर जब मृगरूपधारी मारीच का वध करके राम आश्रम की ओर लौट रहे थे कि इतने में ही एक सियारिन कठोर स्वर में चीत्कार करने लगी तथा इसी तरह के कई अपशकुन उन्हें दिखाई पड़े। उन्हें देख कर राम को चिंता होने लगी और चित्त व्याकुल हो गया। इतने में ही उन्हें

लक्ष्मण आते दिखाई पड़ गए। जब उन्होंने लक्ष्मण से सीता को अकेले वन में छोड़कर आने का कारण पूछा तो उन्होंने इसका कारण सीता के ये कटु वचन बताए, 'लक्ष्मण! तेरे मन में मेरे लिए अत्यंत पापपूर्ण भाव भरा है। तू अपने भाई के मरने पर मुझे प्राप्त करना चाहता है, परंतु मुझे पा नहीं सकेगा।' किंतु राम ने लक्ष्मण के इसप्रकार के आचरण पर उनसे यही कहा कि उन्हें सीता को अकेली छोड़कर नहीं आना चाहिए था। सुंदरी सीता के विषय में चिंता करते हुए ही लक्ष्मण के साथ राम तुरंत जनस्थान में आए और उस स्थान को सूना देख विषाद में डूब गए और अत्यंत उद्विग्न हो उठे। शोक के सागर में डूबे हुए और विलाप करते हुए राम कभी वृक्षों और पशु–पक्षियों से पूछते तो कभी–कभी वे पागलों जैसी चेष्टा करते। राम ने सीता को वहाँ के सभी स्थानों पर ढूँढा, परंतु उनका कहीं पता नहीं चला। रास्ते में उन्होंने गिरे हुए फूलों को देखा। उन्हें एक पर्वत पर राक्षस का विशाल पदचिह्न तथा सीता के चरण चिह्न भी दिखाई दिए। वहीं पर जब उन्होंने टूटे धनुष, तरकस और भिन्न होकर अनेक टुकड़ों में बिखरे हुए रथ को देखा तो वह घबरा गए। उन्हें तब लगा कि सीता के लिए परस्पर विवाद करने वाले दो राक्षसों के बीच में यहाँ घोर युद्ध भी हुआ है। अवश्य ही किसी राक्षस ने सीता का अपहरण कर लिया है।

इस प्रकार खोजते हुए राम जब एक स्थान से गुजर रहे थे, उन्होंने खून से लथपथ जटायु को पृथ्वी पर पड़े देखा जिसने बताया कि सीता को रावण हर कर ले गया है। उसने सीता को बचाने के लिए युद्ध भी किया था किंतु अंत में जब रावण के द्वारा उसके पंख, पैर आदि काट दिए गए तो वह कुछ न कर सका और वह रावण सीता को लेकर लंका की ओर उड़ गया। जब राम जटायु से मिले तो उसने यह बात कहकर राम को आश्वस्त किया, 'रावण सीता को जिस मुहुर्त में ले गया है, उसमें खोया हुआ धन शीघ्र ही मिल जाता है। वह विंद नामक मुहुर्त था, किंतु उस राक्षस को इसका पता नहीं था। जैसे मछली मौत के लिए बंसी पकड़ लेती है, उसी प्रकार वह भी सीता को ले जाकर शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।.... रावण विश्रवा का पुत्र और कुबेर का भाई है।' यह कहते हुए जटायु ने प्राणों का त्याग कर दिया। राम ने उसका दाह संस्कार किया।

जटायु के दाह संस्कार के बाद जब वे दोनों मतंग मुनि के आश्रम के पास पहुँचे तब उन्हें अयोमुखी नाम की विशालकाय राक्षसी मिली। उसने लक्ष्मण से अपने साथ रमण के लिए कहते हुए उनका न केवल हाथ पकड़ा वरन् अपनी भुजाओं में भी कस लिया। किंतु लक्ष्मण राक्षसी के ऐसा करने पर क्रोध से भर गए और उन्होंने तलवार निकालकर उसके कान, नाक और स्तन काट डाले। उन अंगों के कट जाने पर वह राक्षसी जोर–जोर से चिल्लाती हुई जहाँ से आई थी, वहीं भाग गई।

आगे बढ़ने पर राम और लक्ष्मण एक गहन वन में जा पहुँचे। वहाँ उन्हें एक विशालकाय कबंध (धड़ मात्र) नामक राक्षस मिला। उसकी छाती में ललाट था और उस में दहकती हुई–सी एक आँख थी। जब वे दोनों भाई उसके निकट पहुँचे, वह उनका रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। वे दोनों उससे दूर जा खड़े हुए और बड़े गौर से उसे देखने लगे। उसने अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर राम और लक्ष्मण को बलपूर्वक पीड़ा देते हुए एक साथ ही पकड़ लिया और उनसे उनका परिचय पूछने लगा। बाद में जब वह उन दोनों को खाने की कोशिश करने लगा, तब उन्होंने उसकी भुजाएं काट डालीं। वह धरती पर गिर पड़ा। कबंध के पूछने पर राम ने अपना परिचय दिया। उसके बारे में पूछे जाने पर कबंध ने अपने बारे में बताते हुए कहा, 'नरश्रेष्ठ श्री राम! मुझे जो यह कुरूप रूप प्राप्त हुआ है, यह मेरी उद्दंडता का ही फल है।' यह कह कर उसने स्थूलशिरा महर्षि के कुपित होने और शाप देने तथा उससे मुक्त होने की कहानी बताई। महर्षि ने कहा था, 'जब श्री राम तम्हारी दोनों भुजाएं काटकर तुम्हें निर्जन वन में जलाएंगे तब तुम पुनः अपने उसी परम उत्तम, सुंदर और शोभासंपन्न रूप को प्राप्त कर लोगे।' तत्पश्चात् राम ने उसे मार दिया और लक्ष्मण ने उसे एक गड्ढे में डालकर आग लगा दी। तदंतर वह कबंध एक तेजस्वी रूप धारण कर रथ पर सवार हो उनके सामने उपस्थित हुआ और राम से कहा कि ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव नाम के वानर हैं जिन्हें उनके भाई वाली ने घर से निकाल दिया है। वे ही सीता की खोज में आपके सहायक होंगे। वहाँ तक पहुँचने का मार्ग और भक्त शबरी के बारे में बताकर वह राम से आज्ञा लेकर वहाँ से चला गया।

रामकीर्ति के अनुसार

मारीश को मारकर राम घर लौट रहे थे, तभी रास्ते में वे लक्षण से मिले। उन्हें वहाँ देख वे बहुत भयभीत हो गए। उन्हें विश्वास हो गया कि लक्षण को किसी चाल में फँसा लिया गया है और सीता असुरक्षित छोड़ दी गई है। दोनों भाई बेचैनी से अपनी कुटिया की ओर दौड़े। कुटिया खाली और वीरान थी।

शोकाकुल राम और लक्षण घबराहट में समझ नहीं पा रहे थे कि उन्हें क्या करना चाहिए। किंतु सौभाग्य से इंद्र वहाँ दृष्टिगोचर हुआ और उसने उन्हें वह रास्ता दिखाया जिससे सीता को ले जाया गया था। दोनों भाईयों ने उस रास्ते का अनुगमन करते हुए घायल शरीर वाले सतायु को देखा। पक्षी ने उन्हें सीता की अंगूठी दी, सीता को ले जाने वाले दसकंठ के बारे में बताया और फिर अपने प्राण त्याग दिए। कृतज्ञ राम ने एक बाण मारा और उससे एक चिता बन गई। तब उन्होंने एक दूसरा बाण चलाया और इसने उसका शरीर जला दिया। अंत में उन्होंने एक तीसरा बाण मारा और इसने आग को बुझा दिया।

इस अनोखे दाहसंस्कार के बाद, उन्होंने सतायु के बताए दिशानिर्देश के अनुसार अपनी खोज दोबारा प्रारंभ की। जब उन्होंने कुछ दूरी तय कर ली, उन्हें कुंबल[43] नाम का कोई राक्षस मिला। ईस्वर से शापित होने के कारण उसके शरीर का केवल ऊपरी भाग ही था। उसके शापित जीवन का अंत राम से मिलने पर ही हो सकता था। जब राम और लक्षण उसकी बाहों की पहुँच में आ गए, उसने उन्हें तुरंत पकड़ लिया और उन्हें निगलने के लिए तैयार हो गया। लेकिन अपने शरीर में एक विचित्र प्रकार के भय की सरसराहट का अनुभव करने पर वह समझ गया कि जो आदमी उसकी पकड़ में है, वह साधारण आदमी नहीं है, बल्कि उसके मुक्तिदाता राम हैं। उसने तुरंत अपनी पकड़ को ढीला कर दिया और वे दोनों भाई उसकी भीषण जकड़ से बाहर आ गए। राम पर

---

43 वा. कबंध रामकीर्ति, पृ 50

पड़ी विपत्ति के बारे में जानकर उस राक्षस ने उन्हें खिडकिन जाने और बाली से परामर्श करने की सलाह दी। कुंबल की सलाह से लाभान्वित होकर राम ने अपना बाण चलाकर उसे कष्टदायक शापित जीवन से मुक्त करने में उसकी सहायता की।

रास्ते में उन्हें अशमुखी[44] नाम की एक राक्षसी मिली जिसे उन दो राजकुमारों से देखते ही प्रेम हो गया। वातावरण को घने काले बादलों से अंधकारमय करके, लक्षण को अपनी बाहों में लेकर वह आकाश में उड़ गई ताकि राम अपने भाई को उसकी जकड़ से छुड़ाने में सफल न हो सकें। परंतु राम के बाण की शक्ति ने सारे बादलों को छितरा दिया और लक्षण को तब अपनी संकटपूर्ण स्थिति के बारे में मालूम हुआ। उन्होंने कुछ वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया जिसने उस राक्षसी को लक्षण को अपनी बाहों में लेकर धरती पर आने के लिए विवश कर दिया। उन्होंने उसकी बाहें काट दीं, तब अशमुखी अपना जीवन बचाने के लिए जंगल में भाग गई।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों ग्रंथों में ये दोनों प्रसंग काफी मिलते–जुलते हैं। केवल इनकी अभिव्यक्ति का अंतर ही समझ में आता है। वा. में अयोमुखी की घटना पहले और कबंध का प्रसंग बाद में है, रा. में कुबंल का प्रसंग पहले और अशमुखी की घटना बाद में है। ऐसा लगता है कि वा. का कबंध ही रा. का कुंबल है और वा. की अयोमुखी ही रा. की अशमुखी है। घटनाक्रम दोनों का एक जैसा है। वा. में कबंध सुग्रीव से भेंट के बारे में बताता है जबकि रा. में कुंबल बाली से भेंट के बारे में कहता है।

●

शबरी प्रसंग

---

44 यह घटना वाल्मीकि रामायण में देखने को नहीं मिलती।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

कबंध के बताए मार्ग पर चलते हुए राम और लक्ष्मण ने पंपा सरोवर के पास स्थित मतंग मुनि का एक सुंदर आश्रम देखा। कबंध ने बताया था, 'इसमें पहले मतंग मुनि के शिष्य रहते थे। कुछ समय के बाद वे सब तो चले गए किंतु उनकी सेवा में सदा तत्पर रहने वाली तपस्विनी शबरी आज भी वहाँ दिखाई देती है। शबरी चिरजीवनी होकर सदा धर्म के अनुष्ठान में लगी रहती है। आप का दर्शन कर शबरी स्वर्गलोक चली जाएगी।' कबंध की इसी बात को ध्यान में रखकर राम ने पंपा सरोवर के पश्चिमी तट पर पहुँचकर शबरी के आश्रम को देखा। शबरी ने राम–लक्ष्मण को प्रणाम कर उनका विधिवत् स्वागत किया। राम ने उस सिद्ध तपस्विनी से कई प्रश्न पूछे जिनका उत्तर देते हुए उसने कहा, 'आप देवेश्वर का यहाँ सत्कार हुआ, इससे मेरी तपस्या सफल हो गई और मुझे आपके धाम की प्राप्ति भी होगी ही।' अंत में उसने स्पष्ट किया कि धर्मज्ञ ऋषियों ने परम धाम को जाते समय कहा था कि इस पवित्र आश्रम में राम जी जरूर आएंगे। वे लक्ष्मण के साथ उसके अतिथि होंगे। उनका यथावत सत्कार करना। उनका दर्शन करके ही उसे श्रेष्ठ एवं अक्षय लोकों की प्राप्ति होगी। अतः उसने उन लोगों के लिए पंपातट पर उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के जंगली फल–मूलों का संचय किया है।

राम के अनुरोध पर शबरी ने सारे आश्रम को दिखाया और उसके महत्व का वर्णन किया। तत्पश्चात् उसने राम से अपनी देह का परित्याग करने की अनुमति मांगी। राम ने उसे अपनी इच्छानुसार आनंदपूर्वक अभीष्ट लोक की यात्रा करने की आज्ञा दी। शबरी अपने शरीर को अग्नि में समर्पित कर स्वर्गलोक (साकेतधाम) चली गई।

रामकीर्ति के अनुसार

बगीचे के स्वामी बिरवा नामक राक्षस का वध करने के पश्चात् उन दोनों विजेताओं और सीता ने वन में अपनी यात्रा फिर शुरू कर दी।

शीघ्र ही वे एक गुफा पर पहुँचे जहाँ सौवरी[45] नाम की एक स्वर्गिक अप्सरा रह रही थी, जिसे ईस्वर की सेवा में लापरवाही बरतने पर जलते हुए जंगल के पास की गुफा में एकाकी जीवन जीने के लिए शापित किया गया था। उसे उसके शापित जीवन से मुक्ति केवल तभी मिल सकती थी जब राम आयें और उस आग को बुझायें। इसलिए उसने राम से आग बुझाने और एक दुखी प्राणी की भलाई के लिए दयापूर्ण याचना की। सदा कृपालु राम ने उसकी याचना को तुरंत स्वीकार कर लिया और सौवरी को पुनः स्वर्गिक आनंद का सुख भोगने में सहायता की।

अंत में वे ऋषि अगत[46] की कुटिया पर पहुँचे जिनके संरक्षण में ईस्वर ने राम को देने के लिए अपना वह अस्त्र रखा था, जिसका उपयोग उन्होंने त्रिपुरम के साथ युद्ध करते समय किया था। ऋषि से अस्त्र प्राप्त करने के पश्चात् राम अपने भाई और पत्नी के साथ तब तक यात्रा करते रहे जब तक कि वे गोदावरी नदी के किनारे नहीं पहुँच गए, जहाँ इंद्र ने उनके निवास के लिए पहले से ही तीन कुटिया बना रखी थीं।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों ग्रंथों में यह प्रसंग अलग–अलग रूप से वर्णित है। यदि रा. की सौवरी को शबरी माना जाए, तब इसकी तुलना की जा सकती है अन्यथा नहीं। वा. में यह प्रसंग सीता अपहरण के बाद में आया है तथा रा. में यह प्रसंग इससे पहले है। वा. में वह मतंग मुनि की शिष्या के रूप में वर्णित है, रा. में वह सौवरी नाम की एक स्वर्गिक अप्सरा है। अगत वा. के अगस्त्य हैं। रा. में सौवरी को अगत की शिष्या नहीं बताया गया है। इंद्र द्वारा राम आदि के निवास के लिए बनाई गईं तीन कुटियों का जिक्र भी वा. में नहीं है।

●

---

45 सौवरी शायद वाल्मीकि की शबरी है। रामकीर्ति पृ 42

46 वा. अगस्त्य

हनुमान की राम से भेंट

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

सीता की खोज करते–करते राम और लक्ष्मण पंपा सरोवर पर पहुँच गए। ऋष्यमूक पर्वत पर विचरने वाले वानरराज सुग्रीव पम्पा के निकट घूम रहे थे। उन्होंने श्रेष्ठ आयुध धारण किए वीर वेश में इन दो अपरिचितों को वहाँ देखा तो उनके मन में भय हुआ कि हो न हो, इन्हें उनके शत्रु वाली ने ही भेजा होगा। वे उद्विग्न होकर चारों दिशाओं में देखते हुए अपने चित्त को स्थिर न रख सके। उन्होंने अपने मंत्रियों के साथ विचार कर अपनी दुर्बलता और शत्रुपक्ष की सबलता का निश्चय किया। वे मंत्रियों से बोले, 'निश्चय ही ये दोनों वीर वाली के भेजे हुए, इस दुर्गम वन में विचरते हुए यहाँ आए हैं। इन्होंने छल से चीर वस्त्र धारण कर लिए हैं जिससे हम इन्हें पहचान न सकें।' लेकिन वीर हनुमान ने उन्हें समझाते हुए कहा कि इस मलय पर्वत पर तो वाली ऋषि मतंग के द्वारा दिए गए शाप के कारण आ ही नहीं सकता। हनुमान ने सुग्रीव को समझाते हुए कहा, 'बुद्धि और विज्ञान से संपन्न होकर आप दूसरों की चेष्टाओं द्वारा उनका मनोभाव समझें और उसी के अनुसार सभी आवश्यक कार्य करें; क्योंकि जो राजा बुद्धि–बल का आश्रय नहीं लेता, वह संपूर्ण प्रजा पर शासन नहीं कर सकता।' इस पर सुग्रीव ने उनसे साधारण वेश में जाकर उन दोनों के बारे में पता लगाने के लिए कहा।

सुग्रीव के ऐसा कहने पर हनुमान तपस्वी वेश धारण कर राम और लक्ष्मण के समीप जा पहुँचे और मन को प्रिय लगने वाली वाणी में वार्तालाप करने लगे। उन्होंने पहले तो उन दोनों की यथोचित प्रशंसा की और फिर उनसे बोले, 'वीरो! आप दोनों सत्यपराक्रमी, राजर्षियों के समान प्रभावशाली, तपस्वी तथा कठोर व्रत का पालन करने वाले जान पड़ते हैं। आप दोनों वीर कौन हैं? बताइए आप दोनों का क्या परिचय है?' लेकिन कई बार पूछने पर भी जब दोनों ने अपने बारे में कुछ नहीं बताया तो वाक्पटु हनुमान ने स्वयं ही धर्मात्मा और वीर सुग्रीव के बारे में बताया कि उन्हें उनके भाई वाली ने घर से निकाल दिया है, इसलिए वे भयभीत हुए इस जगत् में मारे–मारे फिरते हैं। उन्हीं के भेजने पर वह उन दोनों के

पास आए हैं। उन्होंने अपना नाम हनुमान और स्वयं को सुग्रीव का मंत्री बताते हुए कहा कि सुग्रीव उनसे मित्रता करना चाहते हैं।

हनुमान की यह बात सुनकर राम के मुख पर प्रसन्नता छा गई। उन्होंने लक्ष्मण से इन परम विद्वान हनुमान से बात करने के लिए कहा। लक्ष्मण ने हनुमान से बात करते हुए कहा, 'विद्वन्! हमें महामना सुग्रीव के गुण ज्ञात हो चुके हैं। हम दोनों भाई भी वानरराज सुग्रीव की खोज में ही यहाँ आए हैं।' वे सुग्रीव के साथ मित्रता करने के लिए तैयार हैं। लक्ष्मण की इस बात से हनुमान बहुत प्रसन्न हुए और दोनों भाईयों के साथ उनकी मित्रता करवाने की इच्छा व्यक्त की।

रामकीर्ति के अनुसार

जब राम ने अशमुखी की बाहें काट दीं और वह जंगल में भाग गई, उसके बाद दोनों भाई पेड़ की ठंडी छाया में आ गए। संयोगवश हनुमान उस पेड़ पर बैठे हुए थे। हनुमान ने दो अनजाने व्यक्तियों को पेड़ के नीचे बैठा देख उनके बारे में जानना चाहा। उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वे पेड़ की डाल को हिलाने लगे। राम उस समय मीठी नींद का आनंद ले रहे थे और लक्षण उनकी सतर्क पहरेदारी कर रहे थे। कहीं शाखाओं की हलचल उनकी नींद को बाधित न कर दे, इस डर से लक्षण ने वानर को भगाने की कोशिश की, किंतु वह व्यर्थ रही। जिद्दी वानर अब भी वहीं था और तीव्रता से डाल को हिला रहा था। अंततः उन्होंने अपना धनुष–बाण उठा लिया। लेकिन वह उन्हें झपट कर ले गया। अस्त्रविहीन हुए लक्षण हक्के–बक्के रह गए। एक वानर की इस दुर्जेय शक्ति से चकित, उनके सामने राम को जगाने और जो कुछ हुआ था, उसके बारे में बताने के अतिरिक्त और कोई रास्ता न था। राम ने ऊपर देखा और पाया कि वानर के शरीर पर विशिष्ट चिन्ह हैं जैसे दोनों कानों में कुंडल, दो चमकीले तीक्ष्ण दाँत (श्वदंत) और एक सफेद घुंघराला बाल। हनुमान को उनकी माता ने बताया था कि ये चिह्न नारायण के अतिरिक्त अन्य सभी के लिए अदृश्य रहेंगे। इसलिए जो कोई भी उनको देख पाने में सक्षम होगा, वह अवश्य ही उनका अवतार होगा जिनकी सेवा उन्हें ईमानदारी और निष्ठावान सिपाही की तरह करनी होगी।

जब हनुमान ने देखा कि उनके चिन्हों को पहचान लिया गया है, तब वे जान गये कि पेड़ के नीचे लेटा हुआ आदमी नारायण का अवतार है। अतः वह पेड़ से नीचे आए और स्वयं को राम की सेवा में समर्पित कर दिया।

उल्लेखनीय बिंदु

राम से हनुमान की भेंट का प्रसंग दोनों ग्रंथों में अलग–अलग तरीके से वर्णित है। वा. में सुग्रीव के कहने पर हनुमान राम के पास जाते हैं, रा. में वे पेड़ पर बैठे हैं और राम की नींद बाधित करने की कोशिश करते हैं। वा. में हनुमान के शरीर पर पाए जाने वाले चिन्हों की कोई चर्चा नहीं है। वा. में हनुमान सुग्रीव के मंत्री बताए गए हैं और अपनी वाक्पटुता से राम–लक्ष्मण को प्रभावित करते हैं जबकि रा. में ऐसा नहीं है।

●

राम की सुग्रीव से भेंट

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

राम की बात सुनकर तथा सुग्रीव के विषय में उनका सौम्य भाव जानकर हनुमान को बड़ी प्रसन्नता हुई। तब उन्होंने पंपा–तटवर्ती कानन से सुशोभित इतने दुर्गम और भयंकर वन में आने का कारण पूछा। इस पर लक्ष्मण ने उन्हें सारी बातें विस्तार से बताते हुए अंत में कहा कि वे दोनों सुग्रीव की शरण में आए हैं और उन्हें अपना रक्षक बनाना चाहते हैं। तदंतर हनुमान राम और लक्ष्मण दोनों को लेकर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे और सुग्रीव से उन दोनों राजकुमारों का परिचय करवाया। हनुमान के वचन सुनकर सुग्रीव अत्यंत दर्शनीय रूप धारण करके राम के पास आए और बड़े प्रेम से राम के सामने मित्रता का हाथ बढ़ा दिया। राम ने भी उनका हाथ पकड़ते हुए उन्हें अपनी छाती से लगा लिया। हनुमान ने उनकी मित्रता के साक्षी के रूप में अग्नि को प्रज्ज्वलित किया। तब दोनों ने अग्नि की परिक्रमा की और एक–दूसरे के मित्र बन गए।

सुग्रीव ने उन्हें वाली द्वारा घर से निकाले जाने और उनसे उनकी पत्नी छीन लेने वाली पूरी कहानी बताई। राम ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा कि वे उनकी पत्नी का अपहरण करने वाले वाली का वध अवश्य करेंगे। उसके बाद सुग्रीव ने स्पष्ट किया कि उन्हें भी उनकी पत्नी शीघ्र ही प्राप्त होगी। उन्होंने राम को सीता द्वारा फेंके गए आभूषणों के बारे में बताते हुए वे आभूषण भी दिखाए। लेकिन उस हरण करने वाले राक्षस को पहचानने में अपनी असमर्थता जताई। परंतु यह जानने पर कि रावण द्वारा सीता का हरण कर लिया गया है, सुग्रीव ने उन्हें उस राक्षस का वध करने के बारे में आश्वस्त किया।

अब राम ने सुग्रीव से उन दोनों के बीच वैर का कारण पूछा। सुग्रीव ने बताया कि वाली उसके बड़े भाई हैं, उनमें शत्रुओं का संहार करने की बड़ी शक्ति है। पिता की मृत्यु के बाद मंत्रियों ने उन्हें ज्येष्ठ समझ कर राजा बना दिया।

उन दिनों मायावी नामक एक तेजस्वी दानव रहता था, जो मय दानव का पुत्र और दुंदुभि का बड़ा भाई था। उसके साथ वाली का स्त्री के कारण वैर हो गया। एक दिन आधी रात के समय जब सब लोग सो गए, मायावी किष्किंधापुरी के दरवाजे पर आया और क्रोध से भरकर गर्जने और वाली को ललकारने लगा। ललकार को सहने में असमर्थ वाली उसे मारने के लिए दौड़ा, वह भी उसके साथ ही उसके पीछे दौड़ा। किंतु वह राक्षस एक बड़े बिल में घुस गया। शत्रु को बिल में घुसा देख वाली के क्रोध की सीमा न रही। वाली ने उससे कहा कि जब तक वह शत्रु को मारकर नहीं आ जाता, तब तक वह बिल के दरवाजे के पास खड़ा रहे, यह कहकर वह बिल के अंदर चला गया। वाली को अंदर गए जब एक साल से भी अधिक समय हो गया तो उसके मन में वाली के मारे जाने की आशंका होने लगी। तदंतर दीर्घ काल के पश्चात् उस बिल से सहसा फेन सहित खून की धारा बह निकली और उसी समय गरजते हुए असुरों की आवाज भी उसके कानों में सुनाई पड़ी। युद्धरत बड़े भाई की गर्जना वह सुन न सका। फिर वह बिल के दरवाजे पर पर्वत के समान चट्टान रखकर भाई को जलांजलि देकर वापस लौट आया और मंत्रियों ने

मिलकर उसे राजा बना दिया। कुछ समय बाद राक्षस को मारकर वाली जब किष्किन्धा पहुँचा और राजा के रूप में उसे अभिषिक्त हुआ पाकर वह आग बबूला हो उठा। वाली ने उसकी एक न सुनी और उसे निर्दयतापूर्वक घर से निकाल दिया, साथ ही उसकी स्त्री को भी उससे छीन लिया। अब वह वाली के भय से इस ऋष्यमूक पर्वत पर आकर छिप गया है। मतंग मुनि द्वारा शापित किए जाने के कारण वाली इस पर्वत पर आ नहीं सकता। सुग्रीव की सारी कथा को सुनकर राम ने वाली का वध करने, उसे उनकी पत्नी तथा राज्य दिलाने की प्रतिज्ञा की।

रामकीर्ति के अनुसार

जब हनुमान ने राम की दर्दभरी कहानी सुनी, उन्होंने उनका अपने मित्र सुग्रीव से परिचय करवाना उचित समझा जो उस समय अपने भाई बाली द्वारा अपमानित और निर्वासित था। ये बाली की कुछ शंकाएं ही थीं कि सुग्रीव को इतना कष्ट सहना पड़ा। सुग्रीव ने राम को बाली और स्वयं के बीच हुए वैर से संबंधित पूरी कहानी इस प्रकार सुनाई–

कैलास पर्वत का एक द्वार नंदकला नामक राक्षस की देख–रेख में था। एक दिन ईस्वर की उप पत्नियों में से एक फूल चुनने के लिए बगीचे में गई। फूलों से भरे पेड़ों के बीच, उस प्रसन्नचित्त होकर घूमने वाली के रूप–सौंदर्य पर आकर्षित हो वह राक्षस उससे प्रेम करने लगा। काफी समय तक उसने अपनी भावनाओं को अपने अंदर ही दबाए रखा। लेकिन इस बार वह अपनी भावनाओं को नियन्त्रित न कर सका, उसके ध्यान को अपनी ओर खींचने के लिए उसने उसके ऊपर एक फूल फेंका। दुर्भाग्यवश वह किशोरी न तो प्रेम करने में और न ही उसका जबाब देने की मनःस्थिति में थी। अतः उसके प्रेम प्रदर्शन ने केवल उसे क्रुद्ध करने का ही काम किया। अत्यंत क्रुद्ध होकर वह ईस्वर के पास वापस गई और उसके विरुद्ध शिकायत की। ईस्वर उसकी इस धृष्टता पर बहुत नाराज हुआ। अतः उसने उसे दराबा नाम के भैंसे के रूप में जन्म लेने का शाप दे दिया। फिर भी वह अपनी पूर्व स्थिति को तभी प्राप्त कर सकेगा जब वह अपने ही पुत्र दराबी के द्वारा मारा जाएगा।

तदनुसार नंदकला ने कैलास में अपना अधिकार गँवा दिया और उसने भैंसे के रूप में जन्म लिया। कुछ ही समय में वह एक बड़े झुंड का मुखिया बन गया और उसने अतुलनीय शक्ति प्राप्त कर ली। जीवित रहने की स्वाभाविक प्रवृत्ति ने उसे भैंसे के जीवन को त्यागने और कैलास वापस लौटने के लिए प्रेरित नहीं किया। इसलिए जब कभी उसके एक पांडा पैदा होता, वह उसे तुरंत मार देता और इसप्रकार अपने उद्धारक से छुटकारा पा लेता। उसके इस कठोर व्यवहार ने उन सभी गायों को बहुत दुख पहुँचाया जिनका वह मुखिया था। इसलिए, एक बार जब एक गाय को उसके द्वारा दूसरे बच्चे के गर्भधारण करने के लक्षण दिखाई दिए, वह एक गुफा में चली गई, ताकि वह अपने छोटे बच्चे को अपने ही पिता द्वारा कुचल कर मार डालने से बचा सके। पांडा अपने समय पर पैदा हुआ और उसका नाम दराबी[47] रखा गया। उसकी माता ने उसके पिता के विषादपूर्ण अतीत के बारे में बताया और उसे देवताओं के संरक्षण में छोड़ दिया।

जब वह युवा हुआ, उसने अपने पिता से बदला लेने का निश्चय किया। इसलिए यह जानने के लिए कि क्या वह शरीर में अपने पिता के समान हो गया है, उसने अपने पदचिन्हों को अपने पिता के पदचिन्हों से मापा। जब उसने देखा कि दोनों ही पदचिन्ह समानाकार के हैं, तो उसे इस बात का विश्वास हो गया कि उसका शरीर उसके पिता के शरीर से आकार में कम नहीं है। तब वह बाहर निकला और अपने पिता को अंतिम सांस तक लड़ने के लिए ललकारा। ईस्वर की भविष्यवाणी के अनुसार, दराबा अपने पुत्र दराबी द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

अपनी पहली लड़ाई में विजयी होने पर दराबी के घमंड की कोई सीमा न रही। वह बहुत अधिक आक्रामक हो गया और उसने हिमालय वन के अधिष्ठाता देवताओं को चुनौती दे दी। उन्होंने उसे पंकगिरि के देवताओं को चुनौती देने की सलाह दी। अतः वह वहाँ गया,

---

47 वा. दुंदुभि। वाल्मीकि रामायण के अनुसार वह एक राक्षस था। वाली ने एक लड़की के लिए उससे युद्ध किया था। रामकीर्ति पृ सं. 54,

किंतु उन्होंने उसे समुद्र के देवता को चुनौती देने के लिए कहा। किंतु देवता उससे लड़ने के लिए तैयार नहीं हुए, बल्कि उन्होंने उसे ईस्वर के पास, यह कह कर भेज दिया कि वे ही उसकी लड़ाई की प्यास को बुझा सकेंगे। ईस्वर ने अपनी बारी आने पर उसे बाली के पास भेज दिया, क्योंकि उसके हाथों से वह अपनी मृत्यु को प्राप्त करेगा और बाद में वह खर के पुत्र के रूप में जन्म लेगा जिसका नाम मंकरकंठ होगा और अंत में वह राम के बाण द्वारा मारा जाएगा।

अतः वह बाली के पास गया और उसे चुनौती दी। दोनों के बीच युद्ध एक खुले मैदान में हुआ और वह बराबरी पर समाप्त हुआ। फिर बाली ने उससे सुबह के समय एक गुफा में युद्ध पुनः शुरु करने के लिए कहा। दराबी सहमत हो गया। इसलिए अगली सुबह वे एक निर्धारित गुफा में मिले और अधूरी लड़ाई फिर से शुरु कर दी। लेकिन गुफा के लिए चलने से पहले बाली ने सुग्रीव से गुफा के द्वार पर प्रतीक्षा करते रहने और बहते हुए खून को ध्यान से देखते रहने के लिए कहा। यदि खून गहरे रंग का हुआ तो उसका मतलब दराबी की मृत्यु। लेकिन इसके विपरीत यदि खून हल्के रंग का हुआ तो इसका अर्थ उसकी अपनी मृत्यु। उस दशा में सुग्रीव गुफा के मुँह को बंद कर दे ताकि संसार को उसकी शर्मनाक हार का पता न लगे। सात दिन तक वे युद्धरत रहे, लेकिन विजय किसी के हाथ न लगी। अंत में बाली ने उसकी शक्ति को खत्म करने के लिए उसे जाल में फँसाने के बारे में सोचा। उसने दराबी से पूछा कि उसने इतनी अधिक शक्ति के भंडार को कैसे प्राप्त किया। अपने अहंकार के नशे में उन्मत्त वह देवताओं द्वारा की गई सहायता के प्रति कृतज्ञता को भूल गया और उत्तर दिया कि उसके सींग ही उसकी शक्ति के मूल कारण हैं। बाली ने सभी देवताओं को उसकी अकृतज्ञता के बारे में बता दिया और उन्हें उसका साथ छोड़ने के लिए प्रेरित किया। देवताओं द्वारा त्याग दिए जाने पर दराबी बाली के भीषण प्रहार का सरलता से शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

संयोग की बात है कि उस समय बारिश[48] हो रही थी और पानी के मिलने से उसका गाढ़ा खून हल्के रंग का दिखाई पड़ने लगा। इसलिए सुग्रीव ने इसे भूलवश अपने भाई का खून समझ लिया। अतः उसके आदेशानुसार, उसने गुफा का द्वार बंद कर दिया और चला गया।

जहाँ तक बाली का संबंध है, उसने दराबी का सिर काट दिया और गुफा के द्वार पर आया। जब उसने इसे बंद देखा, वह यह सोचकर क्रोधोन्मत्त हो गया कि सुग्रीव उसे उसके सिंहासन से वंचित करना चाहता है। क्रोध में आकर बाली ने दराबी के सिर को द्वार को बंद करने वाले पत्थर पर दे मारा जिससे उसे तुरंत रास्ता मिल गया। वह अपने महल वापस आया और सुग्रीव को उस अपराध के लिए, जो उसने कभी नहीं किया था, निर्वासित कर दिया। अपने भाई के दरबार से निर्वासित हुआ सुग्रीव जब जंगल में भटक रहा था, उसकी भेंट हनुमान से हुई और उन दोनों ने जंगल में अपना एक निवास बना लिया। जहाँ तक दराबी का संबंध है, उसने दसकंठ और रजतासुर के छोटे भाई खर के पुत्र के रूप में जन्म ले लिया।

सुग्रीव ने अपनी दुखभरी कहानी राम को बताई, उन्होंने उसके प्रति बहुत खेद व्यक्त किया। अंत में उन्होंने परस्पर एक समझौता किया कि बाली के खिलाफ युद्ध में राम सुग्रीव की सहायता करेंगे और सुग्रीव सीता की खोज करने और दसकंठ को पराजित करने में राम की सहायता करेगा।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों ग्रंथों में कथा थोड़ा–सा अंतर लिए है। वा. में सुग्रीव और वाली के बीच हुए वैर का कारण वाली का मायावी से हुआ युद्ध था, जबकि रा में बाली का दराबी से युद्ध हुआ था। वा. का मायावी रा. का दराबी है।

---

48 फिर भी बारिश का कुछ संदर्भ हमें बंगाली रामायण में मिलता है। रामकीर्ति पृ सं. 55

यहाँ पाठकों की जानकारी के लिए यह स्पष्ट करना उचित रहेगा कि वा. में वाली का युद्ध दो असुरों से हुआ वर्णित है। उसका पहला युद्ध दुंदंभि से हुआ था जिसके कारण उसे मतंग ऋषि का शाप मिला था और दूसरा युद्ध मायावी से हुआ था जिसका वर्णन ऊपर किया गया है।

पहले युद्ध का वर्णन इसप्रकार है— दुंदंभि एक असुर था, जो भैंसे के रूप में दिखाई देता था और बहुत बलशाली था। बल के घमंड से भरा हुआ दुंदंभि अपने को मिले वरदानों से मोहित हो समुद्र से युद्ध करने के लिए गया। समुद्र ने उससे लड़ने से मना कर दिया और उसे हिमवान् से लड़ने के लिए भेज दिया। हिमवान ने भी स्वयं को उससे लड़ने में असमर्थ बताया और उसे देवराज इंद्र के पुत्र वाली के पास भेज दिया। दुंदुभि की ललकार को वाली सह न सका। क्रोध के आवेश से युक्त हो, एक—दूसरे को जीतने की इच्छा रखने वाले उन दोनों में घोर युद्ध होने लगा। अंत में वाली ने दुंदंभि को पृथ्वी पर दे मारा, साथ ही उसे अपने शरीर से दबा दिया, जिससे दुंदंभि पिस गया और उसके शरीर से रक्त बहने लगा। उसके प्राणों के निकल जाने पर वाली ने उसे वेगपूर्वक एक योजन दूर फेंक दिया जिससे उसके शरीर के रक्त की बहुत—सी बूंदें मतंग मुनि के आश्रम में जा गिरीं। उन्हें देख ऋषि ने उसे उस पर्वत पर प्रवेश न कर सकने का शाप दे दिया।

रा. में बाली और दराबी के बीच हुए युद्ध के वर्णन में मूल रामायण के 'वाली और दुंदंभि' तथा 'वाली और मायावी' दोनों युद्धों का मिश्रण किया गया है। इसीलिए दुंदंभि और दराबी के बीच भ्रम की स्थिति बनी है। रा. में युद्ध का परिणाम तथा अगले जन्म में होने वाली घटना को बताया गया है, वा. में ऐसा नहीं है। वा. में बारिश का कोई वर्णन नहीं है।

●

वाली वध

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

सुग्रीव ने राम को दुंदुभि और बाली के मध्य हुए युद्ध की कथा सुनाकर वाली के पराक्रम के बारे में बताया और राम के पराक्रम के बारे में जानने की इच्छा व्यक्त की। सुग्रीव ने राम से साल के सातों वृक्षों में से किसी एक को लक्ष्य करके बींधने के लिए कहा। सुग्रीव के वचनों को सुनकर राम ने एक बाण सालवृक्ष की ओर लक्ष्य करके छोड़ दिया और वह बाण वहाँ पर खड़े सात साल वृक्षों को एक ही साथ बींधकर पर्वत तथा पृथ्वी के सातों तलों को छेदता हुआ पाताल में चला गया जिसे देख कर सुग्रीव मन ही मन प्रसन्न हो गया। अब उसे विश्वास हो गया कि राम उसकी पत्नी तथा उसका विशाल राज्य उसे अवश्य दिला देंगे।

सुग्रीव ने राम से उस दिन ही वाली का वध कर डालने का निवेदन किया। तब राम ने सुग्रीव से किष्किंधा जाकर वाली को ललकारने के लिए कहा और वे स्वयं एक वृक्ष की आड़ में छिपकर खड़े हो गए। दोनों में बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। वे दोनों भाई क्रोधावेग से एक–दूसरे पर तमाचों और घूँसों का प्रहार करने लगे। उसी समय राम ने धनुष अपने हाथ में लिया और उन दोनों की ओर देखा। दोनों एक दूसरे से काफी मिलते–जुलते थे। अतः वाली को पहचानने में असमर्थ राम ने बाण का प्राणांतकारी प्रहार नहीं किया। इस बीच वाली ने सुग्रीव के पैर उखाड़ दिए और वह पर्वत की ओर लौट आए। हारे हुए सुग्रीव ने वापस लौट कर अत्यंत दीन भाव से राम से अपने मन की बात कही। तब राम ने उसका कारण बताते हुए इस बार पहचान के लिए सुग्रीव के गले में गज–पुष्पीलता डाल दी और फिर उसे वाली पर आक्रमण करने के लिए भेजा और कहा, 'तुम इसी मुहुर्त में वाली को मेरे एक ही बाण का निशाना बनकर धरती पर पड़ा देखोगे।'

राम की बात सुनकर सुग्रीव ने आकाश को विदीर्ण–सा करते हुए कठोर वाणी में भयंकर गर्जना की। उसकी गर्जना को सुनकर वाली को बड़ा ही क्रोध आया। अपनी पत्नी तारा के द्वारा रोके जाने पर भी वाली न रुका और चलते हुए उसने यही कहा, 'जो कभी परास्त नहीं हुए और जिन्होंने युद्ध के अवसरों पर कभी पीठ नहीं दखाई, उन शूरवीरों के लिए शत्रु की ललकार सह लेना मृत्यु से भी बढ़कर दुःखदाई होता है।' यह

कहकर वह सुग्रीव के समक्ष जा पहुँचा और उनके बीच पुनः भयंकर युद्ध होने लगा। वानरराज सुग्रीव को कमजोर देख राम ने वाली के वध की इच्छा से अपने बाण को धनुष पर रखकर जोर से छोड़ दिया। उस बाण से वेगपूर्वक आहत हो वानरराज वाली तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसप्रकार श्रीहीन और अचेत हो वह धराशायी हो गया और धीरे–धीरे आर्तनाद करने लगा।

जब महापराक्रमी राम और लक्ष्मण उस वीर वाली का विशेष सम्मान करते हुए उसके पास पहुँचे तो राम से उसने धर्म और विनय से युक्त कठोर वाणी में अधर्मपूर्वक किए गए बाण के प्रहार का कारण पूछा, 'काकुत्स्थ! मैं सर्वथा निरपराध था तो भी यहाँ मुझे बाण मारने का घृणित कर्म करके सत्पुरुषों के बीच आप क्या कहेंगे? यदि आप युद्धस्थल में मेरी दृष्टि के सामने आकर मेरे साथ युद्ध करते तो आज मेरे द्वारा मारे जाकर सूर्यपुत्र यम देवता का दर्शन करते होते। मेरे स्वर्गवासी हो जाने पर सुग्रीव जो यह राज्य प्राप्त करेगा, वह तो उचित ही है। अनुचित इतना ही हुआ है कि आपने मुझे रणभूमि में अधर्मपूर्वक मारा है।' इतना कहकर वह चुप हो गया। राम ने उसे दंड का कारण बताते हुए कहा, 'तुम सनातन धर्म का त्याग करके अपने छोटे भाई की पत्नी रूमा का, जो तुम्हारी पुत्रवधु के समान है, कामवश उपभोग करते हो। वानरराज! जो लोकाचार से भ्रष्ट होकर लोकविरुद्ध आचरण करता है, उसे रोकने या राह पर लाने के लिए मैं दंड के सिवा और कोई उपाय नहीं देखता हूँ।' इससे वाली के मन में बड़ी व्यथा हुई। उसने राम से यही कहा, 'नरश्रेष्ठ! आप जो कुछ कहते हैं, बिल्कुल ठीक है; इसमें संशय नहीं है।' इसप्रकार कहते हुए राम के दोष का चिंतन त्याग उसने राम से अपने पुत्र को शरण में लेने की प्रार्थना की, सुग्रीव से तारा को स्वीकारने और उसकी बात मानने के लिए कहा, साथ ही अपने पुत्र अंगद को समझाते हुए कहा, 'बेटा! अब देश–काल को समझो–कब और कहाँ कैसा बर्ताव करना चाहिए, इसका निश्चय करके वैसा ही आचरण करो। समयानुसार जो कुछ प्रिय या अप्रिय, सुख–दुख–जो कुछ आ पड़े, उसको सहो। अपने ह्दय में क्षमा भाव रखो और सदा सुग्रीव की आज्ञा के अधीन रहो। किसी के साथ अत्यंत प्रेम न करो और प्रेम का अभाव भी न होने दो; क्योंकि ये दोनों ही

महान दोष हैं। अतः मध्यम स्थिति पर ही दृष्टि रखो।' ऐसा कहकर बाण के आघात से अत्यंत घायल हुए वाली की आँखें घूमने लगीं। उसके भयंकर दाँत खुल गए और फिर उसके प्राण पखेरु उड़ गए। राम ने सुग्रीव, अंगद और तारा को उचित संस्कार करने की आज्ञा दी। इसके बाद सुग्रीव को किष्किंधा का राजा और अंगद को उसका युवराज बना दिया गया।

रामकीर्ति के अनुसार

चूंकि राम के मन में खिडकिन के राजा के प्रति कोई द्वेष–भाव नहीं था, इसलिए बाली का वध करने के लिए सुग्रीव की सहायता करने को लेकर वे धर्मसंकट में थे। सुग्रीव ने उनके इस संकोच को भाँप लिया। उनके इस द्वंद्व को शांत करने के लिए, उसने राम को बताया कि बाली ने कैसे अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी थी और उसकी धर्मपरायण पत्नी तारा का हरण किया था, और ऐसा करने से उसने नारायण के बाणों से मृत्यु को आमंत्रित कर लिया था।

इसे सुनकर राम अपने धर्मसंकट से उबर गए और सहर्ष उसकी मदद को तैयार हो गए। चूंकि बाली को ईस्वर से एक वरदान प्राप्त था जिसकी वजह से जो कोई उससे लड़ेगा, अपनी आधी शक्ति खो देगा। इस विचार से कि सुग्रीव को कोई हानि न पहुँचे, राम ने पानी लिया, अपने बाणों को उसमें डुबोया और उस जल को सुग्रीव के सिर पर छिड़क दिया।

तब राम और सुग्रीव खिडकिन पहुँचे और सुग्रीव ने बाली को अकेले लड़ने की चुनौती दी। बाली ने चुनौती स्वीकार की और दोनों के बीच युद्ध शुरु हो गया। दोनों भाई अपनी चाल–ढाल में इतने अधिक मिलते–जुलते थे कि राम के लिए अपने शिकार को पहचानना बहुत कठिन हो गया। बहुत जल्दी बाली ने सुग्रीव पर काबू पा लिया और चक्रवाल पर्वत पर फेंक कर मारा। किंतु पवित्र जल ने किसी भी प्रकार की हानि से उसकी रक्षा की।

वापस लौटने पर उसने राम को अपनी प्रतिज्ञा को पूरी न करने के लिए भला–बुरा कहा। राम ने बाली को न पहचान सकने की अपनी असमर्थता के बारे में उसे बताया। इस बार उन्होंने अपने कपड़े का एक टुकड़ा फाड़ा और पहचान चिन्ह के रूप में उसे सुग्रीव की कलाई पर बाँध दिया।

अगले दिन, जैसे ही युद्ध शुरु हुआ, राम ने बाली पर बाण चला दिया। वानरराज बाण को पकड़ने में काफी दक्ष था। अपने मारने वाले को एक धर्मात्मा के रूप में देखकर, उसने अपवित्र कार्य के लिए उनकी तीक्ष्ण भर्त्सना की। इस पर राम ने नारायण का रूप धारण कर लिया और उसे उसकी प्रतिज्ञाभंग के बारे में बताया।

बाली भयभीत हो गया। वह समझ गया कि अब उसके प्रतिफल का दिन आ चुका है। इसलिए उसने सुग्रीव, अंगद और हनुमान को राम को समर्पित कर दिया और अपना अंत करने के लिए तैयार हो गया। राम ने उसकी कमी का अनुभव किया, वे उसे मरने नहीं देना चाहते थे। उन्होंने बाली से खून की आधी बूंद देने के लिए कहा ताकि वे अपने ब्रह्मास्त्र की पूजा कर सकें और बाली के शाप को काट सकें, किंतु ऐसा करने पर उसके शरीर पर बाल के सातवें भाग जितना छोटा दाग रह जाएगा। लेकिन इंद्र के बेटे बाली को तो शर्मनाक दाग की अपेक्षा मृत्यु अधिक प्रिय थी। वह देवताओं के बीच हँसी का पात्र बना देने वाले ऐसे प्रस्ताव से कैसे सहमत हो सकता था। अपने निश्चय पर अडिग बाली ने सुग्रीव को परामर्श दिया कि उसे राम के प्रति अपना व्यवहार कैसा रखना चाहिए। तब उसने एक बाण लिया और अपने हृदय को चीर कर अपनी पराक्रमी आँखें सदा के लिए बंद कर लीं।

उल्लेखनीय बिंदु

इस घटना के संबंध में दोनों ग्रंथों में काफी भिन्नता है। वा. में सुग्रीव की बात सुनकर राम ने स्वयं वाली को मारने का निर्णय लिया। उनके बाण के लग जाने पर वाली की मृत्यु हुई। रा. में राम को बाली को मारने में संकोच हुआ क्योंकि उसने राम के प्रति कोई दुर्व्यवहार नहीं

किया था। तब सुग्रीव ने राम को बताया कि किस तरह बाली ने अपनी प्रतिज्ञा भूलकर उसकी पत्नी तारा को अपनी पत्नी बनाया और प्रतिज्ञा भूलने पर बाली ने राम के बाणों से मृत्यु का आलिंगन करने की बात कही थी। इस बात की याद दिलाने पर वे उसे मारने के लिए तैयार हुए। राम के द्वारा सुरक्षा कवच के रूप में पानी छिड़कने का वर्णन वा. में नहीं है। राम द्वारा छोड़े गए बाण को वीर बाली ने रोक लिया। राम के द्वारा जीवन देने की बात को भी उस स्वाभिमानी बाली ने अस्वीकार कर दिया और फिर एक बाण लेकर अपने हृदय को चीर कर अपनी पराक्रमी आँखें सदा के लिए बंद कर लीं। इसप्रकार का वर्णन वा. में नहीं है।

●

युद्ध की तैयारी

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

वाली की मृत्यु के पश्चात् किष्किंधा के राज्य पर सुग्रीव का राज्याभिषेक किया गया और युवराज के पद पर अंगद का अभिषेक किया गया। उसके बाद के चार मास वर्षा ऋतु के थे और उन दिनों में राजा युद्ध नहीं करते थे, अतः सुग्रीव को उसकी सुंदर नगरी में भेजकर राम स्वयं लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण गिरि पर रहने लगे। चातुर्मास बीत जाने पर और स्वच्छ आकाश के दिखाई पड़ने के बावजूद सुग्रीव को स्वेच्छाचारी हुआ देख, शास्त्र के निश्चित सिद्धांत को मानने वाले वाक्पटु हनुमान ने उन्हें राम के प्रति उनके कर्तव्य की याद दिलाते हुए कहा, 'राजन! आपने राज्य और यश तो प्राप्त कर लिया और कुल परंपरा से प्राप्त लक्ष्मी को भी बढ़ाया; किंतु अभी मित्रों को अपनाने का कार्य शेष रह गया है, उसे आपको इस समय पूर्ण करना चाहिए।. ......अतः आप आज्ञा दीजिए कि कौन कहाँ से आपकी किस आज्ञा का पालन करने के लिए उद्योग करे।' हनुमान की बात सुनकर परम बुद्धिमान सुग्रीव ने राम का कार्य सिद्ध करने का निश्चय किया। इघर राम आकाश को मेघों से मुक्त हो जाने पर भी सुग्रीव के द्वारा किसी प्रकार का कोई कार्य न होते देख सोचने लगे, 'सुग्रीव काम में आसक्त हो रहा है, जनककुमारी सीता का अब तक कुछ

पता नहीं लगा है और लंका पर चढ़ाई करने का समय भी बीता जा रहा है।' इस तरह का विचार करने पर उन्होंने लक्ष्मण को किष्किंधापुरी भेजा और सुग्रीव से यह कहने के लिए कहा, 'जो बल–पराक्रम से संपन्न तथा पहले ही उपकार करने वाले कार्यार्थी पुरुषों को प्रतिज्ञापूर्वक आशा देकर पीछे उसे तोड़ देता है, वह संसार के सभी पुरुषों में नीच है।' यह सुन सुग्रीव के उपेक्षित व्यवहार से क्रुद्ध होकर लक्ष्मण सुग्रीव की नगरी में पहुँचे और अपने धनुष पर टंकार दी जिसकी ध्वनि से समस्त दिशाएं गूँज उठीं। धनुष की टंकार को सुन सुग्रीव समझ गए कि लक्ष्मण यहाँ तक आ गए हैं जिससे वे मन ही मन घबरा गए। उन्होंने लक्ष्मण को प्रसन्न करने के लिए तारा को भेजा। तारा ने धर्मयुक्त बातों से उनको मना लिया। फिर सुग्रीव ने सामने आकर उनसे क्षमा प्रार्थना की और पास खड़े हनुमान से महेंद्र, हिमवान, विंध्य, कैलास तथा श्वेत शिखर वाले मंदराचल पर्वत के शिखरों पर तथा विविध दिशाओं में रहने वाले श्रेष्ठ वानरों को शीघ्र बुला लाने के लिए कहा। फिर तीन करोड़ वानरों की सेना को साथ लेकर वे लक्ष्मण के साथ शिविका पर सवार होकर राम के पास पहुँचे।

रामकीर्ति के अनुसार

बाली के दाह–संस्कार के बाद, सुग्रीव ने राम को खिडकिन आने के लिए आमंत्रित किया किंतु राम ने निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया। इसलिए सुग्रीव ने उन्हें गंधमास की तलहटी में रहने की सलाह दी, जबकि वह सेना लाने के लिए खिडकिन चला गया।

गंधमास में रहते हुए राम एक मोर से मिले जिसने उन्हें सीता और उस वानर के बारे में खबर दी जिसके पास सीता ने अपना दुपट्टा यह निवेदन करते हुए नीचे फेंका था कि वह इसे राम के पास पहुँचा दे।

सात दिनों तक राम सुग्रीव की प्रतीक्षा करते रहे लेकिन उसके लौटने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहा था। अंत में लक्षण उसकी तलाश में गए। सुग्रीव ने लक्षण को सूचित किया कि सारा देश इस समय अस्त–व्यस्त है और लोगों को व्यवस्थित करने में समय लगेगा। फिर भी उसने वचन दिया कि वह राम से मिलने अगले दिन जाएगा।

सुबह होने पर सुग्रीव और हनुमान ने राम की कुटिया की ओर प्रस्थान किया। गंधमास पहुँचने पर, सुग्रीव ने अपना भय व्यक्त किया कि राजा जम्बु, जो बाली का मित्र था, अपने मित्र का बदला लेने के लिए कहीं खिडकिन की जनता को बहका न दे। राम ने उस राजा को अपने पास बुलाने के लिए एक पत्र भेजा। जम्बु ने पत्र प्राप्त किया लेकिन उसे इसकी प्रामाणिकता पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए उसने स्वयं उपस्थित होने के स्थान पर अपनी निष्ठा का संदेश भेजा। लेकिन इससे हनुमान संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने अपनी माया से महल के सभी लोगों को गहरी नींद में सुला दिया। फिर जिस पलंग पर राजा विश्राम कर रहा था, उन्होंने उसे उठा लिया और राम के सामने ले आए।

जब जम्बू जागा और राम को नारायण के रूप में देखा, उसने स्वयं को उनकी सेवा में समर्पित करने में जरा भी संकोच नहीं किया।

सुबह होने पर जब राजा जम्बु की पत्नी ने अपने पति को रहस्यमय तरीके से गायब पाया, वह तुरंत समझ गई कि उसे हनुमान द्वारा उठा कर ले जाया गया है। इसलिए उसने राजा के भतीजे निलाबद से अपने चाचा की खोज में जाने के लिए कहा। अतः उसने अपने को एक मक्खी के रूप में बदल लिया। वह वहाँ उड़ कर पहुँच गया जहाँ जम्बु बैठा हुआ था और उसके कान में धीरे से राजधानी से उसके गायब होने का कारण पूछा। राजा ने उसे सब कुछ बता दिया और आगे कहा कि चूंकि वह नारायण के उद्देश्य के लिए काम कर रहा है, इसलिए अपनी राजधानी नहीं लौट सकता। तब उसने अपने भतीजे को राम से मिलवाया। निलाबद राम की सेवा करके खुश था, फिर भी वह हनुमान के प्रति पाले गए विद्वेष को नहीं त्याग पाया।

राम ने तब सुग्रीव और निलाबद को अपनी–अपनी राजधानियों में लौट जाने और सेनाएं लाने की सलाह दी। बूढ़े जम्बु को उन्होंने अपनी राजधानी वापस जाने और अपने देश के साथ–साथ खिडकिन पर भी सुग्रीव के प्रतिनिधि के रूप में शासन करने की सलाह दी क्योंकि सुग्रीव को सेना के साथ जाना था।

कुछ ही समय में निलाबद के नेतृत्व में जम्बु की सेना और सुग्रीव के नेतृत्व में खिडकिन की सेना ने 'अठारह मुकुटों' के नाम से प्रसिद्ध अठारह सेनापतियों के साथ मिलकर गंधमास की तलहटी में अपना डेरा डाल दिया।

उल्लेखनीय बिंदु

वा. में चातुर्मास के बाद राम ने सुग्रीव के बारे में जानने के लिए लक्ष्मण को भेजा जबकि रा. में सात दिनों के बाद ही भेज दिया। रा. में आया हुआ मोर का प्रसंग वा. में नहीं है। दोनों ही ग्रंथों में सीता की खोज के लिए सेनाएं एकत्रित करने के प्रसंग हैं किंतु उनके वर्णन भिन्न हैं।

●

संपाति प्रसंग

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

सीता की खोज के लिए दक्षिण दिशा में अंगद के सेनापतित्व में गई सेना अपने काम में सफलता प्राप्त नहीं कर पाई, तब अंगद ने अपनी सेना से कहा, 'जो समय सुग्रीव ने निश्चित किया था, उसके बीत जाने पर हम सब वानरों के लिए उपवास करके प्राण त्याग देना ही ठीक जान पड़ता है। यहाँ से लौटने पर राजा सुग्रीव निश्चय ही हम सबका वध कर डालेंगे। अनुचित वध की अपेक्षा यहीं मर जाना हम लोगों के लिए श्रेयस्कर है।' सभी वानरों ने उसकी बात का समर्थन किया। किंतु तार नाम के वानर ने उनसे स्वयंप्रभा की गुफा में प्रवेश कर निवास करने के लिए कहा क्योंकि उस गुफा में फल–फूल, जल आदि भी प्रचुर मात्रा में थे और राम, सुग्रीव आदि से भी कोई भय न था। अंगद को उसकी बात ठीक लगी। किंतु हनुमान ने उन्हें ऐसा न करने के लिए समझाया, पर अंगद अपनी बात पर डटे रहे और धरती पर कुश बिछाकर उदास मुँह से रोते–रोते वे मरणांत उपवास के लिए बैठ गए। उनको ऐसा करते देख सभी श्रेष्ठ वानरों ने भी आमरण उपवास करने का निश्चय किया।

पर्वत के जिस स्थान पर वे आमरण अनशन कर रहे थे, उस प्रदेश में बल और पुरुषार्थ के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध जटायु के बड़े भाई संपाति आए और इतने सारे बंदरों को एक साथ देखकर प्रसन्नतापूर्वक बोले, 'इन वानरों में से जो–जो मरता जाएगा, उसका मैं क्रमशः भक्षण करता जाऊँगा।' भोजन पर लुभाए उस पक्षी का वचन सुन अंगद को बहुत दुख हुआ और वे हनुमान से अनेक प्रकार की बातें करने लगे। तभी अंगद ने किसी बात में जटायु का नाम लिया। अंगद के मुख से अपने भाई का नाम सुनकर संपाति चौंके, 'यह कौन है जो मेरे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय भाई जटायु के वध की बात कह रहा है। इसे सुनकर मेरा हृदय कम्पित–सा होने लगा है।' ऐसा कह कर संपाति ने जटायु के बारे में अधिक जानने के लिए अंगद से कहा, 'मेरे पंख सूर्य की किरणों से जल गए हैं, इसलिए मैं उड़ नहीं सकता; किंतु इस पर्वत से नीचे उतरना चाहता हूँ।' तब अंगद ने उन्हें नीचे उतारकर सीता–हरण के समय गृधराज जटायु द्वारा रावण के साथ किए गए युद्ध के बारे में बताकर उनकी मृत्यु की सूचना दी। अंगद ने यह भी बताया कि वे लोग भी सीता को खोजते फिर रहे हैं।

वानरों के मुख से जटायु की मृत्यु की बात सुनकर संपाति की आँखों में आँसू आ गए। फिर उन्होंने अपने पंखों के जलने की कहानी सुनाते हुए बताया, 'जब इंद्र के द्वारा वृत्रासुर का वध हो गया, तब इंद्र को प्रबल जानकर हम दोनों भाई उन्हें जीतने की इच्छा से, पहले आकाशमार्ग के द्वारा बड़े वेग से स्वर्गलोक में गए। इंद्र को जीतकर लौटते समय स्वर्ग को प्रकाशित करने वाले अंशुमाली सूर्य के पास आए। हममें से जटायु सूर्य के मध्याह्न काल में उनके तेज से शिथिल होने लगा। मैंने स्नहेवश उसे अपने दोनों पंखों से ढक लिया। उस समय मेरे दोनों पंख जल गए और मैं इस विंध्य पर्वत पर गिर पड़ा। यहाँ रहकर मैं कभी अपने भाई का समाचार न पा सका।' तब अंगद ने उनसे उस राक्षस के बारे में पूछा। उन्होंने कहा, 'वानरो! मेरे पंख जल गए हैं। अब मैं बेपर का गीध हूँ। मेरी शक्ति जाती रही है तथापि मैं वचनमात्र से भगवान राम की उत्तम सहायता अवश्य करूँगा।' फिर संपाति ने बताया कि वह राक्षस विश्रवा का पुत्र और कुबेर का भाई रावण है जो लंका में निवास करता

है। वहीं पर पीले रंग की रेशमी साड़ी पहने सीता बड़े दुख के साथ निवास करती हैं। वे रावण के अंतःपुर में नजरबंद हैं। बहुत–सी राक्षसियाँ उनके पहरे पर हैं। वहाँ पहुँचने पर ही वे लोग सीता को देख सकेंगे। लंका चारों ओर से समुद्र से घिरी है। समुद्र को पार करने में ही उन्हें अपने पराक्रम का परिचय देना होगा। सीता के बारे में संपूर्ण वृतांत जानकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए।

उसके बाद अपने भाई को जलांजलि देकर जब संपाति स्नान कर चुके तो उन्होंने उन लोगों को बताया, 'पूर्वकाल में यहाँ पर बने आश्रम में रहने वाले निशाकर मुनि को जब मैंने अपने जले पंखों की कहानी सुनाई थी, तब उन्होंने बताया था कि मेरे नए पंख निकल आएंगे, वह भी तब जब सीता का हरण रावण कर लेगा, वह वहाँ भोजन नहीं करेंगी, तब देवराज इंद्र उनके लिए अमृत के समान खीर निवेदन करेंगे और उसे खाने से पहले सीता उस खीर को राम को अर्पित करने के उद्देश्य से पृथ्वी को प्रदान करेंगी। उस समय राम के दूत सीता का पता लगाते हुए आएंगे। तुम उन्हें सीता का पता बता देना। यहाँ से कहीं न जाना। तभी से मैं आप लोगों की बाट देख रहा था।' थोड़ी देर बाद ही उन वनचारी वानरों के समक्ष उनके दो नए पंख निकल आए। अपने शरीर को नए निकले हुए लाल रंग के पंखों से संयुक्त देख संपाति को बहुत हर्ष हुआ और उन्होंने वानरों से कहा, 'वानरो! तुम सब प्रकार से यत्न करो। निश्चय ही तुम्हें सीता का दर्शन होगा। मुझे पंखों का प्राप्त होना तुम लोगों की कार्यसिद्धि का विश्वास दिलाने वाला है।' ऐसा कहकर वे आकाश–गमन की शक्ति का परिचय पाने के लिए पर्वतशिखर से उड़ गए और उनकी बात को सुनकर वानरों का ह्दय भी प्रसन्नता से खिल उठा।

रामकीर्ति के अनुसार

जब युद्ध की सारी तैयारियाँ पूरी हो गईं, तब सीता की खोज के लिए और सैन्य दृष्टि से टोह लगाने के लिए हनुमान, जंबुवान और निलाबद के नेतृत्व में एक दल भेजा गया। रास्ते की बाधाएं पार करते–करते वे हेमाटिरन पर्वत के पास पहुँचे जो विशाल और अधीर महासागर को देखा–अनदेखा कर खड़ा था। अभियान बिल्कुल रुक गया।

सामने कोई जगह दिखाई नहीं दे रही थी केवल विशाल सागर के जिसने अपना असीमित सीना आकाश की नील वर्ण सीमा से परे तक फैला रखा था।

अब वे क्या करते? बलशाली हनुमान ने सफलता को उछलती हुई लहरों के हवाले करने के स्थान पर महान सतायु के समान मृत्यु के द्वारा सम्मान प्राप्त करने का अटल संकल्प व्यक्त किया। जैसे ही सतायु का नाम लिया गया, इसने एक जादुई शब्द का सा काम किया। पर्वत के ढाँचे में स्थित निकटवर्ती गुफा में से संबादि नाम का विशाल पक्षी बाहर आया जो सतायु का बड़ा भाई था, पंखहीन और दिखने में असहाय। जब सतायु इतना छोटा था कि कुछ समझ नहीं सकता था, उस समय एक बार उसने भोर के कोहरे की चादर में से उदित होते लोहितवर्णी सूर्य को देखा। बालक होने के कारण अज्ञानता में उसने इसे एक स्वादिष्ट फल समझा और इसे पाने के लिए उड़ गया। अपने भाई के सामने आने वाले खतरे को भाँपकर संबादि ने उसे अपने फैले हुए पंखों की ओट में ले लिया और सूर्य के कुपित प्रहार को अपने पंखों पर आने दिया। क्षण भर में ही वे जल कर राख हो गए। वे केवल तब ही उग सकते थे, जब राम की सेना द्वारा उसकी तीन बार जय जयकार की जाती। राम की सेना की प्रतीक्षा में उसने निद्राहीन रातें और कष्टपूर्ण दिन बिताए। एक लंबे समय के बाद वे उसके लिए दुख और सुख दोनों ही लेकर आए। उन्होंने उसे उसके भाई की मृत्यु का दुखद समाचार दिया, साथ ही तीन बार जय जयकार करके उन्होंने चेतना और तेज से दैदीप्यमान नए निकले पंखों के साथ उसे विशाल आकाश में ऊँचा उड़ने से मिलने वाला परमानंद प्रदान किया।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों ग्रंथों में इस प्रसंग में काफी समानता है। दोनों ही ग्रंथों के अनुसार संपाति अथवा संबादि के पंख अपने छोटे भाई को सूर्य की किरणों के कुपित प्रहार से बचाने के कारण जले थे। संपाति और संबादि शब्द में अंतर केवल उच्चारण के कारण ही है। वा. में राम के दूतों के आने पर उनके पंख निकल सकते थे जबकि रा. में पंख केवल तब ही

उग सकते थे, जब राम की सेना द्वारा उसकी तीन बार जय जयकार की जाती।

●

हनुमान की लंका यात्रा और उनके साहसिक कार्य

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

संपाति की बातों से रावण के निवास स्थान तथा उसके भावी विनाश की सूचना मिली जिसे सुनकर सिंह के समान पराक्रमी वानर हर्ष से भरकर समुद्र के तट पर आए। उस रोमांचकारी महासागर को देखकर वे विषाद में पड़ गए। उन्हें विषाद में पड़ा देख अंगद ने उन्हें समझाया, 'वीरो! तुम्हें अपने मन में विषाद नहीं लाना चाहिए; क्योंकि विषाद में बड़ा दोष है। जैसे क्रोध में भरा हुआ साँप अपने पास आए बच्चे को काट खाता है, उसी प्रकार विषाद पुरुष का विनाश कर डालता है।' फिर उसने सभी से उसको पार करने की शक्ति के बारे में पूछा। सभी वानरों ने अपने–अपने पराक्रम के बारे में बताया लेकिन कोई भी ऐसा न दिखाई दिया जो असंभव–से लगने वाले इस काम को कर पाता। इस पर जांबवान ने हनुमान से पूछा, 'तुम एकांत में आकर चुपचाप क्यों बैठे हो? तुम कुछ बोलते क्यों नहीं? तुम्हारा बल, बुद्धि, तेज और धैर्य भी समस्त प्राणियों से बढ़कर है। फिर तुम अपने–आपको समुद्र लाँघने के लिए क्यों नहीं तैयार करते? वानर श्रेष्ठ! उठो और इस महासागर को लाँघ जाओ; क्योंकि तुम्हारी गति सभी प्राणियों से बढ़कर है।' इसप्रकार जांबवान की प्रेरणा पाकर हनुमान को अपने वेग पर विश्वास हो आया और सेना का हर्ष बढ़ाते हुए उन्होंने अपना विराट रूप प्रस्तुत किया। जैसे–जैसे वे अंगड़ाई लेते गए, उनका रूप बढ़ता ही गया। तब हनुमान जोर से गर्जना कर छलांग लगाने के लिए महेंद्र पर्वत पर चढ़ गए। यह उनका प्रथम साहसिक काम था।

कपिवर हनुमान ऐसा साहसिक काम करना चाहते थे जो दूसरों के लिए दुष्कर हो। समुद्र को लाँघने की इच्छा से उन्होंने अपने शरीर को

बेहद बढ़ा लिया और अपनी भुजाओं और चरणों से पर्वत को दबा दिया, अपने शरीर को हिलाया, रोएं झाड़े तथा मेघ के समान गर्जना की। सभी वानरों से उन्होंने कहा, 'सर्वथा कृतकृत्य होकर मैं सीता के साथ लौटूँगा अथवा रावणसहित लंकापुरी को उखाड़कर लाऊँगा।' ऐसा कहकर विघ्न–बाधाओं का कोई विचार न करके उन्होंने बड़े वेग से ऊपर की ओर छलाँग लगाई तथा महान वेग से अपने को ऊपर की ओर खींचते हुए निर्मल आकाश में अग्रसर होने लगे। यह उनका दूसरा साहसिक काम था।

अब देवता, गंधर्व, सिद्ध और महर्षियों ने नागमाता सुरसा से भयंकर राक्षसी का रूप धारण कर हनुमान के पराक्रम की परीक्षा लेने के लिए कहा। सुरसा ने विशाल राक्षसी का रूप धारण कर समुद्र के पार जाते हुए हनुमान को घेर लिया और कहा, 'देवेश्वरों ने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताकर मुझे अर्पित किया है, अतः अब मैं तुम्हें खाऊँगी। तुम मेरे इस मुँह में चले आओ।' ऐसा कह वह अपना विशाल मुँह खोलकर हनुमान के सामने खड़ी हो गई। इस पर उन्होंने कहा, 'तुम अपना मुँह इतना बड़ा बना लो जिससे उसमें मेरा भार सह सको।' सुरसा के विशाल मुख को देख हनुमान ने अपना शरीर अंगूठे के समान छोटा कर लिया और उस मुख में प्रवेश कर बाहर निकल आए। सुरसा ने प्रसन्न होकर उन्हें राम के काम में सफल होने का आशीर्वाद दिया। उनके इस तीसरे अत्यंत दुष्कर कर्म को देख सब प्राणी वाह–वाह करने लगे।

रास्ते में जाते हुए हनुमान को इच्छानुसार रूप धारण करने वाली सिहिंका नाम की राक्षसी ने देखा। उन्हें देख वह सोचने लगी, 'आज दीर्घकाल के बाद यह विशाल जीव मेरे वश में आया है। इसे खा लेने पर बहुत दिनों के लिए मेरा पेट भर जाएगा।' यह सोचकर उसने हनुमान की छाया पकड़ ली। अचानक छाया के पकड़े जाने पर हनुमान ने अपनी दृष्टि नीचे डाली और उस अद्भुत छायाग्राही जीव को देखकर उन्होंने अपना शरीर विशाल कर लिया। उनके विशाल शरीर को देख उसने भी अपना मुख पाताल और आकाश के मध्यभाग के समान फैला दिया और उनकी ओर दौड़ी। हनुमान अपने शरीर को संकुचित कर उसके विशाल

मुख में आ गिरे। अपने तीखे नखों से उसके मर्म स्थानों को विदीर्ण कर, उसे मार कर मन के समान गति से उछलकर उसके मुख से बाहर निकल आए। यह उनका चौथा साहसिक कार्य था।

अब वे पुनः आकाश में गरुड़ के समान वेग से चलने लगे। वहाँ से ही उन्होंने भाँति–भाँति के वृक्षों से सुशोभित लंका नामक द्वीप को देखा। फिर अपने कर्तव्य का विचार करके छोटा–सा रूप धारण कर लिया। समुद्र को लाँघकर हनुमान उसके तट पर उतर गए और लंका पुरी की शोभा देखने लगे। फिर हनुमान धीरे–धीरे अद्भुत शोभा से संपन्न रावण–पालित लंकापुरी के पास पहुँचे। उसके चारों ओर खुदी हुई खाइयाँ उस नगरी की शोभा बढ़ा रही थीं। विश्वकर्मा की बनाई गई लंका मानो उनके मानसिक संकल्प से रची गई एक सुंदर स्त्री थी। उसकी चौकसी का भी भारी प्रबंध था। बहुत तरह से विचार करने के बाद उन्होंने सूर्यास्त हो जाने पर छोटा रूप बनाकर लंका में प्रवेश करना उचित समझा। जब वे उसमें प्रवेश करने लगे, तभी उस नगरी की अधिष्ठात्री देवी लंका ने अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट होकर उन्हें देखा। वह उनके सामने खड़ी हो गई और उनसे उनका परिचय तथा आने का कारण पूछने लगी। किंतु हनुमान ने अपना परिचय देने से पहले उसके बारे मे जानना चाहा। तब उसने अपने को रावण की आज्ञा से नगर की रक्षा करने वाली सेविका बताया। हनुमान ने उससे लंका को देखने देने का अनुरोध किया जिस पर उस लंका ने हनुमान को जोर से थप्पड़ मारा। फिर तो हनुमान ने उसका मुकाबला करते हुए उस पर मुट्ठी से प्रहार किया। उससे पीड़ित होकर उसने हनुमान से उसके प्राण न लेने की याचना की तथा उनसे रावणपालित लंका में प्रवेश करने और स्वेच्छानुसार जनकनंदिनी सीता की खोज करने के लिए कहा।

रामकीर्ति के अनुसार

जब युद्ध की सारी तैयारियाँ हो चुकीं, राम ने लंका के लिए तुरंत कूच करने की सोची। इसलिए उन्होंने युद्ध समिति को अपनी योजना के औचित्य पर विचार करने के लिए बुलाया। समिति ने निर्णय किया कि मुख्य सेना को भेजने से पहले यह अधिक उचित रहेगा कि

हनुमान, जम्बुबान और निलाबद के नेतृत्व में सैन्य दृष्टि से टोह लगाने के लिए एक दल भेजा जाए। उनको सीता का पता–ठिकाना जानने और उन तक खबर पहुँचाने का दायित्व भी सौंपा गया।

राम ने हनुमान को मुद्रिका और सीता का दुपट्टा उन्हें सौंपने के लिए दिया ताकि वे उस पर विश्वास कर सकें कि वह उनके पति का दूत है। किंतु हनुमान ने शंका व्यक्त की कि सीता कहीं उन्हें एक दुश्मन न समझ लें, क्योंकि इस बात की पूरी संभावना है कि कोई भी राक्षस उन स्मृति–चिन्हों को सरलता से पा सकता है। इस पर राम ने हनुमान से कहा कि यदि सीता उन पर शंका करें, तब वे उन्हें एक गुप्त बात बता दें जो केवल राम और सीता को ही पता है। यह उनके प्रथम प्रेम की प्रिय कहानी थी जो मिथिला के महल की खिड़की के नीचे से शुरु हुई थी। सीता के संदेह का निवारण करने वाली इस गुप्त बात के साथ हनुमान और सेना ने लंका के लिए कूच किया।

पर्याप्त दूरी तय कर लेने के बाद, सेना मायन नगर पहुँची। यह बिल्कुल निर्जन स्थान था, केवल स्वर्ग से गिरी शापित अप्सरा पुष्माली वहाँ रह रही थी। इसका कारण था कि इसकी कपटी चाल द्वारा मायन के शासक तावन ने स्वर्गिक अप्सरा रंभा को अपनी पत्नी बना लिया था। ईस्वर ने इसलिए उस पूरे देश को वीरान कर दिया और पुष्माली को इस निर्जन नगर में राम के सैनिकों से भेंट होने और शापित जीवन से छुटकारा पाने तक, एकाकी जीवन जीने का शाप दे दिया। हनुमान उससे मिले और उन्होंने अपना परिचय राम के सैनिक के रूप में दिया। लेकिन आशंकित पुष्माली ने उनसे किसी विशिष्ट चमत्कारिक शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए कहा। तब हनुमान ने चार मुख और आठ भुजाओं वाले विशाल शरीर को धारण कर अपना मुँह फाड़कर, सूर्य, चंद्र और तारों के समूह को दिखाया जिससे पुष्माली को उन पर विश्वास हो गया और उसने उन्हें लंका जाने का रास्ता बता दिया। अप्सरा के विशिष्ट सौंदर्य ने हनुमान को इतना अधिक मोहित कर लिया कि वे अपने आप को उस युवती से प्रेम करने से नहीं रोक पाए, जिसे उसने भी सहर्ष स्वीकार कर

लिया। अपने प्रेम से संतुष्ट होने के बाद हनुमान ने उसके शापित जीवन का सुखद अंत कर दिया।

पुष्माली के बताए गए मार्ग का अनुगमन करते हुए सेना तीव्र गति से बहने वाली महानदी पर पहुँची जिसकी विशालता देख सेना आगे बढ़ने में असमर्थ हो गई किंतु हनुमान ने अपनी पूँछ को असाधारण रूप से बढ़ा कर दोनों किनारों के बीच में रख दिया। उसने मजबूत पुल का काम किया और सारी सेना सकुशल नदी पार कर गई। अंत में वे विशाल और अधीर महासागर के पास स्थित हेमाटिरन पर्वत के पास पहुँचे। सामने और कोई स्थान दिखाई नहीं दे रहा था केवल विशाल सागर के। इससे उनका अभियान बिल्कुल रुक गया।

किंतु इससे वे बिल्कुल घबराए नहीं। यहीं पर उनकी भेंट सतायु के बड़े भाई संबादि से हुई। बलशाली हनुमान कृतज्ञ संबादि की पीठ पर बैठकर हेमाटिरन और लंका के मध्य स्थित गंधसिंग्खरा पर्वत पर पहुँच गए। वहाँ पहुँचने पर संबादि ने निलाकल पर्वत की ओर संकेत किया जो बहुत ऊँचा था। एक बड़ी छलाँग लगा कर हनुमान अपने गंतव्य की ओर उड़ चले। अचानक एक विशालकाय, भयंकर और अभेद्य राक्षसी जो महासागर की विकराल रक्षक थी और जिसे दसकंठ ने समुद्रतट की रक्षा के लिए नियुक्त किया था, ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। हनुमान तेजी से उसके मुँह में घुस गए और उसके पेट को फाड़कर उसकी आंतें बाहर निकाल लाए। वह राक्षसी अब केवल असंख्य जलचरों का ग्रास बनने के लिए जमीन पर पड़ी थी।

फिर छलांग का आवेग हनुमान को निलाकल पर्वत से बहुत आगे ले गया और उन्हें सोलाश पर्वत के शिखर पर जाकर छोड़ा, जहाँ नारद ऋषि की कुटिया थी। हनुमान ने उनसे एक रात बिताने हेतु आश्रय के लिए निवेदन किया। उन्हें एक कुटिया दिखाई गई जहाँ पर वे एक रात बिता सकते थे। नारद ऋषि की अलौकिक शक्तियों को जानने के लिए जिज्ञासु हनुमान ने अपने शरीर का इतना विस्तार कर लिया कि कुटिया इतनी छोटी लगने लगी कि वे उसमें नहीं आ सकते थे। सर्वशक्तिमान ऋषि ने एक बड़ी कुटिया का निर्माण कर दिया, किंतु हनुमान का शरीर

उससे भी अधिक बड़ा हो गया। अंत में उनको सबक सिखाने के लिए ऋषि ने इतनी अधिक ठंडी बारिश करवा दी कि उस जैसे बलशाली वानर को भी सिकुड़कर मूल रूप में आना पड़ा। ऋषि तब उनको काँपते हुए कुटिया में छोड़ गए और एक तालाब पर पहुँचे जहाँ उन्होंने एक लकड़ी को जोंक में बदल दिया।

दिन निकलने पर हनुमान तालाब पर प्रातः दैनिक प्रक्षालन के लिए गये। जैसे ही उन्होंने इसके ताजे पानी में डुबकी लगाई, जोंक उनकी ठोड़ी से चिपक गई। व्यग्र हो उन्होंने उसे पकड़कर खींचना शुरु कर दिया। लेकिन जितना ज्यादा वे खींचते, वह चमत्कारिक जोंक उतनी ही ज्यादा चिपचिपी और लचीली होती जाती। अंत में उनके मन में विचार आया कि यह उनकी धृष्टता का परिणाम है। सच्चा प्रायश्चित करते हुए हनुमान ऋषि की ओर दौड़े और क्षमा याचना की। जोंक तुरंत नीचे गिर गई।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों ग्रंथों में ही हनुमान के साहसिक कार्य अलग–अलग हैं। जिन घटनाओं का जिक्र वा. में है वह रामकीर्ति में नहीं है। रा. में वर्णित राम–सीता के मध्य प्रेम, पुष्माली की हनुमान से भेंट, नारद ऋषि–हनुमान भेंट आदि प्रसंग वा. में नहीं मिलते।

●

हनुमान की सीता से भेंट और लंका दहन

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

लंका की रक्षा करने वाली राक्षसी को परास्त कर हनुमान रात्रि में चहारदीवारी फाँदकर लंका में प्रवेश कर गए। लंका में पहुँच जाने के बाद हनुमान सीता को इधर–उधर खोजने लगे। उन्होंने रावण तथा अन्य अनेक राक्षसों के घरों में घुसकर सीता को ढूँढा। किंतु उन्हें कहीं भी सीता के दर्शन नहीं हुए। उनके मन में बड़ी ही निराशा पैदा हो गई।

'हताश न होकर उत्साह को बनाए रखना ही संपत्ति का मूल कारण है', यह सोचकर अपना उत्साहवर्धन कर वे सीता को खोजने लगे। वे रावण के महल की छत से कूदकर अशोकवाटिका की चहारदीवारी पर चढ़ गए। जब वे अशोकवाटिका में पहुँचे, तब उन्होंने मलिन वस्त्रों में एक सुंदर स्त्री को देखा जिसे देखकर उन्होंने सोचा कि हो न हो, ये ही सीता हैं। वे राक्षसियों से घिरी बैठी थीं तथा उनके मुख पर आँसुओं की धारा बह रही थी। सीता के दर्शन से उल्लसित हो सवेरा होने तक वे वहीं छिपे रहे। सवेरा होने पर हनुमान ने देखा कि आभूषणों को धारण किए हुए रावण अशोकवाटिका में प्रवेश करके सीता को लुभाने की बहुत कोशिश कर रहा है, 'मिथिलेशकुमारी! तुम मेरी भार्या बन जाओ। पातिव्रत्य के इस मोह को छोड़ो। मेरे यहाँ बहुत सी सुंदर रानियाँ हैं। तुम उनमें श्रेष्ठ पटरानी बन जाओ।' किंतु उन्होंने देखा कि सीता ने उसकी इन बातों का बड़ी ही कठोरता से उत्तर दिया। इस पर रावण क्रुद्ध होकर, दो महीने बाद जान से मारने की धमकी देकर चला गया। रावण के प्रति किए गए सीता के इस व्यवहार के कारण राक्षसियाँ फिर उन्हें धमकाने लगीं और वे पुनः जोर–जोर से विलाप करते हुए सोचने लगीं कि अब वे इन प्राणों का परित्याग कर देंगी। इधर राक्षसियाँ उन्हें बार–बार भयभीत किए जा रही थीं। उनकी बातों को सुनकर बूढ़ी राक्षसी त्रिजटा ने रात में देखे गए भयंकर और रोमांचकारी स्वप्न के बारे में बताया, जिसमें उसने राम, लक्ष्मण के साथ सीता को विजयी मुद्रा में तथा रावण और उसके कुल के विनाश को देखा था। उसने कहा कि रावण के विनाश और राम की विजय में अब अधिक विलंब नहीं है। उसकी इस बात को सुनकर सीता हर्ष से भर गईं।

थोड़ी ही देर बाद जब सीता को रावण की बातें याद आईं, तो वह पुनः भयभीत हो गई। शोक से संतप्त उन्होंने अपनी चोटी की डोरी से फाँसी लगाने का निश्चय किया और जब वह फाँसी लगाने का प्रयास करने लगीं, तभी उनके सामने शुभ शकुन प्रकट होने लगे और उन्होंने इस विचार को त्याग दिया।

पराक्रमी हनुमान ने सीता का विलाप, त्रिजटा की स्वप्न चर्चा और राक्षसियों की डाँट–फटकार सुन ली थी। यह सब देखकर वह बहुत दुखी हुए। उन्होंने सोचा कि यदि आज रात सीता को सांत्वना नहीं दी गई तो ये अपने आप को समाप्त कर लेंगी। यह सोचकर वे शाखाओं के बीच में छिप कर बोलने लगे। उन्होंने राम के वंश, सीता के विवाह तथा उनके हरण की सारी कहानी सुनाई। सीता द्वारा इधर–उधर भौंचक देखने पर हनुमान पेड़ से उतरे और सीता को प्रणाम कर स्वयं को राम का दूत बताया। सीता द्वारा हनुमान से राम के परिचय के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने राम और लक्ष्मण की प्रशंसा करते हुए यहाँ तक आने की पूरी कथा सुना दी। इसके साथ ही सीता को विश्वास दिलाने के लिए उन्होंने राम नाम से अंकित राम द्वारा दी गई मुद्रिका भी दिखाई। हनुमान की बातें सुनकर उन्हें काफी सांत्वना मिली। उन्होंने उनकी बहुत प्रशंसा की तथा राम लक्ष्मण के बारे में भी पूछा। हनुमान ने राम–लक्ष्मण के बारे में बताने के बाद उन्हें अपनी पीठ पर बैठा कर राम के पास ले चलने के लिए भी कहा जिसे सीता ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया, 'रावण से मेरे शरीर का जो स्पर्श हो गया है, वह तो उसके बल के कारण हुआ है। उस समय मैं असमर्थ, अनाथ और बेबस थी। यदि श्री रघुनाथ राक्षसों सहित दशमुख रावण का वध करके मुझे यहाँ से ले चलें तो वह उनके योग्य कार्य होगा। अतः तुम राम को यहाँ बुला लाने का प्रयत्न करो ताकि वे स्वयं मुझे यहाँ से ले जाएं।' सीता की बात सुन हनुमान बहुत प्रसन्न हुए और उनसे उनकी कोई पहचान मांगी। तब सीता ने उन्हें कौए वाली कहानी जिसमें कौए ने उनकी छाती में चोंच मार दी थी, का संकेत राम को देने के लिए कहा जिसे केवल राम ही जानते थे। इसके साथ ही सीता ने दिव्य चूड़ामणि भी दी।

हनुमान ने जाते समय यह सोचा कि अभी तक शत्रु की शक्ति का तो पता लगाया ही नहीं। इसके बारे में जानने के लिए उन्होंने अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से भरे प्रमदा वन को ही उजाड़ डाला और प्रमदा वन के फाटक पर आ गए। पेड़ों के टूटने की आवाज सुनकर लंकावासी घबरा गए। रावण को जब इसकी सूचना मिली तो वह कोध से भर गया। उसने वीर किंकर नामधारी राक्षसों को उनका मुकाबला करने

के लिए भेजा। हनुमान ने राम का नाम लेकर अपना परिचय दिया और उन राक्षसों को मार डाला। फिर प्रहस्त का बलवान पुत्र जंबुमाली आया, दोनों के बीच भयंकर युद्ध हुआ। लेकिन वह भी वहीं मारा गया। फिर हनुमान द्वारा रावण के भेजे गए मंत्री के सातों पुत्र भी मार दिए गए। इस खबर से रावण बहुत परेशान और चिन्तित हो गया। उसने अपने पाँच सेनापतियों–विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस, और भासकर्ण को हनुमान का मुकाबला करने के लिए भेजा लेकिन उन्हें भी मुँह की खानी पड़ी। रावण ने अपने पुत्र अक्षय कुमार को हनुमान का सामना करने के लिए भेजा। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। हनुमान ने बल और पराक्रम से उसके दोनों पैर पकड़ कर उसे पृथ्वी पर पटक कर मार डाला।

अक्षयकुमार की मृत्यु के समाचार ने रावण के क्रोध को और भी भड़का दिया। उसने अपने पुत्र इंद्रजीत को वहाँ जाने की आज्ञा दी। वे दोनों आपस में भिड़ गए। कोई वश न चलने पर इंद्रजीत ने उन्हें कैद करने के विचार से उन पर ब्रह्मास्त्र से प्रहार किया। निश्चेष्ट हुए हनुमान को रस्सों में बाँधने के बाद वे क्रूर राक्षस उन्हें पीड़ा देते हुए तथा मुक्कों का प्रहार करते हुए रावण के पास ले गए। रावण उन्हें देखकर क्रोध से भर गया और उसने अपने मंत्रियों से उनका परिचय पूछने की आज्ञा दी। मंत्री प्रहस्त द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि वह वानरराज सुग्रीव का दूत बनकर आया है। सुग्रीव ने राम से सीता को ढूँढ निकालने की प्रतिज्ञा की है। अतः वह सीता को ढूँढने के लिए ही यहाँ आया है। फिर रावण को सावधान करते हुए कहा, 'राजन! तीनों लोकों में एक भी ऐसा प्राणी नहीं है जो राम के प्रति अपराध कर सुखी रह सके।' उनकी ऐसी अनेक बातों को सुनकर क्रुद्ध हुए रावण ने उनका वध करने की आज्ञा दी जिसका विभीषण ने विरोध किया और कहा, 'सत्पुरुषों का कथन है कि दूत कहीं भी किसी समय भी वध करने योग्य नहीं होते।.... दूत के लिए अन्य प्रकार के बहुत से दण्ड देखे गए हैं। किसी अंग को भंग कर विकृत कर देना, कोड़े से पिटवाना, सिर मुड़वा देना तथा शरीर में कोई चिह्न दाग देना–ये ही दण्ड दूत के लिएउचित बताए गए हैं।' अपने छोटे भाई विभीषण के इस उत्तम और प्रिय वचन को सुनकर रावण ने सोच–विचार कर उनकी बात मान ली और कहा, 'वानरों को अपनी पूँछ बड़ी प्यारी

होती है, अतः जितनी जल्दी हो सके, इसकी पूँछ जला दो।' ऐसा कह कर उनकी पूँछ जलाने की आज्ञा दी।

हनुमान की पूँछ में कपड़ा बाँधकर, तेल डालकर और आग लगाकर उन्हें सारी लंका में घुमाया जाने लगा। उन्होने विभीषण का घर छोड़कर सारी लंका में आग लगा दी। जब सारी लंका जल रही थी और राक्षसगण अत्यंत भयभीत हो रहे थे, तभी उन्हे सीता के दग्ध होने की आशंका से बड़ी पीड़ा हुई, साथ ही अपने क्रोध के प्रति बड़ी घृणा भी हुई, 'अधिक क्रुद्ध हुआ मनुष्य कभी इस बात का विचार नहीं करता कि मुँह से क्या कहना चाहिए और क्या नहीं? क्रोधी के लिए कोई ऐसा बुरा काम नहीं, जिसे वह न कर सके और कोई ऐसी बुरी बात नहीं जो वह मुँह से न निकाल सके। मैंने रोष के दोष से तीनों लोकों में विख्यात इस वानरोचित चपलता का ही यहाँ प्रदर्शन किया है। सीता के नष्ट हो जाने पर दोनों भाई राम और लक्ष्मण भी नष्ट हो जाएंगें।' किंतु उसी समय उन्होंने कुछ महात्माओं के मुख से सीता के जीवित होने की बात सुनी तो वे हर्षित हो गए। वानर शिरोमणि हनुमान ने समुद्र के जल में अपनी आग बुझाई। फिर वे सीता के पास गए और उनसे जाने की आज्ञा लेकर उड़ गए।

जब वानरों ने हनुमान के सिंहनाद को सुना तो वे समझ गए कि हनुमान कार्य सिद्ध करके आ गए हैं। राम के पास पहुँचकर हनुमान ने सीता के बारे में विस्तार से बताया। उसे सुनकर राम आश्वस्त हो गए।

रामकीर्ति के अनुसार

हनुमान अपने मेजबान नारद ऋषि से औपचारिक विदाई लेकर लंका की ओर चल पड़े। एक दूसरी बहुत ऊँची वानरी छलांग लगा वे बड़ी आसानी से निलाकल पर्वत पर पहुँच गए। चार मुख और आठ हाथ वाले नगर–पहरेदार ने उनका विरोध किया जिसे मौत के घाट उतारते हुए वे राक्षस के रूप में लंका में प्रवेश कर गए। शाम का समय था, साहपति ब्रह्मा की सृष्टि पर अंधकार का आवरण छा गया। हनुमान ने रात के आवरण का लाभ उठाया, सभी लोगों को गहरी नींद के वश में कर दिया और बहुत शीघ्र मिलने वाली सफलता की आशा भरी खुशी के साथ

अंततः उन्होंने दसकंठ के महल में प्रवेश किया। किंतु अफसोस, वहाँ निराशा ही हाथ लगी। वे एक राजमहल से दूसरे राजमहल में छलांग लगाते गए, एक कमरे से दूसरे कमरे में घूमते रहे और हर जगह का कोना–कोना छान मारा, किंतु उनकी चौकन्नी निगाहों को सीता कहीं दिखाई नहीं दीं।

निराशा में सिर झुकाए वे नारद के पास वापस आए और उनसे राय लेकर उन्होंने छोटे वानर का रूप धारण कर सीता को खोजने के लिए एक रमणीय बगीचे में प्रवेश किया। वहाँ पर उनकी खोज का लक्ष्य था–असहाय सीता, किंतु वैसे ही अस्पष्ट जैसे काले–घने बादलों के पीछे छिपा हुआ पूर्णमासी का चाँद। शाम होने पर दसकंठ अपनी सारी अनैतिक क्रूरता के साथ नारायण की पत्नी का मन जीतने के लिए वहाँ आया। लुभावने अंदाज में उसने उनसे प्रणय निवेदन किया। किंतु एक शुद्ध एवं निष्ठावान हृदय को प्रलोभन आकर्षित नहीं करता। दसकंठ को पहले से कहीं अधिक क्रुद्ध हो कर वापस लौटना पड़ा।

अपने प्रिय पति से काफी दूर होने के कारण अब सीता की सहिष्णुता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। उन्हें लगातार पापपूर्ण प्रलोभनों का सामना करना पड़ रहा था। अंततः उन्होंने अपने दुखी जीवन का अंत करने का मन बना लिया। ज्यों ही उनके मन में यह विचार आया, वे एक निर्जन पेड़ के पास गईं और अपने को फांसी पर लटका लिया। भौंचक्के हनुमान, जिन्होंने कभी सोचा भी न था कि सीता अपनी जान भी ले सकती हैं, तुरंत पेड़ पर चढ़ गए और गांठ को ढीला कर दिया। उनके पूरे शरीर में खुशी की लहर दौड़ गई, जब उन्होंने सीता को जीवित पाया। उन्होंने अपना परिचय दिया और उन्हें बताया कि राम लंका पर चढाई करने और उन्हें छुड़ाने की तैयारी कर रहे हैं।

जब सीता उनकी सच्चाई से संतुष्ट हो गईं, उनके उदास गालों पर खुशी की अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। निराशा की लंबी रात के बाद यह आशा की पहली किरण थी। हनुमान उन्हें अपनी हथेली पर बैठाकर ले जाना चाहते थे, लेकिन उन्होंने उनकी यह बात नहीं मानी। उन्होंने यही कहा कि एक बार दसकंठ द्वारा ले जाए जाने पर उनका जीवन

काफी बदनाम हो चुका है। वे किसी दूसरे पुरुष द्वारा ले जाए जाने के कारण अपने जीवन को और अधिक बदनाम नहीं होने देना चाहतीं।

तब हनुमान उनसे अनुमति लेकर हेमाटिरन पर्वत पर जाने के लिए तैयार हो गए। किंतु उस नगर से जाने से पहले वे अपने कुछ निशान पीछे छोड़ना चाहते थे। इसलिए उन्होंने दसकंठ के प्रिय पेड़ों को जड़ से उखाड़ते हुए उसके सुंदर बगीचे को तहस–नहस कर डाला। हिंसा के इस अचानक हुए विस्फोट के कारण राक्षसी सेना उनको वश में करने के लिए पहुँची किंतु उसके स्थान पर उसे केवल मृत्यु ही प्राप्त हुई। सहस्सकुमार, दसकंठ के हजार पुत्र भी कुछ अधिक अच्छा न कर सके। अंत में इंद्रजीत आया जो देवताओं के राजा का यश निष्प्रभ कर चुका था। राक्षसों की शक्ति को जाँचने के उद्देश्य से हनुमान ने स्वयं ही अपने को इंद्रजीत से बंधवा लिया और लंका के राजा के सामने ले जाए गए। वीरता के ऐसे प्रदर्शन से प्रसन्न दसकंठ उन्हें अपना एक सैनिक बनाना चाहता था। लेकिन हनुमान ने इसे अस्वीकार कर दिया। हनुमान ने कहा कि उनके शरीर को पीट–पीट कर काला–नीला करने पर भी उन्हें दास जीवन की अपेक्षा मृत्यु स्वीकार्य होगी। उन्होंने अनुरोध करते हुए पूछा कि क्या वे उसके शरीर को तेल में डुबोए कपड़े से बांधेंगे और उसमें आग लगाएंगे? राक्षसों ने उनकी प्रार्थना को बिना किसी संकोच और बिना किसी देरी के स्वीकार कर लिया और कुछ ही समय में हनुमान का पूरा शरीर जलने लगा। विशाल पर्वत के समान हनुमान चारों ओर से निकलती तेज लपटों के साथ उठ खड़े हुए। जोर के झटके के साथ उन्होंने अपने सारे बंधन तोड़ दिए और लंका की सड़कों पर दौड़ने लगे। एक छत से दूसरी छत पर छलांग लगाते हुए वायुपुत्र हनुमान अपनी जलती पूँछ को घुमाते रहे और सारे सुंदर शहर को आग लगा दी। एक महल से दूसरे महल तक, एक घर से दूसरे घर तक भीषण लपटें ताण्डव करती रहीं और स्वर्णनगरी को नष्ट कर धराशायी कर दिया।

अपनी पूर्ण संतुष्टि के साथ लंका को जलाने के बाद हनुमान ने समुद्र में अपने शरीर को ठंडा किया। लेकिन उनकी पूँछ में अभी भी आग लगी थी। किसी पानी से उसकी आग न बुझ सकी। परेशान हो उन्होंने

नारद से सलाह मांगी जिनको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वानर इतना अनजान है कि उसे अपने 'छोटे कुंए' का प्रयोग करना नहीं आता। हनुमान उनका तात्पर्य समझ गए और अपनी पूँछ को अपने मुँह में डाल लिया। आग पल भर में बुझ गई।

उसके बाद हनुमान हेमाटिरन पर वानर दल के पास वापस लौट आए और अपने साहसिक कार्य के बारे में बताया। खुशी और उल्लास से उछल–कूद करते हुए, राम को इस शुभ समाचार से अवगत कराने के लिए वे गंधमास की ओर चल दिए।

राम ने जब हनुमान के इस वीरतापूर्ण कार्य के बारे में सुना, वे बहुत व्याकुल हो गए क्योंकि इससे सीता को नुकसान पहुँच सकता था जो अभी भी दुश्मन के कब्जे में थी। अपनी आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण राम ने उन्हें फटकारा। किंतु हनुमान ने बताया कि उन्होंने किसी को अपना परिचय नहीं दिया और दसकंठ इस तथ्य से अनजान है कि वे राम के दूत हैं।

सेना ने तब लंका के लिए कूच किया और सही समय पर उफनते हुए उस समुद्र के किनारे अपना डेरा डाल लिया जिसने राक्षसों के देश को चारों ओर से घेर रखा था।

उल्लेखनीय बिंदु

हनुमान द्वारा लंका की खोज का प्रसंग दोनों ग्रंथों में थोड़ी सी भिन्नता रखता है। वा. में हनुमान जब सीता की खोज के लिए गए, तब तक राम द्वारा लंका पर आक्रमण करने की योजना नहीं बनी थी। रा. में लंका पर आक्रमण करने की योजना बन चुकी थी। वा. में सीता ने आत्महत्या के बारे में केवल सोचा ही था किंतु रा. में उन्होंने आत्महत्या करने के विचार को क्रियान्वित किया जिसे हनुमान द्वारा विफल कर दिया गया। रा. के अनुसार, दसकंठ ने हनुमान को अपना सैनिक बनाने का प्रस्ताव दिया था, वा. में ऐसा नहीं है। वा. में विभीषण के कहने पर हनुमान की पूँछ में आग लगाई गई थी जबकि रा. में हनुमान ने स्वयं

अपनी पूँछ में आग लगाने के लिए कहा था। वा. में लंका जलाने के बाद हनुमान ने समुद्र के जल में आग बुझा दी थी, रा. में समुद्र के जल से पूँछ की आग नहीं बुझी थी, बल्कि नारद के कहने पर उन्होंने 'छोटे कुएं' अर्थात् मुँह में डालकर उस आग को बुझाया। वा. में हनुमान स्वयं को राम का दूत बताते हैं, रा. में उन्होंने अपना परिचय नहीं दिया।

●

विभीषण का निष्कासन

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

हनुमान ने सीता से भेंट करने और लंका दहन करने वाला अपना जो भयावह कर्म दिखाया था, उसे देख रावण का सिर लज्जा से झुक गया। उसने मंत्रियों से विचार–विमर्श कर सही सलाह देने के लिए कहा। किंतु राक्षसों को न तो नीति का ज्ञान था और न ही वे शत्रु का बलाबल समझते थे। वे बलवान तो बहुत थे किंतु नीतिशून्य थे। अतः परिस्थिति की गंभीरता को न समझते हुए उन्होंने मूर्खों की तरह राम, सुग्रीव, लक्ष्मण और हनुमान को मार डालने की बात कही। हाथों में अस्त्र–शस्त्र लिए उन राक्षसों को जाने के लिए उद्यत देख विभीषण ने उन्हें जाने से रोका और दोनों हाथ जोड़ रावण से कहा, 'श्रीराम बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं। उनके साथ वैर करना उचित नहीं। मिथिलेशकुमारी सीता को उनके पास लौटा देना चाहिए। आप मेरे बड़े भाई हैं। कृपा करके आप मेरी बात मान लीजिए।' अगले दिन विभीषण ने रावण को उसके घर जाकर भी समझाया किंतु काममोहित हुए रावण ने मंत्रियों और सुहृदों के साथ सलाह करके युद्ध को ही उचित माना।

तत्पश्चात् रावण ने अत्यंत उत्तम रथ पर सवार होकर सभा भवन की ओर प्रस्थान किया। सभा–भवन में पहुँचकर रावण ने अपने सभी सभासदों को बुलाया। विभीषण भी वहाँ पहुँचे। तब रावण ने कहा, 'मैं दण्डकारण्य से, जो राक्षसों के विचरने का स्थान है, राम की प्यारी रानी जनकदुलारी सीता को हर लाया हूँ। किंतु वह मेरी शैया पर आरूढ़ नहीं

होना चाहती।' रावण की इस बात को सुनकर कुंभकर्ण ने क्रोधपूर्वक कहा कि उसे सीता हरण करने से पहले ही उन सबसे इस विषय पर विचार करना चाहिए था। यद्यपि ऐसा नहीं हुआ, तथापि वह उसके पक्ष में ही युद्ध करेगा। इसीप्रकार महाबली महापार्श्व ने भी रावण से उसके पक्ष में वचन कहे। किंतु विभीषण ने रावण को फिर से राम की अजेयता को बताकर सीता को वापस लौटाने के लिए समझाने का प्रयास किया। इस पर रावण ने क्रोधावेश में विभीषण से कहा, 'कुलकलंक निशाचर! तुझे धिक्कार है। यदि तेरे अलावा दूसरा कोई ऐसी बातें कहता तो उसे इसी मुहुर्त अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता।' यह बात सुनकर विभीषण अपने हाथ में गदा लेकर अन्य चार राक्षसों के साथ उछलकर आसमान में चले गए और वहीं से कहा, 'राजन! सदा प्रिय लगनेवाली मीठी–मीठी बातें कहने वाले लोग तो सुगमता से मिल सकते हैं; परंतु जो सुनने में अप्रिय किंतु परिणाम में हितकर हो, ऐसी बात कहने वाले और सुनने वाले दुर्लभ होते हैं।' यह कह कर विभीषण उस स्थान पर आ गए जहाँ राम विराजमान थे।

विभीषण ने आकाश में ही स्थित रहकर अपना परिचय देते हुए अपने आने के कारण के बारे में बताया। राम ने उनके आने की बात को लेकर सुग्रीव, जांबवान, हनुमान आदि सभी से बात की। सबकी बातें सुनने के बाद हनुमान ने अपना मत व्यक्त करते हुए यही कहा कि उनका इस समय यहाँ आना सर्वथा उचित और उसकी उत्तम बुद्धि के अनुरूप है। उनकी बात को सुनकर राम प्रसन्न हुए और उन्होंने यही कहा, 'जो मित्र भाव से मेरे पास आ गया हो, उसे मैं किसी तरह त्याग नहीं सकता। संभव है, उसमें कुछ दोष हों, परंतु दोषी को आश्रय देना भी सत्पुरुषों के लिए निंदित नहीं है। शरणागत की रक्षा करना हमारा धर्म है।'

राम के अभय कर देने पर विभीषण नीचे उतर कर उनके चरणों में गिर पड़े और बताया कि रावण ने उनका अपमान किया है। राम ने उन्हें सांत्वना दी और उनसे रावण के बलाबल के बारे में पूछा। तब विभीषण ने रावण के संपूर्ण बल के विषय में बताया। सारे राक्षसों के बारे में विचार करने के बाद राम ने कहा कि रावण के मरने के बाद वे उन्हें लंका का

राजा बनाएंगे। विभीषण ने भी युद्ध में राम की हर संभव सहायता करने लिए कहा। राम ने लक्ष्मण को उनका अभिषेक करने की आज्ञा दी। लक्ष्मण ने उनका राज्याभिषेक कर दिया।

रामकीर्ति के अनुसार

निस्संदेह, अग्निकांड ने लंका के सुंदर नगर को नष्ट कर दिया था, किंतु जिसकी सेवा देवता करते हों और राक्षस पूजा करते हों, उसके लिए हनुमान के आग्नेय प्रदर्शन से लगे काले निशानों को मिटाना बिल्कुल भी कठिन नहीं था। अतः लंका पहले से भी अधिक सुंदर और आलंकारिक ढंग से पुनर्निमित की जा चुकी थी। अब दसकंठ इतना खुश और अहंकारी हो गया जितना वह हो सकता था।

उसके बाद एक रात आई जब उसकी शांतिपूर्ण नींद में अचानक एक भयानक स्वप्न लगातार बना रहा। दसकंठ ने स्वप्न में देखा कि आकाश के बीचोंबीच दो गिद्धों के मध्य एक भयंकर युद्ध छिड़ गया जिनमें एक काला था जो पश्चिम से आया था और एक सफेद, जो दक्षिण से। अंत में काला गिद्ध नीचे गिर कर मर गया और अपने आप ही एक विचित्र राक्षस के रूप में बदल गया। उसके बाद एक दूसरा दृश्य उसके स्वप्न में आया। उसने सपना देखा कि उसने एक नारियल के खोल में कुछ तेल डाला और उसमें बत्ती रख दी और उस अनोखे दीपक को अपनी हथेली पर रख लिया। अचानक तेजी से एक औरत आई और उसने बत्ती को जला दिया। लपट ने उस पूरे दीपक को जलाकर नष्ट कर दिया और वह उसकी हथेली तक पहुँच गई। जलने की अनुभूति उसके संपूर्ण शरीर में होने लगी। चौंककर और भयभीत होकर दसकंठ जाग गया। उसकी बीसों आँखों में एक अज्ञात भय साफ–साफ दिखाई दे रहा था।

भयभीत दसकंठ ने बिभेक को बुलाकर स्वप्न का ज्योतिषीय स्पष्टीकरण पूछा। बिभेक ने व्याख्या की कि काला गिद्ध दसकंठ का प्रतीक और श्वेत राम का प्रतीक था। राम ने दसकंठ को हरा दिया। नारियल के खोल का अर्थ था लंका, तेल का अर्थ था दसकंठ का वंश और बत्ती का अर्थ था उसका जीवन। दीपक जलाने वाली स्त्री सम्मानखा

थी और सीता लौ थी जिसने सबको नष्ट कर दिया। स्वप्न ने दसकंठ के जीवन पर मँडराती भीषण आपदा की भविष्यवाणी कर दी थी। ज्योतिष विज्ञान इस दुष्प्रभाव का कोई भी निराकरण नहीं कर सकता। सीता को राम को लौटा देना और उनसे क्षमा याचना करना ही इसका एकमात्र उपाय था।

जैसे मरणासन्न दवाई को मना कर देता है वैसे ही सनकी सलाह को। बिभेक की नेक सलाह ने केवल दसकंठ के क्रोध को भड़का दिया। बिभेक की हिम्मत कैसे हुई कि वह राम की तुलना में उसे छोटा समझे? उसके सामने दुश्मन की प्रशंसा करने का उसका साहस कैसे हुआ? क्रोध से भरे दसकंठ ने बिभेक को लंका से निर्वासित कर दिया और उसकी पत्नी त्रिजटा को सीता की सेवा में भेज दिया।

अपने देश और परिवार से निकाल दिये जाने पर बिभेक वानर सेना में पहुँचे और राम से मित्रता कर ली। सुग्रीव की वानर सेना को देखकर उन्हें लगा कि उनकी सेना दसकंठ की सेना के सामने कुछ भी नहीं हैं। उन्होंने अपनी शंकाएं सुग्रीव के सामने व्यक्त कीं जिसने तुरंत वानरों को अपनी–अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने का आदेश दिया।

तब वानरों की शक्ति का महाप्रदर्शन शुरु हुआ जिससे महान शूरवीरों के दिल भी थम गए। कुछ ने पर्वतों को जोर से टक्कर मारी, उन्हें जड़ से उखाड़ दिया और अपनी हथेलियों पर थाम लिया। कुछ ने शीघ्रता से सूर्य को ढक दिया और संसार को अंधकार में डुबो दिया। कुछ ने समुद्र के पानी को जल्दी से खींचकर उसे पूरी तरह सुखा दिया और कुछ ने ऐसा प्रचण्ड तूफान ला दिया और ऐसी भीषण गर्जना की कि मानो संसार के अंत की घोषणा कर रहे हों। उसे देख विभीषण को संतुष्टि हुई।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों ग्रंथों में रावण द्वारा विभीषण को निष्कासित करने का कारण एक ही है–रावण को विनाश से बचाने के लिए सीता को वापस करने की

सलाह। किंतु इनकी घटनाएं भिन्न–भिन्न हैं। रा. में दसकंठ द्वारा किए गए स्वप्न जैसी कोई घटना वा. नहीं है। रा. में सुग्रीव की सेना को देखकर जिस प्रकार की शंका विभेक को होती है, वैसी किसी घटना का उल्लेख वा. में नहीं है।

●

सेतु निर्माण

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

जब विभीषण राम के मित्र बन गए, तो हनुमान और सुग्रीव ने उनसे उस अक्षोभ्य समुद्र को महाबली वानर सेनाओं के साथ पार करने का उपाय पूछा। उन्होंने बताया कि राम सगर के वंशज हैं। अतः सगर के वंशज होने के कारण समुद्र को उनकी सहायता अवश्य करनी चाहिए। विभीषण की बात पर विचार करने के बाद सुग्रीव और लक्ष्मण ने राम से कहा कि वे समुद्र से उनकी सहायता करने के लिए प्रार्थना करें। इन दोनों के ऐसा कहने पर राम समुद्र के तट पर कुश बिछाकर समुद्र से प्रार्थना करने लगे।

महासागर के समक्ष हाथ जोड़ पूर्वाभिमुख हो प्रार्थना करते–करते जब राम को तीन दिन बीत गए और समुद्र ने अपने आधिदैविक रूप का दर्शन नही कराया, तो वे कुपित हो लक्ष्मण से बोले, 'आज महान युद्ध ठानकर शंखों और सीपियों के समुदाय तथा मत्स्यों और मगरों सहित समुद्र को मैं अभी सुखाए देता हूँ।' यह कहकर उन्होंने लक्ष्मण से उनके धनुष–बाण लाने का आदेश दिया। उन्होंने अपनी प्रत्यंचा चढ़ाकर पृथ्वी को कंपित करते हुए बाण छोड़े जो समुद्र के जल में घुस गए। जब वे पुनः बाण खींचने लगे, तब लक्ष्मण ने शीघ्रता से उन्हें ऐसा करने से रोका। एक बार फिर राम ने समुद्र से कठोर शब्दों में उसे सुखा डालने के लिए कहा। तब समुद्र के बीच से सागर स्वयं मूर्तिमान हुआ और हाथ जोड़कर अपने सनातन स्वभाव के बारे में बताते हुए कहा, 'मैं अबाध और अथाह हूँ–कोई मेरे पार नहीं जा सकता। यदि मेरी थाह मिल जाए तो

यह विकार–मेरे स्वभाव का व्यतिक्रम ही होगा। इसलिए मैं आपको पार होने का उपाय बताता हूँ।' इसप्रकार सागर ने स्वयं प्रकट हो पुल निर्माण के बारे में बताते हुए कहा, 'आपकी सेना का नल नामक वानर मेरे ऊपर पुल निर्माण करे। इससे आपकी सारी सेना पार उतर जाएगी।' तत्पश्चात् नल तथा अन्य वानरों की सहायता से समुद्र पर पुल निर्माण हुआ। अंगद और हनुमान की पीठ पर सवार होकर राम और लक्ष्मण आगे–आगे चले और देखते ही देखते सारी वानर सेना समुद्र पार कर गई।

रामकीर्ति के अनुसार

राम की सेना में इस बात पर सहमति बन चुकी थी कि समुद्र पर सेतु का निर्माण किया जाना चाहिए। तुरंत वानर निलाबद और हनुमान के चारों तरफ एकत्रित हो गए और असीमित को सीमित करने का महान कार्य शुरू हो गया। लेकिन इस समय निलाबद हनुमान से उसके चाचा जम्बू के प्रति किए गए अन्याय का बदला लेना चाहता था। उसने बहुत सारी चट्टानें एकत्रित कीं और उन्हें वह नीचे हनुमान के पास पकड़ने के लिए फेंकने लगा। चूंकि निलाबद हनुमान से किसी तरह झगड़ा करना चाहता था, इसलिए उसने चट्टानों को बहुत तेजी से फेंकना शुरु कर दिया ताकि वे उसे पकड़ न पाएं। किंतु हनुमान शांत रहे, उस पल का इंतजार करते हुए जब वे उसे एक अच्छा सबक सिखा सकें।

कुछ समय बाद उन्होंने अपने कार्य आपस में बदल लिए। अब हनुमान ने अपने शरीर के हर एक बाल से एक विशाल चट्टान बाँधी और उन्हें फुर्ती से पकड़ने के लिए निलाबद को पुकारा। किंतु यह उसकी सामर्थ्य से बाहर था। परिणामस्वरूप कहासुनी के बाद वे आपस में बुरी तरह से भिड़ गए। शोरगुल राम के पास पहुँचा। कितना उत्तेजक नजारा था देखने में यह, दो सेनानायकों का आपस में ही लड़ना और सेना के सामने एक गलत उदाहरण प्रस्तुत करना! उन्होंने दोनों को ही दण्डित किया। निलाबद को सुग्रीव का प्रतिशासक बना कर और सेना के लिए खाद्यसामग्री की पूर्ति करने का दायित्व सौंप कर खिडकिन वापस जाने का आदेश दिया, जबकि हनुमान को सात दिन के अंदर सेतु का काम समाप्त करने की आज्ञा दी।

हनुमान द्वारा चट्टानों के समुद्र में फेंके जाने से जबरदस्त हलचल और शोरगुल होने लगा। यह शोर दसकंठ के चिंताग्रस्त कानों तक पहुँचा। उसने निर्माण कार्य को बाधित करने के लिए अपनी मत्स्य कन्या सुवर्नमच्छा को अपनी सेना के साथ जाने और सेतु के निर्माण में प्रयुक्त चट्टानों को वहाँ से हटाने का आदेश दिया।

जागरुक हनुमान ने अपने द्वारा सावधानीपूर्वक रखी चट्टानों को सागर की अथाह गहराई में लुप्त होते हुए देखा। तब दृढ़ निश्चय के साथ वायुपुत्र ने नीचे डुबकी लगाई, सुवर्नमच्छा को काबू में किया, उसको और उसकी सेना को चट्टानों को अपनी जगह पुनः रखने के लिए विवश किया। 'नारी भक्त' हनुमान ने इस अवसर का लाभ उठाकर उस सुंदर मत्स्य कन्या के समक्ष प्रणय निवेदन किया जिसने अपनी तरफ से उनके प्रेम का तुरंत उत्तर दिया। अतः जब वह अपने पिता के पास अपनी असफलता की सूचना देने वापस लौटी, उससे पहले ही वह हनुमान के मच्छानु[49] नामक मत्स्य वानर बच्चे की माँ बन चुकी थी, जिसको उसने अपने गर्भाशय से उल्टी कर बाहर निकाला और देवताओं से उसकी सुरक्षा की प्रार्थना कर दसकंठ के भय से उसे समुद्र के किनारे छोड़ दिया।

अब मजबूत और विशाल सेतु तैयार था जो अपनी मजबूत चट्टानों से नीले पानी को बांधे हुए था। इस शुभ अवसर पर इंद्र ने मातलि द्वारा संचालित अपना रथ राम को भेंट किया। तत्पश्चात् सारी सेना ने समुद्र पार किया और लंका के किनारे पहुँच गई।

उल्लेखनीय बिंदु

यद्यपि दोनों ग्रंथों में सेतु निर्माण का प्रसंग मिलता है तथापि उसके निर्माण के संदर्भ अलग–अलग हैं। सगर के वंशज राम द्वारा समुद्र से की गई प्रार्थना और प्रार्थना स्वीकार न करने पर राम द्वारा समुद्र पर

---

49 वाल्मीकि रामायण में न तो सुवर्णमच्छा का और न ही मच्छानु का वर्णन है।
रामकीर्ति, पृ 75

आक्रमण का वर्णन रा. में नहीं है, जबकि हनुमान और निलाबद की लड़ाई और राम द्वारा उन दोनों को दंडित करने की बात, सुवर्णमच्छा के हनुमान द्वारा फेंकी गई चट्टानों को गायब करने, सुवर्णमच्छा के समक्ष हनुमान द्वारा अपने प्रेम को प्रस्तुत करने, सुवर्णमच्छा द्वारा मच्छानु का जन्म जैसे प्रसंग वा. में नहीं हैं।

●

लंका की किलाबंदी

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

अब नल द्वारा बनाए पुल से वानरों की सेना समुद्र के उस पार जा चुकी थी। फल, मूल और जल की अधिकता देखकर सुग्रीव ने सागर के तट पर ही सेना का पड़ाव डाल लिया। तभी राम ने अनुभव किया कि यहाँ कहीं तो धूल भरी प्रचंड वायु चल रही है, तो कहीं मेघों की घटा घिर आई है, कौए, बाज तथा अधम गीध चारों ओर दिखाई पड़ रहे हैं, कहीं सियारिनें अशुभसूचक भयंकर वाणी बोल रही हैं अर्थात् राम को चारों ओर अपशकुन ही अपशकुन दिखाई पड़ रहे थे। राम ने उन अपशकुनों को अपने पक्ष में मानते हुए लक्ष्मण के साथ विचार कर कहा कि उन्हें आज ही लंका पर धावा बोल देना चाहिए। लेकिन धावा करने से पूर्व उन्होंने एक रणनीति तैयार की और इसके अनुसार उन्होंने सेना का विभाजन किया। राम ने कहा, 'कपिश्रेष्ठ नील पूर्व द्वार पर जाकर प्रहस्त का सामना करें। वालिकुमार अंगद दक्षिण द्वार पर स्थित हो महापार्श्व तथा महोदर के कार्य में बाधा डालें। बहुत से वानरों के साथ हनुमान लंका के पश्चिमी फाटक से प्रवेश करें, मैं स्वयं लक्ष्मण के साथ नगर के उत्तर फाटक पर आक्रमण करके उसके भीतर प्रवेश करूँगा तथा वानरराज सुग्रीव, जांबवान और विभीषण नगर के बीच के मोर्चे पर आक्रमण करें।' इसप्रकार अपने विजय रूपी प्रयोजन की सिद्धि के लिए विभीषण से ऐसा कहकर वानरयूथों से युक्त सुग्रीव सहित राम सुवेल पर्वत के सबसे ऊँचे शिखर पर जा चढ़े।

वहाँ पहुँचने पर जब सुग्रीव ने रावण को गोपुर की छत पर देखा तो वे अकस्मात् शिखर से गोपुर की छत पर कूद गए। रावण और सुग्रीव के बीच द्वंद्व युद्ध होने लगा। जब सुग्रीव को ऐसा लगा कि अब रावण मायावी शक्ति का प्रयोग करने वाला है, तब वे आकाशमार्ग से राम के पास आ गए। राम को सुग्रीव द्वारा किया यह कृत्य अनुचित लगा और उन्होंने उन्हें इस प्रकार का दुस्साहस दोबारा न करने के लिए समझाया। उसके बाद वे सब नीचे उतर आए। राम ने ज्योतिषशास्त्र के अनुसार बताए गए शुभ मुहुर्त में वानर सेना को युद्ध के लिए लंकापुरी में कूच करने की आज्ञा दी।

राम तो लक्ष्मण के साथ उत्तर द्वार पर ही रुक गए जहाँ रावण खड़ा था और सभी वानरयूथपति पूर्वनिश्चित स्थानों पर जाकर खड़े हो गए। लेकिन इस सबके बावजूद, राम ने एक बार फिर मंत्रियों से विचार करने के बाद अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा।

अंगद तो पल भर में ही रावण के पास पहुँच कर खड़े हो गए। उन्होंने उसे सबसे पहले अपना परिचय दिया और फिर राम का संदेश सुनाया। उनका संदेश सुनकर क्रुद्ध हुए रावण ने उस दूत को पकड़ कर मार डालने की आज्ञा दी। आत्मबल से संपन्न अंगद ने उस समय राक्षसों को अपना बल दिखाने के लिए स्वयं ही कुछ राक्षसों से अपने को पकड़वा लिया। फिर वे उन राक्षसों को झटका देकर उछले और महल की छत पर चढ़ गए। फिर पैर पटकते हुए घूमने लगे। महल की छत तोड़ कर और अपना नाम सुनाकर जोर से सिंहनाद करते हुए आकाश मार्ग से उड़ कर अंगद राम के पास आ गए। इसी बीच सुषेण ने वानरों के साथ मिलकर सभी दरवाजों पर काबू पा लिया और लंका चारों ओर से घेर ली गई।

रामकीर्ति के अनुसार

सेना ने समुद्र पार करने के बाद एक वन में शिविर लगाने पर विचार किया जहाँ घने वृक्ष और ताजे पानी के स्त्रोत थे। किंतु यह एक मायावी वन था, जो दसकंठ द्वारा भेजे गए एक विचित्र प्रकार के राक्षस भानुराज के सिर पर टिका हुआ था। दसकंठ ने उसे आज्ञा दी थी कि

जैसे ही सेना शिविर लगा ले, वह भूखंड को अपने सिर से लुढ़का दे ताकि वे सब जमीन द्वारा निगल लिए जाएं। हनुमान को इस बात का एहसास हो गया। हनुमान जमीन के अंदर गए और उसका अंत कर दिया। सेना की सुरक्षा को पूरी तरह से सुनिश्चित कर लंका को घेर लिया गया।

तब राम ने अंगद को दसकंठ के पास इस चेतावनी के साथ भेजा कि या तो वह तुरंत सीता को उन्हें सौंप दे अथवा युद्ध करे। उसका सामना करने वाले अनेक राक्षसों को मारता हुआ अंगद दसकंठ के दरबार में पहुँचा। लेकिन दसकंठ के दरबार में राम के दूत के बैठने के लिए कोई स्थान नहीं था। अविचलित अंगद ने अपनी पूंछ लम्बी की और तब तक कुंडली बनाता रहा जब तक वह दसकंठ के सिंहासन जितनी ऊँची न हो गई। इस विचित्र स्थान पर बैठने के बाद उसने तीखे शब्दों में अपना संदेश सुनाया। इससे दसकंठ का क्रोध इस हद तक भड़क गया कि उसने अपने चार सेनानायकों को उसे तुरंत मारने का आदेश दे दिया। लेकिन अंगद उनके लिए अकेला काफी था। उसने अकेले ही उन सबको मार दिया और दूत कार्य के परिणाम को सूचित करने के लिए वापस शिविर में लौट आया।

क्रुद्ध दसकंठ ने अब स्वयं सेना को भ्रमित कर उसके सर्वनाश का निश्चय किया। उसके पास ब्रह्मा का दिया एक चमत्कारिक छाता था। जब कभी यह छाता खोला गया, इसने सूर्य को आच्छादित कर लिया और सारे संसार को अंधकार में डुबो दिया। इस छाते को खोलकर उससे लंका के चारों ओर अंधकार का एक आवरण बना दिया तथा उसे राम और उनकी वानर सेना की आँखों से ओझल कर दिया। किंतु सेना के प्रमुख सुग्रीव को सरलता से बहकाया नहीं जा सकता था। उसने यह देख आकाश में छलांग लगाई। जादुई छाते के टुकड़े–टुकड़े किए और राक्षसों को आवरणरहित, स्पष्ट और प्रकाशमान कर दिया। अपने शिविर में लौटने से पहले उसने अपने पैरों से दसकंठ के सिर के मुकुट को झपट लिया और इसे अहंकारी और शक्तिशाली लंका के राजा से प्रथम मुकाबले के स्मृति–चिन्ह के रूप में राम को अर्पित कर दिया।

हतोत्साहित, किंतु विचारमग्न दसकंठ अपने महल वापस लौट आया। वह अब समझ चुका था कि लंका की लगभग अभेद्य घेराबंदी हो चुकी है।

उल्लेखनीय बिंदु

भानुराज का प्रसंग वा. में नहीं है। अंगद को दूत बनाकर लंका में भेजने का प्रसंग दोनों ही ग्रंथों में है, किंतु अलग–अलग तरीके से वर्णित हैं। दसकंठ के छाते वाला प्रसंग और अंगद द्वारा पूँछ की कुंडली बनाकर बैठने की घटना भी वा. में नहीं मिलती।

●

कुंभकर्ण वध

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

वानरों के साथ राम द्वारा लंकापुरी को चारों ओर से घेर लेने के बाद उन्होंने तत्काल शत्रुभूत राक्षसों का वध करने की आज्ञा दी। राम की आज्ञा मिलते ही वे सभी वानर सिंहनाद करते हुए वृक्षों, पर्वत–शिखरों और मुक्कों से असंख्य परकोटों और दरवाजों को तोड़ने लगे। इसी समय क्रुद्ध रावण ने अपनी सेना को भी बाहर निकलने की आज्ञा दी। 'वानरराज सुग्रीव की जय हो' तथा 'महाराज रावण की जय हो' के घोष के साथ दोनों ओर के महाबलियों के बीच भयंकर युद्ध होने लगा। युद्ध भूमि में जब प्रहस्त मारा गया, इससे रावण बहुत दुखी और क्रुद्ध हुआ। इंद्रजित अतिकाय, महोदर, पिशाच, त्रिशिरा, कुंभ, निकुंभ, नरांतक आदि के साथ रावण स्वयं ही युद्ध करने के लिए आ गया। रावण को देखते ही राम का चिर संचित क्रोध उग्र रूप धारण कर सामने आ गया और वे उत्तम बाण निकाल कर उसके साथ युद्ध करने लगे। एक बार जब रावण धनुषहीन हो गया तो स्वयं राम ने उसे लंका वापस जाकर विश्राम करने के लिए कहा। राम के बाणों और भय से पीड़ित हो रावण जब लंका पहुँचा, तब उसका अभिमान चूर–चूर हो गया। अब उसने राक्षसों को कुंभकरण को जगाने का आदेश दिया।

रक्त–मांस का भोजन करने वाले वे राक्षस गंध, माल्य और खाने–पीने की बहुत–सी सामग्री लेकर एक गुफा में सोते हुए कुंभकर्ण को जगाने के लिए पहुँचे। किसी प्रकार कुंभकर्ण को जगाया गया। उसके द्वारा जगाने का कारण पूछने पर रावण के सचिव यूपाक्ष ने सारी बातें बताईं। तब वह रावण से मिलने उसके महल में गया। जब उसने रावण की दुखित कर देने वाली बातों को सुना तो वह ठहाका लगा कर हँस पड़ा। उसने रावण से कहा, 'जब इस विषय पर कुछ समय पहले विभीषण के साथ विचार किया था, तब इसी भयंकर परिणाम की आशंका व्यक्त की गई थी और वही तुम्हें इस समय प्राप्त हुआ है। तुम्हें अपने दुष्कर्म का फल मिलना अवश्यंभावी था।' उसकी ऐसी बातें सुनकर रावण ने अपनी भौंहें टेढ़ी कर लीं और कुपित होकर उससे उपदेश देने के स्थान पर केवल युद्ध करने का आदेश दिया जिसे उसने मान लिया। कुंभकर्ण युद्ध करने चल पड़ा। उसके साथ बहुत से बलवान, भीषण गर्जना करने वाले भयानक रूपधारी राक्षस भी गए। कुंभकर्ण के रणभूमि की ओर कदम बढ़ाते ही चारों ओर घोर अपशकुन होने लगे।

कुंभकर्ण को आता देखकर सभी वानर भाग खड़े हुए, किंतु सुग्रीव के समझाने पर उन्होंने धैर्य धारण किया। अब वानर मरने का निश्चय कर भयंकर युद्ध करने लगे। नील, अंगद, हनुमान और सुग्रीव के साथ कुंभकर्ण का भीषण युद्ध हुआ। सुग्रीव के साथ युद्ध करते हुए उसने मलय पर्वत का शिखर उठाकर उन पर दे मारा। उसके प्रहार से मूर्च्छित हुए सुग्रीव को काँख में उठा कुंभकर्ण लंका की ओर चल दिया। बगल में दबे सुग्रीव ने होश में आने पर कुंभकर्ण के नाक और कान काट लिए जिससे क्रुद्ध हुए कुंभकर्ण ने उन्हें जमीन पर पटक दिया और जमीन पर रगड़ने लगा। तभी सुग्रीव गेंद की भाँति वेगपूर्वक आकाश में उछले और राम से जा मिले।

सुग्रीव के निकल भागने पर कुंभकर्ण फिर युद्ध के लिए दौड़ा और वानर सेना को अपना आहार बनाने लगा। वह बहुत से वानरों को अपनी भुजाओं में भर लेता और खाता हुआ युद्धभूमि में दौड़ता फिरता। तब लक्ष्मण कुपित होकर उससे युद्ध करने लगे। लक्ष्मण के युद्ध की

प्रशंसा करते हुए कुंभकर्ण ने कहा, 'तुमने अपने वीर्य, बल और उत्साह से रणभूमि में मुझे संतोष प्रदान किया है; मैं केवल राम को मारना चाहता हूँ, जिनके मारे जाने पर सारी शत्रु सेना स्वतः ही मर जाएगी।' ऐसा कहकर उसने लक्ष्मण को लाँघकर राम पर धावा बोल दिया। उसे आते देख राम ने भी रौद्रास्त्र का प्रयोग कर अनेक तीखे बाण छोड़े जिससे घायल हुए कुंभकर्ण के हाथ से गदा छूटकर धरती पर गिर पड़ी। अब उसने मुक्कों से ही वार करके सेना का संहार करना आरंभ कर दिया। अपनी सेना को विनष्ट होते देख राम ने वायव्य नामक अस्त्र से उसकी दाहिनी बाँह, ऐन्द्रास्त्र से उसकी दूसरी बाँह, दो तीखे अर्द्धचंद्राकार बाण लेकर उसके दोनों पैरों को तथा ब्रह्मदंड और विनाशकारी काल के समान भयंकर एवं तीखे बाण से उसके अलंकृत मस्तक को धड़ से अलग कर दिया। राम के बाणों से कटा उसका पर्वताकार मस्तक लंका में जा गिरा और उसका धड़ समुद्र के बड़े–बड़े ग्राहों, मत्स्यों को पीसता हुआ धरती के भीतर समा गया। कुंभकर्ण के वध से रावण और उसके मनस्वी बंधुओं को बहुत दुख हुआ।

रामकीर्ति के अनुसार

कुंभकर्ण दसकंठ का छोटा भाई था जिसकी वीरता का कोई मुकाबला न था। जब बड़े–बड़े योद्धा रणभूमि में मारे गए, तो दसकंठ भय से काँप गया। अतः उसने अपने अत्यंत बलवान भाई कुंभकर्ण से राम का सामना करने के लिए कहा। लेकिन वह एक धर्मपरायण राक्षस था। उसको यह उचित नहीं लगा कि सीता को अपने पास रखा जाए और राम से युद्ध किया जाए। उसे वह सब कहने में संकोच नहीं हुआ जो उसने उचित समझा। लेकिन इससे राक्षसराज आग बबूला हो गया। उसने अपने भाई की अनुचित व्यंग्यबाणों से घोर निंदा की। क्या वह राम के भय से ऐसे सहम रहा है जैसे कोई हिरण शेर की गंध से सहम उठता है? क्या वह अपने शत्रु से ऐसे भयभीत है जैसे कोई कौआ धनुष को देखते ही फड़फड़ाता है? अभी तो मुश्किल से उसने शत्रु का आभास ही किया है कि वह कायर की भांति सहमने लगा। इसप्रकार दसकंठ ने अन्यायपूर्वक उस कुंभकर्ण की घोर निंदा की जो केवल न्याय के आगे झुकता था।

प्राणघातक और अन्यायपूर्ण तरीके से अपमानित होने पर उस सदाचारी राक्षस ने अपना दुर्जेय भाला लिया और अपने भाई का सम्मान पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए चल पड़ा।

बिभेक ने दूर से अपने भाई को बड़ी ही शूरवीरता से सेना का नेतृत्व करते हुए देखा। बिभेक दोनों हाथ जोड़ते हुए उसके पास पहुँचे, इस विश्वास के साथ कि सच्चाई के प्रति उनके प्रेम के सामने दसकंठ के प्रति उसका प्रेम हार जाएगा। किंतु सदाचारी होते हुए भी वह अपने राजा और देश के विरुद्ध कभी नहीं जा सकता था। उसने बिभेक को बुरी तरह से डाँटा जिसने अपने परिवार से अलग होने का केवल यह एक बहाना बताया कि वह राम की सेवा करने में नारायण के अवतार की सेवा कर रहा है। अपने हाथों से ताली बजाकर और उपहासपूर्ण तरीके से हँसते हुए उसने उसके बहाने को बेतुका बताया। क्या राम वास्तव में नारायण के अवतार हैं? वह उस पर तभी विश्वास करेगा जब राम उसकी एक पहेली को हल कर देंगे जो वह उनसे पूछेगा। 'कौन सा तपस्वी मूर्ख है और कौन सा सीधे दंत का हाथी है? कौन सी औरत धूर्त है और कौन सा पुरुष दुष्ट है?'

राम और उनके वानरों से पहेली हल नहीं हो पाई। कोई और उपाय न पाकर कुशल दूत अंगद को राक्षस के पास उस पहेली के अर्थ को बहला–फुसला कर स्पष्ट करवाने के लिए भेजा गया। लेकिन कुंभकर्ण उससे बहुत अधिक बुद्धिमान था। राम की असफलता का उपहास उड़ाते हुए राक्षस ने हल बता दिया। मूर्ख तपस्वी राम स्वयं हैं, जो इतने मूर्ख थे कि उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी को वन में अकेला छोड़ दिया था। सीधे दंत वाला हाथी लंका का राजा है जो अपनी पत्नी के साथ संतुष्ट नहीं रह पाया, दूसरे की पत्नी के पीछे पड़ गया। लज्जाजनक दिखावटी प्रेम करने वाली सम्मानखा वह धूर्त स्त्री है और अपने राजा और देश से विश्वासघात करने वाला बिभेक वह दुष्ट व्यक्ति है।

इसके बाद सुग्रीव ने अपनी पूरी शक्ति से उसका सामना किया। राक्षस ने उसकी शक्ति को खत्म करने के लिए कुछ मायावी चालें चलने की सोची। वह सुग्रीव की वीरता को कम करके आंकने लगा। क्या वह इतना शक्तिशाली है जितना उसने सोचा है? क्या वह हिमवान पर्वत तक

उड़ कर जा सकता है, 'रंग' पेड़ को उखाड़ कर ला सकता है और उसके साथ उससे युद्ध कर सकता है? सुग्रीव जो शारीरिक बल में बुद्धि बल से श्रेष्ठ था, सीधा पर्वत की ओर उड़ गया और पलक झपकते ही एक पेड़ को जड़ से उखाड़ कर वापस लौटा। उसके बाद उन दोनों वीरों में युद्ध हुआ। लेकिन पहले से ही थका सुग्रीव उसका मुकाबला नहीं कर सका। बहुत जल्दी कुंभकर्ण ने उसे अपनी बगल में दबा लिया और लंका की ओर चल दिया। हनुमान वानरराज की इस दयनीय दशा को देख उसे बचाने के लिए दौड़े। हनुमान को रोक पाने में असमर्थ कुंभकर्ण को सुग्रीव को आजाद करना पड़ा और खून से लथपथ कटे हुए नाक और कानों के साथ उसे लंका वापस लौटना पड़ा।

विजय के द्वार पर हारने के बाद कुंभकर्ण ने अपने खोए सम्मान को पुनः प्राप्त करने का निश्चय किया। इस समय उसके पास मोक्खशक्ति नामक एक विशेष भाला था, जो अपने शिकार को निश्चित तौर पर मौत की नींद सुला देता था। किंतु इस अस्त्र का प्रयोग करने से पहले इसकी शक्ति को जाग्रत करने के लिए देवताओं का आह्वान करना पड़ता था। इसलिए एक शुभ दिन वह नदी के किनारे गया और आवश्यक अनुष्ठान करने लगा। बहुत जल्दी जलते हुए लोबान और खिले हुए फूलों की सुगंध पूरे वातावरण में फैल गई। भाले को सामने रखकर, गहरे ध्यान में डूबा हुआ कुंभकर्ण देवताओं का आह्वान कर रहा था।

अचानक नदी की ओर से बहने वाली मंद हवा के साथ एक जी मितलाने वाली दुर्गंध ने उसका ध्यान भंग कर दिया। उसने अपनी आँखें खोलीं। उसकी दृष्टि के सामने एक कुत्ते का सड़ा हुआ शरीर था जो उसके यज्ञमंडप के सामने तैर रहा था। एक भूखा कौआ उस शव को खुशी से खा रहा था और उसके प्रत्येक चंचु प्रहार से हर बार एक नई दुर्गंध कुंभकर्ण के सिकुड़े नासिका छिद्रों में भर जाती थी।

लेकिन यह एक छलावापूर्ण दृश्य था जिसने अनुष्ठान को भंग कर दिया। बिभेक ने अपने क्रिस्टल से वानर सेना का अंत करने के लिए अपने भाई द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यविधि को देख लिया था। कहीं बहुत देर न हो जाए, इससे पहले इसे बाधित किया जाना आवश्यक था।

तदनुसार हनुमान ने एक कुत्ते के शव का रूप धारण किया और अंगद ने एक कौए का, दोनों धारा के प्रवाह के साथ बहते हुए कुंभकर्ण के यज्ञमंडप के सामने पहुँच गए और उसके अनुष्ठान में विघ्न डाल दिया। इसप्रकार बाधित किए जाने से भाले की विनाशकारी शक्ति निष्क्रिय ही रही और उसके पास सरल और निश्चित विजय का कोई अवसर न रहा।

परंतु कुंभकर्ण अभी भी निरुत्साहित नहीं था। अगली सुबह, उस विशाल राक्षस ने अपनी मोक्खशक्ति उठाई, यद्यपि वह प्रसुप्त थी और सेना पर टूट पड़ा। लक्षण ने उसका सामना किया। तुरंत ही वह मोक्खशक्ति समुद्रजा की खुशी का अंत करने के लिए हवा में उडी। लक्षण मूर्छित हो गिर गए और उनके साथ ही राम के किले और वानरों की आशा के टुकड़े–टुकड़े हो गए।

किंतु ढहे हुए किले के पुनर्निमाण और टूटी हुई आशाओं को पुनर्जीवित करने लिए अभी बिभेक वहाँ थे। उनके निर्देश पर हनुमान तुरंत सरबाय पर्वत की ओर चल पड़े जहाँ वे जड़ी–बूटियाँ थीं जो लक्षण को पुनर्जीवित कर सकती थीं। लेकिन ये सूर्योदय से पहले ले कर आनी थीं अन्यथा सूर्य की पहली किरण के साथ ही लक्षण के पुनर्जीवन की आशा समाप्त हो जाती।

हवा की तेज गति के समान हनुमान आकाश मार्ग से उड़ कर चले गए। आकाश के बीचोंबीच उनकी श्वेत आकृति अचानक गहरे लाल रंग में डूब गई। चौंकन्ने हो उन्होंने सूर्यदेव आदित्य के स्वर्णिम रथ को देखा जिन्होंने नये दिन के आगमन की घोषणा करने के लिए तभी प्रवेश किया था। लेकिन वह एक ऐसा दिन होता जो आशा के स्थान पर निराशा की सूचना देता। इसलिए वायुपुत्र उस ओर तुरंत तेजी से दौड़े जहाँ वह स्वर्णिम रथ दिखाई दे रहा था और उसे रोकने की कोशिश की, किंतु वे उसकी तीव्र किरणों से झुलस गए। अगले ही क्षण आदित्य को पश्चाताप हुआ जब उसे पता चला कि उनकी किरणों ने, राक्षसों के विनाश में राम का साथ देने वाले उनके प्रिय सहायक को जला दिया है। अतः आदित्य ने वानर के जले हुए शरीर का कायाकल्प कर दिया और उसे चेतना में ले आया। हनुमान ने उससे उस रास्ते पर न चलने की

प्रार्थना की जिस रास्ते पर वह चल रहा था। लेकिन मनुष्य के दुख और संताप प्रकृति की दिशा को नहीं बदल सकते। फिर भी, आदित्य ने यहाँ तक अपनी सहमति दी कि वह बादलों के आवरण के पीछे अपनी यात्रा करेगा ताकि दिन रात्रि के समान दिखाई दे।

संतुष्ट होने पर, हनुमान ने अपनी उड़ान दोबारा शुरु की और शीघ्र ही सरबाय पर्वत की चोटी पर चढ़ गए। फिर उन्होंने जड़ी–बूटी के लिए पुकारा, तुरंत नीचे से आवाज आई, 'मैं यहाँ हूँ।' हनुमान नीचे चले गए और दोबारा पुकारा लेकिन इस बार चोटी से आवाज आई 'मैं यहाँ हूँ', हनुमान ऊपर गए और फिर नीचे आए। इसप्रकार जड़ी–बूटियों की भ्रमित करने वाली आवाज का अनुसरण करते हुए हनुमान ऊपर और नीचे, नीचे और ऊपर, दौड़ते रहे।

भ्रमित होने पर उन्होंने अपने शरीर को पर्वत जितना बड़ा किया और इसे अपनी पूँछ से चारों ओर से लपेट लिया। तब, जहाँ कहीं से और जब कभी उन्होंने जड़ी–बूटी की जबाबी आवाज सुनी, तभी एकदम उसे जड़ से उखाड़ लिया। कुछ ही समय में उन्होंने अपनी संतुष्टि लायक जड़ी–बूटियाँ एकत्रित कर लीं। फिर भी एक चीज बाकी बची थी–अयुध्या में बरत की निगरानी में रखा हुआ पाँच नदियों का जल। लेकिन असंभाव्यता हनुमान को कभी पराजित नहीं कर पाई। वे तुरंत अयुध्या की ओर उड़ चले और बड़ी जल्दी वांछित जल लेकर वापस लौट आए। तब दवा भलीभाँति तैयार की गई और दे दी गई जिससे लक्षण का समाप्त होता हुआ जीवन लौट आया और इसने राम और उसकी सेना में नई खुशी और आशा का संचार कर दिया।

वानरों की खुशी का शोर कुंभकर्ण तक पहुँच गया जिसने उसे और अधिक कृतसंकल्प कर दिया। अब उसने पूरी सेना को बिना किसी को छोड़े मारने का दृढ़ निश्चय किया ताकि बाद में कोई किसी मृत को जीवित करने के लिए न बच सके। इसप्रकार कृतसंकल्प हो उसने अपने शरीर को ब्रह्मा के शरीर जितना बड़ा कर लिया और पर्वत से शत्रु के शिविर की ओर बहने वाली नदी पर लेटकर उसके मार्ग को अवरुद्ध कर दिया।

सात दिन तक वह जीवित बाँध की तरह वहाँ लेटा रहा। नदी का पानी पूरी तरह से अवरुद्ध हो गया और वानर शिविर में प्यास के कारण मौत का आधिपत्य हो गया। बिभेक जानता था कि यह सब कुंभकर्ण के कारण है, लेकिन उसे यह मालुम नहीं था कि वह राक्षस कहाँ पर लेटा हुआ है? उस स्थान का पता केवल मालिनों को ही था। इसलिए हनुमान ने एक बाज का रूप धारण किया, उड़ते हुए नीचे बगीचे में चले गए, उन मालिनों में से एक को मार दिया और उसका रूप धारण कर लिया। अन्य मालिनों के बीच में मिलकर वे आसानी से वहाँ पहुँच गए जहाँ वह राक्षस पानी के प्रवाह को अवरुद्ध किए हुए लेटा था। जैसे ही वे वहाँ पहुँचे, वे अपने स्वरूप में वापस आ गए और उनके एक भारी प्रहार ने कुंभकर्ण को अपने पैरों पर खड़ा कर दिया। तुरंत पानी अपनी दिशा में बहने लगा और मंडराती हुई मौत को अपने साथ बहा ले गया। हनुमान का मुकाबला करने में असमर्थ राक्षस बच कर भाग खड़ा हुआ।

अगले दिन उसने फिर वानर सेना पर अपने विशाल भाले से आक्रमण किया। राम ने उसका सामना किया। नारायण के अवतार राम का ब्रह्मास्त्र पराक्रमी राक्षस का खून पीने के लिए निकल पड़ा और प्रहार कर उसे धराशायी कर दिया। इसप्रकार वह अदम्य कुंभकर्ण फिर कभी न उठने के लिए धरती पर गिर पड़ा और आँख बंद होने से पहले उसके सामने चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और त्रिशूल लिए और पश्चातापी राक्षस के लिए स्वर्ग का द्वार खोलते हुए राम नारायण के रूप में प्रकट हुए।

उल्लेखनीय बिंदु

यद्यपि दोनों रामायणों के अनुसार, कुंभकर्ण का वध राम के द्वारा ही किया गया है तथापि कुंभकर्ण के आक्रमण का तरीका दोनों में अलग–अलग वर्णित है। वा. में कुंभकर्ण जागने के बाद जब युद्ध क्षेत्र में गया, वह तब तक वहाँ बना रहा, जब तक उसकी मृत्यु नहीं हो गई। किंतु रामकीर्ति में तो वह कई बार युद्धक्षेत्र को छोड़ कर चला गया। रामकीर्ति में वर्णित कुंभकर्ण द्वारा पूछी गई पहेली, कुंभकर्ण द्वारा अनुष्ठान करना, लक्षण को मूर्च्छित करना और नदी पर बाँध की तरह लेट जाने

वाले प्रसंग वा. में नहीं हैं। कुंभकर्ण द्वारा सुग्रीव को काँख में दबाने की घटना दोनों में है, परंतु सुग्रीव के आजाद होने का वर्णन भिन्न है।

●

इंद्रजित वध

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

'महाबली कुंभकर्ण मारा गया', यह सुनकर रावण शोक से संतप्त और मूर्च्छित हो गया। देवांतक, नरांतक, त्रिशिरा आदि भी फूट–फूट कर रोने लगे। थोड़ी देर बाद त्रिशिरा ने रावण को सांत्वना देते हुए स्वयं युद्ध में जाने की बात कही जिसे सुन रावण को ऐसा लगा कि मानो उसे नया जन्म मिल गया हो। त्रिशिरा की बात को सुनकर देवांतक, नरांतक और तेजस्वी अतिकाय भी समर भूमि को जाने के लिए उत्साहित हो गए। वे सभी महाकाय निशाचर गर्जते, सिंहनाद करते और बाण हाथों में लेकर युद्ध क्षेत्र में जा पहुँचे। राक्षसों और वानरों में भयंकर युद्ध हुआ। नरांतक और त्रिशिरा का वध हनुमान द्वारा, महोदर का नील द्वारा, महापार्श्व का ऋषभ द्वारा और अतिकाय का वध लक्ष्मण द्वारा कर दिया गया। उन सभी की मृत्यु का समाचार पाकर रावण बड़ा ही हतोत्साहित हो गया। रावण को शोक के समुद्र में निमग्न एवं दीन हुआ देख इंद्रजित ने कहा, 'तात! राक्षसराज! जब तक इंद्रजित जीवित है, तब तक आप चिंता और मोह में न पड़िए। इस इंद्रशत्रु के बाण से घायल होकर कोई भी समरांगण में अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता।' ऐसा कहकर अपने पिता से आज्ञा लेकर उसने युद्धभूमि के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में उतरकर अग्नि में आहूति देकर उसने ब्रह्मास्त्र का आवाहन किया और अपने रथ, धनुष आदि सब वस्तुओं को वहाँ सिद्ध मंत्र से अभिमंत्रित करके रणभूमि में प्रवेश किया। युद्ध में वानरों को नष्ट करते हुए उसने राम–लक्ष्मण पर चमकीले बाणों की वर्षा की। जब राम और लक्ष्मण दोनों इंद्रजित के बाणों से घायल हो गए तो उसने हर्ष से गर्जना की और लंका लौट गया।

राम–लक्ष्मण तथा अनेक वानरों के निश्चेष्ट हो जाने पर वानर सेनापति किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। तब विभीषण ने उनके मूर्च्छित होने का कारण ब्रह्मास्त्र को बताया। जांबवान ने उन सब की मूर्च्छा को दूर करने के लिए हनुमान से ऋषभ पर्वत और कैलास पर्वत के बीच में उत्पन्न हुई मृत संजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्ण किरण और संधानी नाम की औषधियों को लाने के लिए कहा। जांबवान की बात सुनकर हनुमान असीम बल से भर गए और उन पर्वतशिखरों की ओर उड़ गए। अग्नि के समान प्रकाशित होने वाले पर्वत को देखकर हनुमान आश्चर्यचकित रह गए। पर्वत पर विद्यमान औषधियाँ यह जानकर कि कोई उन्हें लेने आ रहा है, तत्काल वहाँ से अदृश्य हो गईं। यह देख हनुमान ने क्रुद्ध होकर पूरा पर्वत ही उखाड़ लिया और त्रिकूट पर्वत पर लौट आए। औषधियों की सुगंध मात्र से ही वे दोनों भाई स्वस्थ हो गए, उनके शरीर से बाण निकल गए और घाव भर गए। इसीप्रकार अन्य दूसरे प्रमुख वानर वीर क्षण भर में नीरोगी होकर उठ खड़े हुए।

तदंतर सुग्रीव ने हनुमान के साथ मिलकर युद्ध की आगे की रणनीति तैयार की और लंका पर मशाल लेकर धावा बोलने की आज्ञा दी। आदेश मिलते ही वानरों ने मशाल लेकर लंकापुरी में आग लगा दी। पर्वताकार प्रासाद धू–धू कर जलने लगे। दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा। अंगद द्वारा कंप और प्रजंघ का, विभीषण द्वारा शोणिताक्ष का और हनुमान द्वारा निकुंभ का वध कर दिया गया। इस समाचार को सुनकर रावण ने खर पुत्र मकराक्ष को युद्ध के लिए भेजा जो राम के द्वारा मार दिया गया। फिर क्रुद्ध रावण ने इंद्रजित को युद्ध की आज्ञा देते हुए कहा, 'वीर! तुम महापराक्रमी राम और लक्ष्मण दोनों भाईयों को छिपकर या प्रत्यक्ष रूप से मार डालो; क्योंकि तुम बल में सर्वथा बढ़े–चढ़े हो।'। आज्ञा पाकर इंद्रजित ने हवन किया और रथ में बैठकर युद्धक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया। उसका रथ आकाश में था और वहीं से वह राम–लक्ष्मण को पैने बाणों से बींधने लगा। इंद्रजित ने माया से धूम्रजनित अंधकार की सृष्टि की जिस कारण वह किसी को दिखाई नहीं दे रहा था और उस वातावरण में वह उनके ऊपर नाराच बाणों की वृष्टि करने लगा। तब वे दोनों वीर भी उस पर तीखे बाण छोड़ने लगे। चूंकि अंतर्धान शक्ति से

उसका रथ छिपा हुआ था, इस कारण उस क्रूरकर्मा राक्षस का वध करने के लिए राम इधर–उधर दृष्टिपात करने लगे।

राम के मनोभावों को समझकर इंद्रजित एक बार तो लंकापुरी चला गया लेकिन अनेक राक्षसों के वध का समरण आते ही वह पुनः रणभूमि में आ गया। राम–लक्ष्मण को युद्ध के लिए तैयार देख उसने उस समय अपनी माया प्रकट की। उसने उससे मायामयी सीता का निर्माण कर अपने रथ पर बैठा लिया। हनुमान ने उसके रथ पर जब सीता को बैठे देखा, तो वे मुख्य–मुख्य वानरों के साथ उस रावणपुत्र की ओर दौड़े। उन वानरों को अपनी ओर आते देख इंद्रजित बहुत क्रुद्ध हुआ और वह सीता के केशों को पकड़कर उन्हें घसीटने लगा। सीता की ऐसी अवस्था देख हनुमान कुपित होकर आयुध धारण करने वाले वानर वीरों के साथ उस पर टूट पड़े। इंद्रजित ने कुपित होकर सीता को मार डालने के लिए कहा और स्वयं ही तेज धार वाली तलवार से उन पर घातक प्रहार किया जिससे वह नीचे गिर पड़ीं। तत्पश्चात इंद्रजित हर्ष के साथ जोर–जोर से सिंहनाद करने लगा।

सीता पर इंद्रजित के द्वारा किए गए प्रहार से हनुमान बहुत क्रुद्ध हो रहे थे। उन्होंने इंद्रजित पर एक शिला फेंकी जिससे उसे बड़ी पीड़ा हुई। हनुमान ने वानरों से युद्ध न करने के लिए कहा क्योंकि जिनके लिए युद्ध हो रहा था, वह सीता तो मारी जा चुकी थीं। हनुमान को राम के पास जाते देख वह भी होम करने की इच्छा से निकुंभिला देवी के मंदिर चला गया। जब सीता को मारे जाने का यह समाचार राम को सुनाया गया तो राम मूर्च्छित हो कर नीचे गिर गए। होश आने पर लक्ष्मण ने उन्हें समझाया। विभीषण को जब सीता वाले समाचार का पता चला तो उन्होंने इसे इंद्रजित की माया बताया और यह भी बताया कि इस समय वह निकुंभिला देवी के मंदिर में होम करने के लिए गया है। उन्हें उसके होम–कर्म में विघ्न डालना चाहिए। राम के समक्ष जब यह बात आई तो उन्होंने लक्ष्मण को महामना विभीषण तथा वानरराज सुग्रीव की सेना को साथ लेकर इंद्रजित का वध करने की आज्ञा दी। विभीषण हनुमान के साथ उस स्थल पर चले गए जहाँ इंद्रजित हवन कर रहा था।

विभीषण ने हवन–कर्म की समाप्ति से पहले ही मोर्चा बाँधे खड़ी उस राक्षसपुत्र की सेना पर वज्रतुल्य बाणों से धावा बोलने के लिए कहा। अचानक हुए धावे से इंद्रजित क्रोध में भर गया और अनुष्ठान छोड़ युद्ध के लिए उठ खड़ा हुआ। लक्ष्मण और इंद्रजित के बीच वाक्युद्ध के साथ–साथ भयंकर अस्त्र युद्ध भी होने लगा। इंद्रजित ने एक बार तो लक्ष्मण को घायल कर दिया। इस पर अत्यंत क्रुद्ध होकर उन्होंने उस पर पाँच नाराच बाण छोड़े जिनसे आहत हुआ वह आगबबूला हो गया। उसने भी अपने द्वारा छोड़े गए तीन बाणों से उन्हें घायल कर दिया और इस प्रकार अपना बदला चुका लिया। एक ओर पुरुषसिंह लक्ष्मण थे तो दूसरी ओर राक्षससिंह इंद्रजित। दोनों का वह संग्राम भयंकर था। लक्ष्मण के द्वारा इंद्रजित के सारथि का वध कर दिया गया। वानरों द्वारा उसके घोडों का वध कर दिया गया। इससे कुपित हुए इंद्रजित ने राक्षसों से दूसरा रथ लाने के लिए कहा। दूसरे रथ पर सवार इंद्रजित ने अपने बाणसमूहों द्वारा सैंकडों और हजारों यूथपतियों को मार गिराना आरंभ कर दिया जिसे देख लक्ष्मण के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने फुर्ती दिखाते हुए उसके धनुष को काट डाला और पाँच भयंकर बाणों से इंद्रजित की छाती में गहरी चोट पहुँचाई। इस प्रकार वे दोनों रोष में भरकर एक–दूसरे को बाणों की वर्षा कर घायल करने लगे। अंत में लक्ष्मण ने अपने धनुष पर ऐंद्रास्त्र रखकर उसे खींचते हुए अपने अभिप्राय को सिद्ध करने वाली बात कही, 'यदि दशरथनंदन भगवान श्री राम धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ हैं तथा पुरुषार्थ में उनकी समानता करने वाला दूसरा वीर नहीं है तो हे अस्त्र! तुम इस रावणपुत्र का वध कर डालो।' ऐसा कह कर उन्होंने उस बाण को इंद्रजित पर छोड़ दिया जिससे इंद्रजित का मस्तक धड़ से कटकर धरती पर गिर गया। महाबाहु इंद्रजित निष्प्राण हो कर शांत किरणों वाले सूर्य के समान निस्तेज हो गया जिसे देख वानरों से युद्ध करते राक्षस अपनी सुध–बुध खो बैठे और अस्त्र–शस्त्र छोड़कर तेजी से लंका की ओर भाग गए। राक्षस का वध हुआ देख वानर किलकिलाते, कूदते और गर्जते हुए हर्ष का अनुभव करने लगे।

रामकीर्ति के अनुसार

कुंभकर्ण की मृत्यु के पश्चात् राक्षसी सेना का नेतृत्व अब इंद्रजित पर आ गया। उसका जन्म मंडो से हुआ था। पहले वह रणबक्त्र नाम से पुकारा जाता था। उसके पास तीन दुर्जेय अस्त्र थे–ईस्वर से मिला ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मा से मिला नागपाश और विष्णु से मिला विष्णूपनाम। एक बार उसने इंद्र की दिव्य प्रतिष्ठा को लज्जास्पद बना दिया था उसी के कारण उसका नाम इंद्रजित पड़ गया। ऐसा अदम्य था इंद्रजित जिसने शेरों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर सवार हो, अब राम और उसकी सेना को ललकारा।

लक्षण उसका सामना करने के लिए आगे आए। इंद्रजित के धनुष ने अविराम और बिना किसी बाधा के मौत की वर्षा करनी शुरु कर दी। वानरों ने बड़े जोश से उसका सामना किया किंतु वे उसके अचूक बाणों के सामने वैसे ही बह गए जैसे कि भयंकर तूफान के साथ सूखी पत्तियाँ। जमीन पर पड़े हुए वानरों को गिना नहीं जा सकता था। उन्हीं के साथ हनुमान और सुग्रीव भी अशक्त और मूर्च्छित पड़े हुए थे। तब लक्षण वहाँ आए और उन्होंने उसके उस विनाशकारी वेग को रोक दिया। दोनों शूरवीरों में युद्ध हुआ, उनके बाण तब तक अग्नि और जल की वर्षा करते रहे जब तक कि वे आगे युद्ध करने लायक न रहे। तब उन्होंने युद्ध विराम किया किंतु विजय किसी को न मिली।

अपने संपूर्ण युद्ध–जीवन में पहली बार युद्ध में बराबरी पर रहे इंद्रजित ने वापस आने के बाद, अपने बाणों की निष्क्रिय शक्ति को जाग्रत करने के लिए कुंभनीय देवी का यज्ञ करने का निश्चय किया। तदनुसार वह एकांतवास के लिए आकाशगिरि पर्वत पर चला गया और अनुष्ठान आरंभ कर दिया।

लेकिन अब एक समस्या उत्पन्न हो गई। वानर सेना इंद्रजित की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर नगर पर धावा बोल सकती थी। इसलिए दसकंठ ने खर के पुत्र मकरकंठ को बुलवाया और आदेश दिया कि वह शत्रु सेना को उलझाए रखे और आगे बढ़ने से रोके रखे। किंतु मकरकंठ को युद्ध के लिए भेजने का मतलब था उसकी निश्चित मौत। चूंकि अपने पहले जन्म में वह दराबी था इसलिए उसका राम के द्वारा

मारा जाना नियतिबद्ध था। इसके बावजूद उस राक्षस ने बहादुरी से युद्ध किया और एक सीमा तक उसने वानर सेना को आतंकित कर दिया। अपने आप को अनगिनत रूपों में बदलते हुए उसने संपूर्ण आकाश पर कब्जा कर लिया, और फिर अग्नि की वर्षा करने लगा जिसने संपूर्ण सेना को भय से विह्वल कर दिया। किंतु अंत में राम के ब्रह्मास्त्र ने उसकी विनाशकारी शक्ति का अंत कर दिया और उसे उसके शाप से मुक्त कर दिया।

अब युद्धस्थल से इंद्रजित की लंबी अनुपस्थिति ने राम की सेना में शंकाओं और विचार–विमर्श को जन्म दिया। लेकिन बिभेक जानता था कि वह कहाँ पर है और वह किस कारण अनुपस्थित है। उन्होंने राम को बताया कि उसके अनुष्ठान में किस तरह से बाधा डाली जा सकती है। यह काम केवल एक भालू के द्वारा ही किया जा सकता था जो उस पेड़ को तोड़ दे जिसके नीचे इंद्रजीत अनुष्ठान कर रहा था। जंबुवान ने इस कार्य के लिए स्वयं को स्वेच्छा से प्रस्तुत किया और भालू का रूप धारण कर वह तुरंत हवाई मार्ग से वांछित पेड़ की ओर चल दिया।

इंद्रजित उस समय गहन ध्यान में लीन था। उसके वैदिक मंत्रों के उच्चारण की शक्ति ने सृष्टि के समस्त सर्पों को वहाँ इकट्ठा कर दिया था और उन सभी ने नागपाश को जहर से स्नान कराने के लिए अपने जहर को उगलना शुरु किया ही था कि तभी अचानक पेड़ गिर कर दो भागों में टूट गया। अचंभित सर्पों ने इसे गरुड़ के पंखों की फड़फड़ाहट समझा और जितना जल्दी हो सकता था, वे सभी जमीन के नीचे चले गए। इससे पहले कि राक्षस जंबुवान के बच निकलने का रास्ता बंद करता, वह आकाश में उड़ गया और शिविर में पहुँच गया। परेशान हो इंद्रजित ने अपने बाणों को उठाया, यद्यपि वे निष्क्रिय थे और अपनी सेना का नेतृत्व करते हुए शत्रु का सामना करने के लिए चल दिया।

रास्ते में जाते हुए वह विरुनामुख से मिला जो सेना की एक टुकड़ी का नायक था। इसप्रकार अचानक सेना में वृद्धि हो जाने से इंद्रजित ने वानर सेना पर आक्रमण कर दिया। लेकिन लक्षण के सामने राक्षस बुरी तरह से भयभीत हो गए। एक भयंकर युद्ध के पश्चात् भी

विजय दोनों पक्षों के बीच झूल रही थी। तब इंद्रजित ने विरुनामुख को सलाह दी कि वह लक्षण और उनकी सेना को चकमा देने के लिए उसके स्वरूप को धारण कर ले, ताकि वह स्वयं ऊपर आकाश में चला जाए और नागपाश छोड़ दे। तत्क्षण विरुनामुख ने इंद्रजित का स्वरूप धारण कर लक्षण और उनकी सेना का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। असली इंद्रजित इस अवसर का लाभ उठा कर आकाश में चला गया और नागपाश छोड़ दिया। उसी समय वह बाण असंख्य सर्पों में बदल गया जो आकाश मार्ग से रेंगते हुए नीचे आए और वानरों पर जहर उगलने लगे। वे सभी मूर्च्छित हो कर गिर पड़े और सर्पों की कुंडली में उलझ गए और उनके साथ ही उनके सेनानायक लक्षण भी गिर गए। इंद्रजित लक्षण के मूर्च्छित शरीर को रणक्षेत्र के खूनी दलदल में छोड़कर विजयी होकर लौट गया।

तब राम वहाँ आए, जहाँ लक्षण निर्जीव वानरों के बीच मूर्च्छित पड़े थे। बिभेक के कहने पर उन्होंने ब्लैवट बाण को आकाश में छोड़ा जिससे क्षण भर में गरुड़ नीचे आ गया और उसके चंचुप्रहार से सर्प ऊपर उड़ गए। लक्षण और सभी वानर होश में आ गए।

इंद्रजित बहुत आश्चर्यचकित हुआ, 'किस प्रकार के शत्रु हैं ये जो मृत्यु के द्वार से वापस लौट आये! फिर भी वह उन सभी को मौत के मुँह में वहाँ पहुँचाएगा जहाँ से कोई भी वापस नहीं लौट सकता।' इसलिए वह समुद्र के तट पर गया और ब्रह्मास्त्र की निष्क्रिय शक्ति को जाग्रत करने के लिए ईस्वर का आह्वान करने लगा। लेकिन पूर्ण दृढ़ संकल्प के साथ किए गए अनुष्ठान का कोई परिणाम न निकला, क्योंकि दसकंठ ने उसके पास कंपन की मौत की खबर भेज दी थी, जिसका उसी समय हनुमान द्वारा वध किया गया था। अनुष्ठान के समय इस दुखद समाचार को प्राप्त करना उसकी असफलता की पूर्व सूचना थी। इसका एकमात्र उपाय एक काली गाय का बलिदान था जिसे इंद्रजित ने एकदम कर दिया और इसप्रकार इंद्रजीत के बाण की निष्क्रिय शक्ति जाग्रत हो गई।

अतः अजेय ब्रह्मास्त्र को धनुष की प्रत्यंचा पर चढाकर इंद्रजित शत्रु का सामना करने लगा। फिर अपनी चमत्कारिक शक्तियों के द्वारा

उसने अनेक देवताओं से घिरे रहने वाले इंद्र के दिव्य स्वरूप को धारण कर युद्धक्षेत्र को अचानक कांतियुक्त दिव्य आश्रम में बदल दिया। वानरों का नेतृत्व कर रहे लक्षण दिव्य आश्रम को देख कर यह भूल गए कि इस समय वे जिंदगी और मौत के बीच खड़े हैं।

इंद्रजित ने लक्षण की इस विस्मरणशीलता का फायदा उठाया और उन पर अजेय ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया और पूरी सेना को धराशायी कर दिया। लेकिन हनुमान अब भी जीवित थे। उन्होंने देख लिया था कि उस प्राणांतक बाण को चलाने वाला कौन था। उन्होंने तुरंत आकाश में छलांग लगाई और नकली ऐरावन[50] की गरदन तोड़ दी जिस पर नकली इंद्र बैठा हुआ था। लेकिन इंद्रजित के एक प्रहार ने उनको मूर्च्छित कर जमीन पर पटक दिया। इसप्रकार इंद्रजित ने चहेते विजयी बालक की तरह रणक्षेत्र से प्रस्थान किया।

यह समाचार राम तक पहुँच गया और वे शीघ्रता से घोर पराजय वाले घटनास्थल की ओर दौड़े। जैसे ही वह दृश्य उनकी आँखों के सामने आया, वे मूर्च्छित होकर ऐसे गिर पड़े जैसे कोई वृक्ष जड़ से काटने पर गिर जाता है। । इसप्रकार राम अपने छोटे प्रिय भाई लक्षण के पास मूर्च्छित अवस्था में पड़े थे, मानो मर चुके हों और हमेशा के लिए चले गए हों और उनके चारों तरफ वानर भी निर्जीव पड़े थे। उस क्षेत्र में जहाँ उन्होंने कभी अपनी अत्यंत चमत्कारिक शक्तियों का प्रदर्शन किया था, अब वहाँ उनके मृत शरीरों से एक विशाल श्मशानघाट बन चुका था।

समाचार लंका के प्रमुदित राजा के पास पहुँचा। खुशी और संतोष से चमकती हुई बीस आँखों वाले राजा ने एक राक्षस को उस बगीचे में भेजा जहाँ सीता उत्सुकता से अपने पति की विजय की आस में रात और दिन बिता रही थीं। फिर अचानक हुए वज्रपात के समान बुरा समाचार उस राक्षस के क्रूर होंठों से फूट पड़ा कि उनके पति संपूर्ण वानर सेना के साथ अपनी मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। इसने उनकी अंतिम आशा

---

50 सं ऐरावत, इंद्र का हाथी   रामकीर्ति पृ 92

को भी चूर–चूर कर दिया। इस में अब कोई संदेह नहीं था, पर सीता ने इसे अपनी आँखों से देख स्वयं सुनिश्चित करना चाहा।

इसलिए सीता त्रिजटा के साथ पुष्पक विमान में बैठकर युद्धस्थल के लिए चल दीं। जैसे ही वह दृश्य उनकी आँखों के सामने आया, उनकी आशा की धूमिल किरण भी बुझ गई। निश्चित रूप से ही राम वहाँ पर पड़े थे, कभी न उठने के लिए, अपने प्यार भरे शब्दों से कभी न लाड़ लड़ाने के लिए तथा उनके आँसू कभी न पोंछने के लिए। निस्संदेह, अयुध्या के राजकुमार मृतकों के बीच पड़े थे। उनके गालों पर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और उनका दिल दुख और निराशा से टुकड़े–टुकड़े हो गया।

तब अचानक त्रिजटा ने उनमें आशा और सांत्वना की एक धुंधली सी किरण जगाई। क्या राम वास्तव में मर गए हैं अथवा केवल बेहोश हैं? पुष्पक ही इसका सबसे बड़ा निर्णायक होगा क्योंकि जब कोई विधवा स्त्री उस पर बैठेगी, वह ऊपर नहीं उड़ेगा। इस तथ्य की जाँच एक बार मंडो द्वारा की जा चुकी है और इसकी दोबारा जाँच की जा सकती है। अतः सीता पुष्पक में बैठ गईं। उनको अत्यंत हर्ष हुआ कि वह रत्नजटित पुष्पक विमान चमकते हुए आकाश में उड़ गया और उन्हें उनके तुच्छ निवास पर सुरक्षित पहुँचा दिया। राम अब भी जीवित थे, किंतु बेहोश, वह दिन अवश्य आएगा जब उनका पराक्रम उनके अंधकारयुक्त जीवन को सूर्य के प्रकाश समान जगमगा देगा।

इसी बीच बिभेक लौटे जो खाद्यसामग्री की वितरण व्यवस्था में कहीं और व्यस्त थे। उन्होंने सेना की दुर्दशा देखी। लेकिन उन्हें इससे कोई निराशा नहीं हुई। वह जानते थे कि कोई भी हनुमान को नहीं मार सकता क्योंकि वे ईस्वर की अनुकंपा से अमर थे। उन्होंने वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते हुए हनुमान पर फूंक मारी। उस विशाल वानर ने अपनी आँखें खोलीं और धीरे–धीरे व्याकुलता से पलकें झपकने लगे। फिर एकाएक वह पूरा मामला समझ गए और तेजी से उठ खड़े हुए।

रात का समय था। ताजी–ताजी ओस की बूंदें मृतकों के शरीर पर दिव्य मलहम के समान पड़ रही थीं और उनकी पीड़ा को कम कर रही थीं। एक–एक करके राम के संगी–साथी अचेतावस्था से उठने लगे। लेकिन ब्रह्मास्त्र के शिकार लक्षण और दूसरे अब भी मूर्च्छित पड़े हुए थे। केवल पुब्बाविदेह द्वीप के अवुध पर्वत पर लगी जड़ीबूटियों से निर्मित मलहम ही ब्रह्मास्त्र द्वारा दिए गए कष्ट को कम कर सकता था और उनके जीवन को लौटा सकता था। इन जड़ीबूटियों का पता केवल जंबुवान को ही था जिसके बारे में उसे तब पता चला जब वह ईस्वर की सेवा करता था। किंतु वह जड़ीबूटी एक घूमते हुए चक्र के पहरे में थी। जो भी उस जड़ीबूटी को पाने की कोशिश करता, वह टुकड़े–टुकड़े हो मृत्यु को प्राप्त हो जाता। केवल एक ही व्यक्ति था जिसके लिए उस तक पहुँचना आसान था और वे थे हनुमान। इसलिए पवन पुत्र ने तुरंत आकाश में छलांग लगा दी और पर्वत की ओर उड़ चले।

कुछ ही क्षणों में एक विशाल आकृति की काली छाया ने अर्द्धचंद्र को ढक लिया जो सेना के ऊपर चाँदनी बिखेर रहा था। उन सभी ने ऊपर देखा और सोचा कि हनुमान पर्वत को लेकर लौट आए हैं। पर्वत को उत्तर दिशा में रखा गया। तभी वहाँ एकाएक मंद–मंद हवा बहने लगी जो जड़ीबूटियों की जीवनदायक सुगंध को साथ लिए थी और यह उस समस्त विनाशकारी युद्धभूमि में फैल गई। यह ब्रह्मास्त्र–पीड़ितों पर पड़े मौत के भय को अपने साथ बहा ले गई और उनको नूतन और ओजस्वी जीवन प्रदान किया। इसप्रकार लक्षण अपनी मूर्च्छा से जाग गए और वैसे ही उनके भाग्य के साथी सभी वानर भी।

अपनी चाल के विफल हो जाने पर इंद्रजित इस बार कुछ दूसरी कपटभरी चालों के बारे में सोचने लगा जो राम और उसकी सेना को लंका से बाहर निकाल दें। यह सीता ही थी जिसके लिए राम ने इस द्वीप पर आक्रमण किया था। इसलिए यदि सीता का अंत कर दिया जाए, युद्ध स्वयं ही समाप्त हो जाएगा। लेकिन इसमें दसकंठ एक दुर्भेद्य व्यवधान बना हुआ था। अतः उसके पास केवल एक मायावी सीता का सहारा लेने के और कोई दूसरा रास्ता न था।

उसी समय अपने पद का दुरुपयोग करने का अपराधी होने के कारण शुक्रसार को मृत्युदंड दिया गया था। इंद्रजित द्वारा सूचित की गई नई योजना के अनुसार दसकंठ ने उसे आदेश दिया कि वह सीता का वेश धारण करे और इंद्रजित के साथ उसके रथ में जाए। अपने रथ में मायावी सीता के साथ इंद्रजित युद्धस्थल की ओर चल दिया और शीघ्र ही उसका मुकाबला लक्षण के साथ हुआ।

इस बार लक्षण के बाण उसके धनुष में ही रह गए और शत्रु पर अपना तीखापन दिखाने के लिए नहीं चल पाए। इंद्रजित के रथ में सीता की उपस्थिति ने लक्षण से उनकी फुर्तीली शक्ति का हरण कर लिया था और वे उनके दयनीय रूप को विस्मित से देखते रह गये। तभी एकाएक वे इंद्रजित की गरजती हुई आवाज को सुनकर चौंकन्ने हो गए। क्या लक्षण आगे आयेगा और सभी मुसीबतों की जड़ सीता को ले जायेगा और लंका को शांत रहने के लिए छोड़ देगा? लक्षण ने उसके प्रस्ताव पर अपनी सहमति जताई और उससे उन्हें भेजने के लिए कहा। पर हमेशा विजयी रहने वाला इंद्रजित उनके सम्मान को ठेस पहुँचाए बिना स्वयं ही सीता को कैसे भेज सकता था? इसलिए एक व्यंग्यात्मक अट्‌ठाहस के साथ उसने सीता का सिर काट दिया और उसे पूर्णतया व्याकुल लक्षण पर फेंक दिया। उसी समय फिर इंद्रजित की धमकी भरी गर्जना दोबारा गूँजी कि वह अब अयुध्या शहर की ओर कूच करेगा, उनके महल पर धावा बोलेगा और उनके सिंहासन के टुकड़े–टुकड़े कर देगा। तत्पश्चात् वह उनके सामने गर्वपूर्वक विजयी ध्वज फहराते हुए युद्धक्षेत्र से चला गया।

लेकिन यह एक काल्पनिक विजय थी जो इंद्रजित के साथ जा रही थी क्योंकि बिभेक जानता था कि असली सीता अब भी दसकंठ के शाही बगीचे में बंधक हैं और जो सिर लक्षण के ऊपर फेंका गया था, वह एक मायावी सिर था, शुक्रसार का सिर। और वह यह भी जानता था कि इंद्रजित अपनी सेना लेकर अयुध्या पर आक्रमण करने नहीं जा रहा था

बल्कि वह कुंभनीय[51] के यज्ञ के आयोजन की तैयारी करने जा रहा था जिससे वह अदृश्य होने की चमत्कारिक शक्ति प्राप्त कर लेगा तथा इससे उसे और साथ ही उसकी सेना को भी किसी शस्त्र के प्रहार से बचने की प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त हो जाएगी।

इसलिए बिभेक लक्षण को उधर ले गए जहाँ इंद्रजित अपने सुरक्षित समझे जाने वाले स्थान पर अनुष्ठान कर रहा था। अचानक विघ्न पड़ने पर वह राक्षस अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और घुसपैठिए का सामना करने लगा। उसने जान लिया था कि अब वह दिन आ गया है जब उसका अंत निश्चित है। उसका हृदय अपने दुखी माता–पिता के लिए तड़पने लगा, जिनका उसकी मृत्यु पर कोई धीरज भी नहीं बंधाएगा। वह उनसे अंतिम विदा लेने के लिए तरसने लगा। इसलिए उसने काले घने बादलों का निर्माण किया और उसकी आड़ में वह दसकंठ और मंडो से विदा लेने के लिए भाग़ गया।

उसी समय लक्षण अपनी विजय के प्रति इतने आश्वस्त हो गए कि वह इंद्रजित के सिर को उसके धड़ से अलग करने के लिए लालायित हो उठे। लेकिन वे ऐसा नहीं कर सकते थे क्योंकि राक्षस को ब्रह्मा से वरदान मिला हुआ था कि जब कभी उसका सिर उसके धड़ से अलग होगा, एक भयंकर अग्निकांड संपूर्ण सृष्टि को खत्म कर देगा। इसलिए तत्क्षण अंगद ब्रह्मा के निवास पर दौड़ कर पहुँचा और इंद्रजित के सिर को ग्रहण करने के लिए उनका पात्र ले आया। जैसे ही वह वापस लौटा, लक्षण ने अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया जिसने उस राक्षस के सिर को धड़ से अलग कर नीचे गिरा दिया और उसे ब्रह्मा के पात्र में रख दिया। तब राम ने एक प्रक्षेपास्त्र छोड़ा, उससे आग की एक लपट पैदा हुई जिसने उसके सिर को राख में बदल दिया। इससे सारा संसार जलकर अंगार बनने से बच गया।

उल्लेखनीय बिंदु

---

51 सं निकुंभिला रामकीर्ति पृ 97

दोनों ग्रंथों के अनुसार, इंद्रजित का वध लक्ष्मण द्वारा ही किया गया है। निकुंभिला देवी की पूजा तथा मायावी सीता का निर्माण दोनों में ही है। लेकिन रा. में इस संदर्भ में कई ऐसी घटनाओं का वर्णन हुआ है, जो वा. में देखने को नहीं मिलतीं जैसे इंद्रजित का रास्ते में विरुनामुख से मिलना, इंद्रजित का इंद्र के समान दिव्य स्वरूप धारण कर दिव्य आश्रम का निर्माण करना, सीता का त्रिजटा के साथ पुष्पक विमान में युद्धस्थल पर जाना, अंतिम समय आता हुआ देख इंद्रजित का अपने माता–पिता से मिलने के लिए तड़पना और घने बादलों की आड़ में उनसे मिलने के लिए भाग जाना, इंद्रजित के सिर को रखने के लिए ब्रह्मा के निवास स्थान से अंगद द्वारा पात्र को लेकर आना और इंद्रजित के सिर को धड़ से अलग कर दिए जाने पर उसे पात्र में रखना, राम द्वारा प्रक्षेपास्त्र छोड़कर उस सिर को जला देना। वा. में वर्णित घटनाओं जैसे वानरों द्वारा लंकापुरी का दोबारा जलाया जाना, लक्ष्मण के द्वारा ऐंद्रास्त्र के प्रहार से इंद्रजित की मृत्यु होना, का वर्णन रा. में नहीं है।

●

रावण वध

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

रावण के मंत्रियों ने जब इंद्रजित की मृत्यु का समाचार सुना, तो उन्होंने स्वयं भी उसे प्रत्यक्ष देखकर सुनिश्चित किया। इसके बाद उन्होंने रावण से सारा हाल कह सुनाया जिसे सुनकर वह मूर्च्छित हो गया। चेतना लौटने पर वह भारी विलाप करने लगा। किंतु उसकी मृत्यु का स्मरण करके उसमें महान क्रोध का आवेश हुआ। उसने बुद्धि से सोच–विचार कर सीता को मार डालने का निश्चय किया। वह कुपित हो उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ सीता विद्यमान थीं। वह क्रोधावेग में उनका वध करने के लिए दौड़ा। तब उसके सुशील एवं शुद्ध आचार वाले मंत्री ने उसे स्त्री–वध से रोक कर राम पर ही अपना क्रोध उतारने के लिए समझाया। उसके इन धर्मानुकूल वचनों को सुनकर रावण महल में लौट आया।

रावण ने सिंहासन पर आरूढ़ हो अपने सेनापतियों से राम को मार डालने के लिए कहा। रावण की आज्ञा से सभी राक्षस रणभूमि के लिए प्रस्थित हुए। वानर सेना और राक्षस सेना के बीच भयंकर युद्ध होने लगा। सुग्रीव द्वारा मारे गए विरुपाक्ष के कारण रावण का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने महोदर को भेजा, वह भी सुग्रीव द्वारा मारा गया। तदनंतर काल, मृत्यु और यमराज के समान भयंकर रावण धनुष हाथ में ले राक्षसों की सेना से घिरकर युद्ध के लिए आगे बढ़ा। उस समय सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गई। समस्त दिशाओं में अंधकार छा गया, भयंकर पक्षी अशुभ वाणी में बोलने लगे और धरती डोलने लगी। इन भयंकर उत्पातों की परवाह न करता हुआ, काल से प्रेरित हो वह अपने ही वध के लिए निकल पड़ा। उसने तामस नामक अस्त्र के प्रहार से वानरों को नष्ट करना आरंभ कर दिया। वानरों को तितर–बितर होता देख राम युद्ध के लिए उद्यत हो सुस्थिर भाव से खड़े रहे। रावण लक्ष्मण को लाँघकर राम के पास पहुँचा और तब उन दोनों में भीषण युद्ध होने लगा।

जब रावण का आसुरास्त्र नष्ट हो गया, तो उसने राम के ऊपर दूसरे भयंकर अस्त्र का प्रयोग कर उनके मर्मस्थलों पर प्रहार किया लेकिन वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने भी अत्यंत कुपित होकर रावण के सारे अंगों में घाव कर दिए। तदनन्तर विभीषण ने उछलकर अपनी गदा से रावण के घोड़ों को मार गिराया जिस कारण अत्यंत क्रुद्ध हुए रावण ने विभीषण को मारने के लिए एक वज्र के समान प्रज्ज्वलित शक्ति चलाई जिसे लक्ष्मण ने अपने ऊपर ले लिया और उन्हें बचा लिया। फिर रावण ने लक्ष्मण के ऊपर ही प्राणघातिनी शक्ति का प्रयोग किया जो उनकी छाती में ही प्रवेश कर गई जिससे वे पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देख राम पहले तो विषाद में डूब गए किंतु बाद में संयमित हो उन्होंने शक्ति को लक्ष्मण के शरीर से निकाल दिया। यद्यपि राम ने लक्ष्मण के शरीर से शक्ति निकाल दी थी तथापि उनके शरीर से खून काफी बह रहा था। उस बहते हुए रक्त को देखकर राम दुख से व्याकुल हो, चिंता और शोक में डूब गए। उन्होंने सुषेण से लक्ष्मण का उपचार करने के लिए कहा। सुषेण द्वारा बताई विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी और संधानी औषधियाँ हनुमानजी द्वारा लाई गईं जिन्हें कूट–पीस कर लक्ष्मण की नाक में डाल

दिया गया जिससे वे नीरोगी हो शीघ्र ही भूतल से उठकर खड़े हो गए। राम ने उन्हें गाढ़ आलिंगन में भर लिया।

इसके बाद राम ने रावण पर लक्ष्यबद्ध बाणों का संधान करना आरंभ कर दिया और रावण भी रथ पर बैठा हुआ वज्रोपम बाणों द्वारा राम को बींधने लगा। रावण को रथ पर सवार देख इंद्र ने राम के लिए भी सारथि मातलि के साथ रथ भेजा जिस पर राम सवार हो गए। अब राम और रावण में द्वैरथ युद्ध आरंभ हुआ जो बड़ा ही अद्‌भुत तथा भयावह था। रावण ने परम भयानक राक्षसास्त्र का प्रयोग किया जिससे छोड़े गए सुवर्णभूषित बाण सर्प बन कर राम की ओर आने लगे। युद्धस्थल में उन सर्पों को आते देख राम ने गरुड़ास्त्र को प्रकट किया जिससे उनके द्वारा छोड़े गए बाण गरुड़ बनकर चारों ओर विचरने लगे। अपने अस्त्र के प्रतिहत हो जाने पर क्रुद्ध हुए रावण ने उनके सारथि मातलि और इंद्र के घोड़ों को घायल कर दिया। इसे देख देवता, गंधर्व, चारण, सिद्ध, महर्षि और विभीषण भी बहुत दुखी हुए। रावण के बाणों से बारंबार आहत होने के कारण राम अपने बाणों का संधान नहीं कर पा रहे थे। तदनंतर राम ने अपने क्रोध का भाव प्रकट किया जिसे देखकर रावण में भी भय समा गया। इसी समय राम को मारने की इच्छा से रावण ने 'शूल' नामक हथियार उठाया। राम ने उस हथियार का प्रतिरोध देवेंद्र द्वारा दी गई शक्ति से किया। अपने पैने बाणों द्वारा राम ने रावण के घोड़ों को घायल करके तीन तीखे तीरों से उसकी छाती छेद डाली। उसने भी राम की छाती में सैंकड़ों बाण मारे। इसप्रकार उन दोनों के बीच हुए भीषण युद्ध के कारण जब रावण में उनके प्रहारों को सहने की क्षमता नहीं रही तब उसका सारथि उसे युद्धक्षेत्र से बाहर ले गया तथा थोड़ा ठीक हो जाने पर उसका विशाल रथ युद्ध के मुहाने पर राम के समीप आ पहुँचा।

उधर राम युद्ध से थककर चिंता करते हुए रण भूमि में खड़े थे। इतने में रावण भी उनके सामने युद्ध के लिए उपस्थित हो गया। यह देख अगस्त्य ऋषि, जो देवताओं के साथ युद्ध देखने के लिए आए थे, राम के पास जाकर बोले, 'राम! तुम सनातन गोपनीय 'आदित्यहृदय' को सुनो। यह परम पवित्र और संपूर्ण शत्रुओं का नाश करने वाला है। इसके जप से

सदा विजय की प्राप्ति होती है। यह नित्य अक्षर और परम कल्याणमय स्तोत्र है। संपूर्ण मंगलों का भी मंगल है। इससे सब पापों का नाश हो जाता है। यह चिंता और शोक को मिटाने तथा आयु को बढ़ाने वाला उत्तम साधन है।' उनका उपदेश सुनकर राम का शोक दूर हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर शुद्ध चित्त से 'आदित्यहृदय' को धारण किया। फिर परम पराक्रमी राम ने धनुष उठाकर रावण की ओर देखा और उत्साहपूर्वक विजय पाने के लिए वे आगे बढ़े।

युद्ध भूमि में पहुँचने पर राम ने राक्षसराज रावण के रथ को देखा। उसे आता देख राम ने बड़े वेग से अपने धनुष पर टंकार दी तथा मातलि से सावधान होने के लिए कहा। आमने–सामने आ जाने पर दोनों महारथियों में भयंकर युद्ध होने लगा। राम को अपनी जीत और रावण को अपनी मृत्यु का अनुभव हो गया था, अतः वे दोनों ही निर्भयतापूर्वक जिस तरह से युद्ध कर रहे थे, उसे देख सबके हृदय उन्हीं की ओर खिंच गए। रावण ने राम के ध्वज को लक्ष्य करके बाण छोड़े तो राम ने उसके ध्वज को काटकर नीचे गिरा दिया। दोनों ने एक–दूसरे के घोड़ों को घायल कर दिया। तदनंतर कुपित होकर राम ने अपने धनुष पर एक विषधर सर्प के समान बाण का संधान किया जिससे रावण का सिर कट गया और वह कटा हुआ सिर धरती पर गिर पड़ा। किंतु उसकी जगह तुरंत ही दूसरा सिर निकल आया। उन्होंने दूसरा सिर भी काट डाला। उसके कटते ही पुनः नया सिर उत्पन्न हो गया। इसप्रकार उसके मस्तकों का अंत होता हुआ दिखाई नही दे रहा था।

युद्ध का अंत न होता देख मातलि ने राम को कुछ याद दिलाते हुए कहा, 'वीरवर! आप अनजान की तरह क्यों इस राक्षस का अनुसरण कर रहे हैं? प्रभो! आप इसके वध के लिए ब्रह्माजी के अस्त्र का प्रयोग कीजिए। देवताओं ने इसके विनाश का जो समय बताया है, वह आ पहुँचा है।' तब राम ने वेदोक्त विधि से अभिमंत्रित करके ब्रह्मास्त्र को अपने धनुष पर रखा और उसका संधान कर रावण पर चला दिया। काल के समान वह अस्त्र रावण का हृदय विदीर्ण करके पुनः सेवक की भाँति उनके तरकस में लौट आया। रावण के प्राण निकलने के साथ ही उसके हाथ से

सायकसहित धनुष भी छूटकर गिर पड़ा। रावण को पृथ्वी पर पड़ा देख बचे हुए राक्षस भी भाग गए। सुग्रीव, विभीषण, अंगद तथा लक्ष्मण अपने सुह्दों के साथ युद्ध में राम की विजय से बहुत प्रसन्न हुए। शत्रु को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के पश्चात् स्वजनोंसहित सेना से घिरे हुए राम देवताओं से घिरे हुए इंद्र के समान शोभा पाने लगे।

रामकीर्ति के अनुसार

रामकीर्ति में राम और दसकंठ के बीच युद्ध शुरू होने से लेकर समाप्त होने तक कई प्रसंग वर्णित हैं, जो इस प्रकार हैं।

(क) दसकंठ और उसके मित्रों से सामना

जब दसकंठ ने अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुना तो दुख भाले की तरह उसके दिल को वेध गया। अंततः वह भी इस अंत तक पहुँच गया, 'और कोई नहीं बल्कि सीता ही उसके भाग्य के इस दुखद परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है? और उसके कुल के गौरव इंद्रजित की मृत्यु के लिए भी सीता ही उत्तरदायी है? क्या उसे मारना अधिक अच्छा नहीं होगा जो अप्रत्यक्ष रूप से उसके पुत्र की मृत्यु का कारण बनी?' इसलिए वह शीघ्रता से सीता की कुटिया की ओर चल दिया और उसने उसे मार दिया होता, यदि पाओवनासुर ने उसे इस कायरतापूर्ण कृत्य करने से यह कह कर नहीं रोक लिया होता कि यह उसके पुत्र के जीवन को वापस नहीं ला सकता। अपने पुत्र की मृत्यु का बदला लेने का वीरोचित मार्ग यही है कि वह स्वयं राम को ललकारे और उसके पराक्रम को चुनौती दे।

इसलिए दसकंठ अपने दस सेनानायकों और दस पुत्रों, जो हवा, अग्नि, सूर्य और इंद्र को पराजित कर चुके थे, को लेकर युद्धभूमि की ओर चल दिया। उधर वानरों में सम्मिलित थे—वायुपुत्र हनुमान, अग्निपुत्र निलानन, सूर्यपुत्र सुग्रीव, और इंद्र के पौत्र अंगद। शीघ्र ही वे, जिन्होंने उन देवताओं को पराजित किया था, उनके पुत्रों के हाथों अपनी मृत्यु को प्राप्त हो गए।

दसकंठ ने अपनी दस भुजाओं से युद्ध किया और अन्य दस भुजाओं से उसने अपनी रक्षा की। किंतु फिर भी वह विजय का कृपा पात्र न बन सका।

न तो विजयी और न ही पराजित, वह वापस लौट आया। उसने अपने मित्र, पंग्ताल के युवराज मुलाबालम को बुलवाया। मुलाबालम अपने बड़े भाई सहस्सतेज को साथ लेकर आया जो हजार मुखों तथा दो हजार भुजाओं वाला था तथा जिसके सामने ईस्वर के आशीर्वाद से सभी दुश्मन भाग खड़े होते थे। इसके अतिरिक्त, उस अपराजेय राक्षस के पास एक चमत्कारिक गदा भी थी जिसका नुकीला सिरा उसके शिकार लोगों के लिए मौत का सूचक था और उसका नुकीला अधोभाग मृतक को जीवन प्रदान करने वाला था।

जोश और गर्व के साथ दोनों भाईयों ने युद्धक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। सहस्सतेज के भयंकर आकार ने वानरों को ऐसे भगा दिया जैसे भेड़िए के सामने भेड़ों का झुंड। फिर भी लक्षण के तीक्ष्ण बाणों के प्रहार ने मुलाबालम को धराशायी कर दिया जबकि हनुमान के चातुर्य–कौशल ने सहस्सतेज के बढ़ते हुए प्रतिशोधी कदमों को रोक दिया।

वायु पुत्र ने उसको उसकी चमत्कारिक गदा से वंचित करने का निश्चय किया। वे एक छोटे वानर के रूप में सिकुड गए और जानबूझकर उसके रथ से टकरा कर उसके सामने गिर पड़े। क्रोधी तेवरों से राक्षस ने अपने शक्तिशाली वाहन का परीक्षण किया और उस अपराधी को पकड़ लिया जिसने अपना परिचय बाली के सेवक के रूप में दिया और बताया कि वह अपने मालिक का बदला लेने आया है। प्रसन्न होकर सहज ही विश्वास करने वाले उस राक्षस ने उसको अपना मित्र बना लिया। वानर के चापलूसी भरे शब्दों से अत्यंत प्रसन्न होकर, उसे उसने अपनी गदा अपने स्वामी का बदला लेने के लिए दे दी। जैसे ही गदा उसके हाथों में पहुँची, हनुमान अपने विशाल आकार में वापस आ गए और राक्षस को अपनी लंबी पूंछ में बांध कर, राम को स्मृति चिन्ह के रूप में भेंट करने के लिए उसके हजार मुख वाले सिर को काट दिया।

सहस्सतेज की मृत्यु के बाद मकरकंठ का भाई सेंग आदित्य आया। उस राक्षस के पास एक चमत्कारिक शीशा था जिसके प्रतिबिंब से उसके दायरे में आई हर चीज जल जाती थी। लेकिन खुशी की बात थी कि यह ब्रह्मा की देखरेख में रखा था। अतः अंगद तुरंत सेंग आदित्य के एक शासक का रूप धारण कर ब्रह्मा के निवास की ओर दौड़ कर पहुँचा और उसने शीशे को प्राप्त कर अपने संरक्षण में ले लिया। अपने चमत्कारिक अस्त्र से वंचित हो जाने के कारण, प्रवंचित राक्षस आसानी से राम के घातक अस्त्र का शिकार हो गया।

इसप्रकार एक एक करके वे सभी राक्षस मृत्यु को प्राप्त होते गए जिनसे दसकंठ ने आशा बांध रखी थी। अब वह नई आशा और नई संधि कहाँ खोजे? तभी एकाएक उसे चक्रवाल के राजा सत्लुंग के बहादुर कारनामों तथा अपने भतीजे, त्रिशिरा के पुत्र त्रिमेघ की याद आई। दसकंठ ने उनसे सहायता मांगी तथा उन राक्षस राजाओं ने तुरंत ही उसकी प्रार्थना का अनुकूल उत्तर दिया।

अपने नेतृत्व में विशाल सेना को लेकर सत्लुंग लंका की ओर चल दिया। रास्ते में त्रिमेघ के नेतृत्व वाली सेना से उसकी भेंट हुई। तत्पश्चात् संयुक्त सेनाओं ने राम को उनकी सेना सहित पराजित करने के लिए कूच किया। लेकिन, दुख की बात! वे बड़े उत्साह से अपने अंत की ओर बढ़ रहे थे। राम के बाण ने सत्लुंग को मौत के मुँह में पहुँचा दिया और त्रिमेघ चक्रवाल पर्वत के नीचे भाग गया और रेत में धूल के कण के रूप छिप गया। परंतु अप्रतिरोध्य वायुपुत्र ने उसका पीछा किया और उसे अपने मित्र के भाग्य का साझीदार बना दिया।

मित्रों से वियुक्त दसकंठ ने अब अपने संसाधनों का सहारा लिया। किससे वह डरा हुआ था? कौन उसके शरीर को वज्र बना सकता था और कौन उसकी अंगुली को मौत से सराबोर कर सकता था जैसे कि उसने एकबार पहले भी किया था जब वह नंदक के रूप में ईस्वर की सेवा किया करता था? लेकिन इसप्रकार की चमत्कारिक शक्ति से संपन्न होने के लिए एक यज्ञ करने की आवश्यकता थी। इसको पूर्ण करने के लिए केवल एक आवश्यक शर्त यह थी कि वह अपने मस्तिष्क को पूरी

तरह सात दिन तक वैसे ही शांत रखे जैसे कि शीतकाल का शांत समुद्र। अगर एक बार उसके दिमाग का संतुलन टूट गया और वह गुस्से से भड़क गया, तो उसके यज्ञ का परिणाम निराशाजनक होगा। इसलिए वह निलाकल पर्वत की एक एकांत गुफा में चला गया और पूरे संयम के साथ उसने यज्ञ प्रारंभ कर दिया।

लेकिन दसकंठ ने हनुमान की उस चमत्कारिक क्षमता को समझने में भूल कर दी जो शूल बनकर उसके शरीर में निरंतर चुभ रही थी। बिभेक के निर्देशानुसार वह विशाल वानर निलानंद और अंगद के साथ राक्षसराज के पूजास्थल पर गया, किंतु उसे अत्यंत आश्चर्य हुआ जब उसने द्वार को दसकंठ की अलौकिक शक्ति के द्वारा मजबूती से अवरुद्ध पाया। वह अवरोध औरत के पैरों को धोने से अपवित्र हुए पानी को छिड़ककर दूर किया जा सकता था। इसलिए हनुमान शीघ्रता से अपनी राक्षस पत्नी बेनजाकया के पास गए और उस पानी को लेकर आए जिसका उपयोग उसने अपने पैरों को धोने के लिए किया था। उसे उस चमत्कारिक अवरोध पर छिड़क दिया जिससे उन्हें तुरंत रास्ता मिल गया। तीनों वानर उस गुफा के अंदर दौड़े और आपस में काटते और पीटते हुए दसकंठ के मन की शांति को भंग करने लगे। किंतु राक्षसराज अपने स्थान पर अडिग बना रहा और अपने मन को स्थिर बनाए रखा।

असफल होने पर चातुर्य–कुशल हनुमान ने कोई दूसरी युक्ति सोची। कुछ समय के लिए उन्होंने पूजास्थल को छोड़ दिया और वहाँ उड़ कर चले गये जहाँ स्वर्णिम पलंग पर मंडो गहरी नींद में सो रही थी, उसके गुलाबी खुले होंठों के बीच छाई हुई प्रसन्नतापूर्ण मुस्कान कुछ ऐसी दिख रही थी कि जैसे चमकते हुए मोतियों का हार। अपने मंत्र द्वारा उसे बेहोश कर, हनुमान ने उसे अपनी बांहों में उठा लिया और दसकंठ के पूजास्थल पर वापस लौट आए।

लंका की महारानी एक वानर की बांहों में! उसके दिल की रानी का हरण एक पशु द्वारा किया जाने वाला है! भयंकर क्रोध से गरजते हुए राक्षस ने हनुमान का पीछा किया। वानर ने तुरंत राक्षस रानी को छोड़ दिया और संतुष्ट मन से अपने शिविर की ओर चले गए। दसकंठ को

मूर्ख बनाया जा चुका था। क्रोधाग्नि ने उसके मन की शांति को भंग कर दिया था और इसके साथ ही मौत और विनाश का साकार रूप बनने के उसके सारे अवसर जलकर राख हो चुके थे।

घबराए हुए दसकंठ ने अष्टांग के राजा सद्धासुर तथा दूषन के पुत्र विरुनचंबांग के साथ संधि करने की इच्छा जताई। दोनों राक्षस उसकी मदद के लिए तुरंत आ गए। सद्धासुर अपने सभी दिव्य अस्त्रों को अपनी सहायता के लिए आह्वान करने की चमत्कारिक शक्ति के साथ आया और विरुनचंबांग अपने अदृश्य शरीर और अदृश्य घोड़े के साथ।

हनुमान ने सद्धासुर का मुकाबला किया। उसको दिव्य अस्त्रों से वंचित कर देने के विचार से हनुमान ने वानरों को अपने आपको ऊनदार बादलों के बीच छिपा लेने की सलाह दी ताकि जैसे ही सद्धासुर द्वारा आह्वान करने पर देवता अपने अस्त्रों को नीचे फेंकें, वे उन्हें राक्षस के पास पहुँचने से पहले बीच रास्ते में ही लपक लें। तब एक जंगली वानर के रूप में उन्होंने सद्धासुर को उसकी चमत्कारिक शक्ति के लिए चुनौती दी। राक्षस ने दिव्यास्त्रों का आह्वान किया लेकिन वे उसके हाथ में नहीं आ पाए क्योंकि वे चालाक वानरों द्वारा आकाश के बीच रास्ते में ही लपक लिए गए थ। अपनी चमत्कारिक शक्ति में विश्वास खो देने पर उसने हनुमान का पूरी शक्ति के साथ सामना तो किया, किंतु वानर ने उसका सिर काट कर राम को स्मृति चिन्ह के रूप में भेंट कर दिया।

सद्धासुर की मृत्यु के बाद विरुनचंबांग क्रोधावेश में आया। अपने अदृश्य घोड़े पर बैठकर, अदृश्य राक्षस वानर सेना पर मौत की वर्षा करने लगा और राम को किंकर्तव्यविमूढ़ता की इस स्थिति में छोड़ दिया कि अदृश्य शत्रु से कैसे लड़ा जाए। अंत में उन्होंने मौत से भरा बाण मारा और इसने विरुनचंबांग के साथ आए सभी राक्षसों को मार दिया और उसके घोड़े को भी मौत के घाट उतार दिया, यद्यपि वह अदृश्य था। अकेला पड़ने पर वह इतना भयभीत हो गया कि वह शत्रु सेना का मुकाबला नहीं कर सकता था। इसलिए उसने अपने दुपट्टे को उतारा और वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ दुपट्टे से अपनी हूबहू प्रतिकृति का निर्माण कर दिया।

जीवनी–शक्ति से संचारित हो जाने पर, उसकी प्रतिकृति अब युद्ध करने लगी और असली विरुनचंबांग आकाश पर्वत की ओर भाग गया। वहाँ पर वह पतित अप्सरा वनारिन से मिला जिसने उसे समुद्र के फेन में छिपने की सलाह दी।

अभी तक वह हनुमान की पकड़ से बाहर नहीं हो सका था। वानर ने आकाश पर्वत तक उसका पीछा किया जहाँ उनकी मुलाकात वनारिन से हुई। वास्तव में वह पतित अप्सरा बेचैनी से एक लंबे समय से हनुमान का इंतजार कर रही थी। एक बार अपने मित्र के साथ रुचिकर बातचीत में लीन होने पर, वह ईस्वर के आदेश का पालन करना भूल गई। इस पर उसने देवता के शाप को अपने लिए आमंत्रित कर लिया, जिससे वह केवल तभी मुक्त हो सकती थी जब वह विरुनचंबांग को खोजने में हनुमान की सहायता करती। हनुमान एक युवा व्यक्ति के रूप में, सुंदरता में कामदेव से भी उत्कृष्ट हो, उस अप्सरा के पास पहुँचे और मुँह फाड़कर चंद्रमा और नक्षत्रमंडल के समूह को दिखाते हुए, अपनी पहचान से आश्वस्त कर, उसे अपना बना लिया और उसके शापित जीवन का अंत कर दिया। फिर वे अप्सरा के द्वारा दिखाए मार्ग का अनुसरण करते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहाँ विरुनचंबांग फेन के रूप में छिपा हुआ था। हनुमान की विशाल पकड़ से बाल–बाल बचते हुए उसने मत्रों के उच्चारण से समुद्र में एक दरार बनाई और उसकी तलहटी में चला गया। किंतु वानर की लंबी पूंछ ने उसका पीछा किया तथा उसका अंत करने और उसे दंडित करने के लिए बाहर खींच लिया।

(ख) मालिवग्गब्रह्म का निर्णय

सद्धासुर और विरुनचंबांग की मृत्यु ने दसकंठ को पहले से कहीं अधिक प्रतिशोधी बना दिया। शत्रु की अभेद्यता ने अस्त्रों के प्रति उसके विश्वास को खत्म कर दिया। इसलिए राक्षसराज ने अब अस्त्रों के स्थान पर ऐसी किसी दूसरी योजना पर विचार किया जो राम के अस्तित्व को इस धरा से मिटा दे।

तब उसे अपने नाना ब्रह्म मालिवराज की याद आई जो देवताओं, गंधर्वों, नागों और सभी अलौकिक प्राणियों के स्वामी थे। वे एक ब्रह्म थे जिनके शब्द कभी भी असत्य नहीं होते थे। दसकंठ ने सोचा, 'यदि उन्हें राम की हार और मृत्यु के लिए शाप देने को राजी कर लिया जाए तब लंका और उसके राजा की सारी परेशानियों का सुखद अंत हो जाएगा।'

इस विचार को ध्यान में रखकर, दसकंठ ने नन्याविक और वायुवेक नाम के दो राक्षसों को इस विनम्र निमंत्रण के साथ यह आग्रह करते हुए स्वर्ग में भेजा कि वे लंका में पधार कर अपनी करुणामयी उपस्थिति में उसके और राम के बीच हुए झगड़े का निर्णय करें, जिसने पहले आक्रमण कर उसके देश को चारों ओर से घेर रखा है।

मालिवराज राम के दादा राजा अजपाल के मित्र थे। इसलिए उन्होंने झगड़े के निपटारे के लिए सहर्ष स्वीकृति दे दी। अतः देवी–देवताओं को लेकर वे स्वर्ग से नीचे लंका में आए। अगर वे नगर में प्रवेश करते तो राम के मन में उनकी निष्पक्षता को लेकर संदेह होता अथवा किसी वानर शिविर में उतरते तो दसकंठ उससे अप्रसन्न होता, इसलिए वे सीधे युद्धस्थल पर उतरे जो कि न तो राम से संबद्ध था और न ही दसकंठ से।

तत्क्षण दसकंठ स्वर्ग के स्वामी के पास पहुँचा और राम को आक्रमण के लिए दोषी ठहराया यह आशा करते हुए कि देवता उसकी मुसीबत के कारण को एकदम सही मान लेंगे। लेकिन निष्पक्ष मालिवराज इतने नीतिपरायण थे कि वे ऐसा नहीं कर सकते थे। इससे पहले कि वह इस विषय में कोई निर्णय देते, उन्होंने सभी देवताओं को अपनी मध्यस्थता का साक्ष्य बनाने के लिए बुलाना उचित समझा और राम को आरोपों का जबाब देने के लिए बुलवाया। क्षण भर में ही मौत की घाटी देवताओं की सभास्थली में बदल गई और निराशा की चीखें खुशी के ठहाकों में बदल गईं

राम अपने वफादार साथियों के साथ आए। मालिवराज जानना चाहते थे कि झगड़े को भडकाने वाला कौन था। दसकंठ ने तुरंत जबाब

दिया कि इसके लिए पूरी तरह राम जिम्मेदार है जिसने एक स्त्री के लिए व्यर्थ ही लंका पर घेरा डाल रखा है। इस स्त्री को उसने बिना पति अथवा पुत्र के जंगल में अकेला पाया था और उस पर तरस खाकर वह उसे अपने महल में ले आया था।

किंतु राम ने उसके आरापों को चुनौती दी और बताया कि कैसे सीता दसकंठ द्वारा अपहृत की गई और किस तरह वे उसका पीछा करते–करते इतनी दूर लंका द्वीप तक पहुँचे।

अंत में सीता वानरों और राक्षसों दोनों की पूरी चौकसी में वहाँ लाई गईं ताकि कोई भी पक्ष संदेह न कर सके कि सीता को दूसरे पक्ष ने सिखा दिया है। सीता की गवाही और सभी देवताओं की गवाही ने राम की बात का समर्थन किया। दसकंठ ने अपने आपको उन गवाहियों की सच्चाई को चुनौती देने में किंकर्तव्यविमूढ़ पाया। वह अपनी सफाई में केवल यही कह सका कि चूंकि देवता उसके द्वारा बार–बार हराये गये थे और दास बनाये गए थे, इसलिए, निस्संदेह, वे इस अवसर का लाभ उठाकर अपने वैमनस्य के गुबार को निकाल रहे हैं।

लेकिन अब तक दसकंठ की सच्चाई पर मालिवराज का विश्वास पूरी तरह से लड़खड़ा गया था और अंतिम सहारे के रूप में उसकी असंतोषजनक सफाई ने इसे पूर्ण रूप से तोड़ दिया। अतः देवता ने राक्षस को आदेश दिया कि वह सीता को उसके स्वामी को वापस करे और इस अन्यायपूर्ण झगड़े को खत्म करे। लेकिन दसकंठ अड़ा हुआ था। सच्चाई और न्याय के सामने हार मान लेने के लिए उसे प्रेरित करने वाली धमकी भरी सलाह व्यर्थ सिद्ध हुई। उसने आज्ञा मानने से मना कर दिया। नीतिपरायण मालिवराज ने क्रुद्ध होकर उसे राम के अस्त्र से मारे जाने का शाप दे दिया और अपने दिव्य साथियों के साथ स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया।

सीता आने वाले परम सुख की कल्पना में अपनी कुटिया में वापस चली गईं, राम मालिवराज के निर्णय से उत्साहित हो अपने शिविर में और अहंकार से चूर दसकंठ अपने महल में चला गया।

(ग) विशाल भाला, कपिलाबद

इसप्रकार अपनी अंतिम चाल से निराश होने पर, दसकंठ ने अब ईस्वर के द्वारा उसे दिये गये अपने विशाल भाले कपिलाबद की सुषुप्त शक्ति को जाग्रत करने और मालिवराज सहित सभी देवताओं को अग्नि की लपटों के हवाले करने के बारे में सोचा ।

इसलिए अपनी आदत के अनुरूप उसने एक तपस्वी का वेश धारण कर लिया तथा सुमेरु पर्वत की तलहटी में चला गया और वहाँ एक यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित की। फिर उसने देवताओं की मिट्टी की मूर्तियाँ बनाईं और वैदिक मंत्रों का उच्चारण करने लगा। आग से तेज लपटें निकलने लगीं। एक–एक करके वह मूर्तियों को विनाशकारी लपटों के हवाले करने लगा। जैसे–जैसे वे मूर्तियाँ आग की भेंट होती गईं वैसे–वैसे सारे दिव्य संसार में असहनीय ज्वलन–पीड़ा फैलने लगी। देवताओं के अधिपति ने परेशान होकर नीचे दृष्टि डाली और दसकंठ को विध्वंसक यज्ञ करते देखा। देवता तुरंत ईस्वर के पास दौड़े और उनसे शरण मांगी।

दयालु ईस्वर ने बाली, जो उस समय तक देवता के रूप में जन्म ले चुका था, से नीचे जाने, मेरु पर्वत को तोड़ने और उसे यज्ञ की अग्नि में फेंकने के लिए कहा।

आग के सामने शांत भाव से बैठे दसकंठ ने बाली को देखा। लेकिन राक्षस दसकंठ की देवता बाली से कोई बराबरी न थी। पराजित और निराश हो राजा लंका की ओर भाग गया।

दसकंठ को दुख भी हुआ और अप्रसन्नता भी, जब उसने ईस्वर को अपने शत्रु की सहायता करते हुए पाया क्योंकि उसने उसे पराजित करने के लिए बाली को पुनर्जीवित कर दिया था। लेकिन मंडो ने उसे सांत्वना देते हुए कहा कि शायद यह हनुमान था जिसने बिभेक के निर्देश पर बाली के रूप में उसे पराजित कर दिया था। शत्रुपक्ष का सलाहकार और सभी योजनाओं को विफल कर देने वाला, बिभेक ही इन

सारी विपत्तियों की जड़ है। उसको मारने का मतलब है शत्रु की हिम्मत तोड़ना। मंडो ने ऐसी सलाह दी और राजा ने उसको मान लिया।

तदनुसार, अगली सुबह वह अपने विशाल भाले कपिलाबद को हाथ में लेकर, बिभेक के विश्वासघाती जीवन का अंत करने के लिए चल दिया। जैसे ही वह युद्धस्थल पर पहुँचा, उसका सामना राम, लक्षण और बिभेक से हुआ। कपिलाबद बिभेक को मारने के लिए तीव्र गति से निकल पड़ा। लेकिन सौभाग्यशाली राक्षस मौत के वाहक से स्वयं को बचाने में काफी कुशल था, जबकि लक्षण ने उस पर पलटवार करने का प्रयास किया। लक्षण के बाण द्वारा प्रहार किए जाने पर, कपिलाबद ने केवल अपनी दिशा बदल दी और उस पराक्रमी पुरुष पर प्रहार कर दिया जिसने इसकी गति को रोकने का साहस किया था। दसकंठ के तीक्ष्ण बाण का प्रहार अपने वक्षस्थल पर लिए जाने के कारण लक्षण मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

लक्षण के गिरने ने राम के क्रोध को भड़का दिया। उनके धनुष ने मौत की ऐसी वर्षा करनी शुरु कर दी जो राक्षसों ने न कभी देखी थी और न ही उसकी कल्पना की थी। दसकंठ के अलावा सभी राक्षस धराशायी हो गए और कोई भी अस्त्र, सिवाय खाली तरकस के उसके पास न बचा। निरंतर बढ़ते हुए क्रोधावेग से प्रति क्षण मौत की वर्षा इतनी तीव्र गति से होने लगी कि दसकंठ को भी अपने पैरों पर वापस भागना पड़ा और अपने महल की सुरक्षित दीवारों में शरण लेनी पड़ी।

ज्यों ही युद्ध का ज्वार शांत होता दिखाई दिया, तभी कृतज्ञ बिभेक अपने जीवन को बचाने वाले को पुनर्जीवित करने के प्रयासों में जुट गए। उस समय केवल तीन जड़ी–बूटियाँ थीं, 'तू–तुआ, संकरनी और त्रिजावा' जो कपिलाबद द्वारा दिए गए कष्ट को कम कर सकती थीं और जीवन को बचा सकती थीं। लेकिन वे जड़ी–बूटियाँ उत्तराकुरु द्वीप के संजिबसंजि पर्वत पर ही उगती थीं। उन जड़ी–बूटियों को इंदाकल पर्वत की गुफा में रहने वाली ईस्वर की गाय के गोबर में मिलाना था। उनको और कोई नहीं बल्कि वही ला सकता था जो अपना मुख फाड़कर चंद्रमा और तारों को अपने अंदर ले ले। इसलिए हनुमान तुरंत उन पर्वतों की

ओर उड़ गए और पलक झपकते ही सभी आवश्यक दवाओं को लेकर लौट आए। अब उन दवाओं को देने से पहले उनको पीसना बहुत आवश्यक था। चूर्ण बनाने की सिल्ली पाताल के राजा कालनाग के पास थी और उसका बेलन दसकंठ के पास था जिसका प्रयोग वह अपने तकिए के रूप में करता था। इसलिए हनुमान ने तुरंत पाताल की ओर प्रस्थान किया और बहुत जल्दी वे सिल्ली लेकर वापस आ गए। तब वे बेलन के लिए दसकंठ के महल में गए।

उन्होंने सभी को तंत्र–मंत्र से गहरी नींद में सुला दिया और बड़ी ही सावधानी से वहाँ प्रवेश किया जहाँ दसकंठ सुंदर मंडो को अपनी बाँहों में प्यार से लिटाए सो रहा था। हनुमान ने राक्षस के दस मुँह वाले सिर के नीचे से बेलन खींच लिया और वे लौटने ही वाले थे कि उनके शरारतपूर्ण दिमाग में एक विचित्र विचार आया। अपने होठों पर एक नटखट मुस्कान के साथ उन्होंने राजा के बाल लिए और उन्हें रानी के बालों से बाँध दिया। फिर उन्होंने शाप दिया कि ये गांठें तभी खुलेंगी जब उसकी रानी उसके सिर पर तीन थप्पड़ लगाएगी। तब वानर महल से शिविर के लिए चल दिया। लेकिन चलने से पहले उसने दसकंठ के माथे पर अपना शाप और उससे मुक्ति का उपाय लिख दिया।

इसप्रकार सभी आवश्यकताएं पूरी कर लेने पर दवाई आसानी से तैयार कर ली गई और दे दी गई। लक्षण मृत्यु शैया से उठ गए और दुख आनंदोत्सव में बदल गया।

उसी बीच दसकंठ भी अपनी सम्मोहक नींद से उठा। निःशंक राक्षस ने उठते समय सबसे पहले अपना सिर उठाया। लेकिन अचानक झटके के साथ उसे बालों की जड़ में दर्द महसूस हुआ। गुस्से में आकर उसने अपने सिर को घुमाया, परंतु दूसरे झटके से उसे फिर दर्द हुआ। किंतु इसने उसकी दुखपूर्ण हालत को स्पष्ट कर दिया। अधीरता से उसने गांठ को खोलने की कोशिश की किंतु वह व्यर्थ सिद्ध हुई। उसने अपने राक्षस सेवकों को पुकारा और अपने गुरु गोपुत्र को बुलवाया। ऋषि अविलंब अपने शिष्य की मदद के लिए आ गए। उनकी खोजी आँखें राजा के मस्तक पर पड़ीं। लेकिन उसके उपचार के लिए जो उपाय बताया

गया था, वह अत्यधिक अधम था। कैसे अपने शक्तिशाली शिष्य को वह एक औरत से थप्पड़ खाने के लिए कहता, एक ऐसा काम जो न केवल उसके सम्मान को आहत करता वरन् अशुभ और अनिष्ट का भी सूचक था? इसलिए गोपुत्र ने उस उपचार को नकार दिया और अपनी चमत्कारिक शक्ति का प्रयोग करने लगा। लेकिन उसका अपनी शक्ति का प्रयोग करना व्यर्थ ही रहा। गांठ वैसी ही उलझी रही जैसी वह थी और दोनों सिरों के बीच खींचतान होने लगी जिसने उनके दर्द को और अधिक बढ़ा दिया। अब केवल उस अधम उपचार को अपनाने के अलावा क्या किया जा सकता था जो उस शैतान वानर के द्वारा बताया गया था। महान और शक्तिशाली राजा होते हुए भी उसने अपने शाही सिर को अपनी पत्नी से तीन बार थप्पड़ खाने के लिए झुका दिया।

कितने विनाशक हैं ये वानर! उन्होंने न केवल उसके प्रभाव और प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाई वरन् उसके घाव पर नमक भी छिड़क दिया। उन सबका पूरी तरह से विनाश कर दिया जाना चाहिए।

इसलिए प्रतिशोध लेने का निश्चय कर दसकंठ ने अपने भाई चक्रवाल के राजा दसबानासुर को बुलवाया। जैसे ही उसने राक्षसराज पर पड़ी महान आपदा के बारे में सुना, वह तुरंत युद्धस्थल की ओर दौड़ा, अपने शरीर को ब्रह्मा के शरीर के समान विस्तृत किया और अपनी वृहद जीभ से सूर्य को ढक दिया। उसका भार सहने में असमर्थ पृथ्वी धँस गई और उसका आधा शरीर डूबकर उसके बीचोंबीच चला गया। तब उसने दो बड़ी दीवारों की तरह अपनी दोनों भुजाएं बाहर निकालीं और वानर सेना को घेर लिया। बेचारे जानवर घोर अंधेरे से ढक गए, वे उसके गुफा के समान मुख में लडखड़ाते गिरते गए। राक्षस उन्हें बिना चबाए निगलता चला गया। निराशाजनक चीखें शिविर में चारों तरफ सुनाई पड़ने लगीं। किंतु राम के मन में न तो भय था और न ही निराशा।

उनके आदेश से सुग्रीव ने राक्षस की दोनों भुजाएं काट दीं। उस तीक्ष्ण दुख को सहने में असमर्थ वह राक्षस तुरंत सिकुड़ कर अपने असली स्वरूप में आ गया। तत्क्षण सारे क्षेत्र में चकाचौंध कर देने वाला प्रकाश फैल गया। फिर राम ने घातक प्रक्षेपास्त्र छोड़ा। यह राक्षस को मारता

हुआ उसके पेट को फाड़ कर बाहर निकल गया। जिन वानरों को उसने निगल लिया था, जमीन पर गिर गए जो अभी तक अनपचे, पर निर्जीव थे। इसलिए राम ने एक बाण छोड़ा। यह इंद्र के निवास पर पहुँचा और उसे युद्ध क्षेत्र में आने के लिए आमंत्रित किया। दयालु देवता ने उन सभी मृत शरीरों पर पवित्र जल छिड़का और एक बार उन्हें पुनः जीवन दान दिया। सारा शिविर खुशी और जय–जयकार से गुंजायमान हो उठा।

(घ) जीवन का अमृत

अब मंडो अपने पति की सहायता के लिए आई। वह मौत को उसकी विनाशकारी शक्ति से वंचित करने और मृत को जीवित करने का उपाय जानती थी। यह जीवन का अमृत था जो उसने उमा से सीखा था। एक बार अमृत तैयार किया गया था और मृत्यु–क्षेत्र में इसे छिड़का गया था, उसके पति के सभी सेनापति अपनी कब्रों से जीवित हो बाहर आ गए थे और उसके लिए लड़े थे। राम और उसकी सेना के अस्त्र अमृत के उस अपराजेय कवच के विरुद्ध क्या कर सकते थे? यदि राक्षस मारे भी गए तो भी वे नई शक्ति के साथ शत्रु का सामना करने के लिए फिर से खड़े हो जाएंगे। इसलिए मंडो ने संजीव अनुष्ठान को संपन्न करने के लिए शीघ्रता की जो उसे जीवन–अमृत प्रदान करता।

इसप्रकार अचानक उत्साहित हुए दसकंठ ने युद्धक्षेत्र के लिए अपने दो पुत्रों, दसगिरिवन और दसगिरिधर के साथ प्रस्थान किया। लक्षण के बाणों ने दोनों भाईयों को मृत्यु के मुँह में पहुँचा दिया, जबकि राम के पराक्रम ने पिता को पीछे हटने के लिए विवश कर दिया।

ऐसी चिंताजनक स्थिति में मंडो का जीवन–अमृत पहुँच गया। तुरंत राक्षस ने उसे मौत की घाटी पर छिड़क दिया। उसी क्षण राक्षसों की सारी सेना जीवित हो उठी और शत्रु का सामना करने लगी। कुंभकर्ण अपने अजेय भाले के साथ उठ खड़ा हुआ, सहस्सतेज अपने एक हजार मुखों के साथ, सेंग आदित्य अपने चमत्कारिक शीशे के साथ, और उन सबके साथ अन्य दूसरे राक्षस भी अपनी भयंकरता के साथ उठ खड़े हुए। युद्ध एक बार फिर से शुरू हो गया। बल्कि यह एक ऐसा युद्ध था जिसके

अंत का पता न था क्योंकि मृतकों को जीवन प्रदान करने तथा उन्हें दोबारा युद्ध क्षेत्र में वापस लाने के लिए वहाँ अमृत था।

भाग्य के इस अनर्थकारी परिवर्तन से बचने का कोई रास्ता न था केवल इसके कि मंडो द्वारा किए जाने वाले अनुष्ठान में बाधा डाली जाए। लेकिन यह तभी संभव हो सकता था जब उसके हृदय में वासना उत्तेजित की जाए क्योंकि कामोत्तेजक मनोदशा से मुक्त होने पर ही अनुष्ठानकर्ता इसमें सफलता पा सकता था।

इसलिए, सभी युक्तियों के स्वामी हनुमान ने दसकंठ का स्वरूप धारण कर लिया, निलानन ने उसके हाथी का, जंबुवान ने उसके महावत का, जबकि बहुत से वानरों ने स्वयं को राक्षसों के रूप में बदल लिया। फिर नकली दसकंठ ने विजयी जुलूस के साथ लंका के लिए प्रस्थान किया। जुलूस लंका की गलियों में से धीरे–धीरे आगे बढ़ता गया और रानी मंडो के पूजास्थल पर पहुँच गया जहाँ वह जीवन–अमृत को प्राप्त करने वाले अनुष्ठान में लीन थी।

अब जीवन का अमृत किस काम का? राम अब अपने भाई के निर्जीव शरीर तथा अपनी निर्जीव सेना के साथ मृत पड़े हुए हैं। इसप्रकार नकली दसकंठ ने रानी मंडो से झूठ बोला। अपनी आँखों से खुशी की चमक बिखेरते हुए वह अनुष्ठान वाले आसन से उठ गई और नकली दसकंठ की बाहों में आकर समा गई। एक अपवित्र चुंबन की छाप उसके गुलाबी होठों पर छोड़ दी गई और एक अपवित्र आलिंगन ने उसके कोमल शरीर को जकड़ लिया। इस प्रकार चतुर हनुमान ने सीधी–सादी रानी की पवित्रता भंग कर दी। अनुष्ठान को बाधित कर देने के बाद, वह मंडो को यह बहाना बनाकर छोड़ गए कि बिभेक अभी भी जीवित है और वह उसके विश्वासघाती जीवन का अंत कर अवश्य वापस लौटेगा।

उसी समय दसकंठ वहाँ अधीरता से अमृत की प्रतीक्षा कर रहा था। सभी पुनर्जीवित राक्षस दोबारा से मारे जा चुके थे, और अब उन्हें पुनर्जीवन देने वाला अमृत नहीं था। घंटों पर घंटे बीतते गए, लेकिन उसकी कोई ताजी आपूर्ति नहीं हो रही थी। पुनर्जीवित राक्षस घमंड से

भरे हुए थे, परंतु अमृत से रहित होने के कारण वे सब आकाश में वापस चले गए। अब दसकंठ फिर अकेला रह गया। बार–बार वह पीछे मुड़ कर देखता रहा, इस आशा में कि अमृत लाने वाला दिखाई दे जाए लेकिन उसके सामने रास्ता सूना पड़ा था। अंत में वह ज्यादा प्रतीक्षा न कर सका। अधीरता और शीघ्रता से उसने मंडो के पूजास्थल की ओर प्रस्थान किया।

वहाँ सत्य अपने आप स्पष्ट हो गया। हनुमान की निर्लज्जता से भौंचक्का, क्रोधोन्मत्त राजा शर्मसार हो गया और दुखी रानी अपनी पवित्रता के भंग किये जाने पर शर्मिंदा हो, मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

वे दोनों यद्यपि उनकी युक्तियों से परेशान थे, फिर भी किसी प्रकार के मनोमालिन्य ने उनके प्रेम पर बुरी छाया नहीं डाली, वह सदा की तरह जीवंत और निर्मल था।

(ङ) जीवात्मा का पात्र

अपनी सारी कार्यविधियों और अपनी प्रिय पत्नी के अपमान से निराश होकर, दसकंठ अब पूरी शक्ति से विनाश करने के लिए क्रोधोन्मत्त हो गया। उसकी बीसों आँखें क्रोध की लपटें बरसाने लगीं, लगता था कि मानो वे समस्त सृष्टि को अग्निकांड में भस्म करना चाहती हों। वह दुनिया से शत्रु को मिटाने के संकल्प के साथ युद्धक्षेत्र की ओर चल पड़ा।

दोनों सेनाएं आमने–सामने आ गईं और राम ने दसकंठ का सामना किया। सारा आकाश बाणों की बौछारों से भर गया, जिन्हें उनके पराक्रमी धनुष निरंतर बरसा रहे थे। राम ऐसे पराक्रम से लड़े जो इससे पहले न देखा गया और न सुना गया। लेकिन दसकंठ सभी अस्त्रों से प्रतिरक्षित था। उसका मस्तक कट गया, किंतु पुनर्जीवित हो गया, उसकी भुजाएं कट गईं, किंतु दोबारा जुड़ गईं। कोई भी हथियार, चाहे कितना ही विनाशक क्यों न हो, उस अभेद्य राक्षस का कुछ भी नुकसान न कर सकता था।

अंत में बिभेक राम की सहायता के लिए आए। उन्होंने उन्हें बताया कि दसकंठ की आत्मा उसके शरीर से बाहर निकाली जा चुकी है और उसे उसके गुरु गोपुत्र के संरक्षण में एक पात्र में रखा गया है। दसकंठ केवल तभी मर सकता है जब पात्र में रखी आत्मा को कुचल कर मार दिया जाए।

हनुमान ने इस काम को करने की इच्छा व्यक्त की किंतु उन्होंने राम को सचेत किया कि वे किसी भी प्रकार के छल–कपट का सहारा ले सकते हैं, इसलिए उन्हें अपने निष्ठावान सेवक पर न तो कोई संदेह होना चाहिए और न ही आश्चर्य, यदि वे उन्हें शत्रु के शिविर में देखें। राम को सतर्क करके, पवन पुत्र ने गोपुत्र के आश्रम की ओर प्रस्थान किया जिसे वे मूढ़ गुरु के रूप में जानते थे। उनके साथ सहकर्मी के रूप में इंद्र का पौत्र अंगद भी गया।

दोनों वानर आश्रम में पहुँच गए। उनके गालों पर आँसू बह रहे थे। राम द्वारा उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया जिनकी उन्होंने बड़ी निष्ठापूर्वक सेवा की थी और जिनके लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इसप्रकार हनुमान ने ऐसी शब्दावली में गोपुत्र से झूठ बोला जिससे उनकी उनके प्रति सहानुभूति जाग्रत हो गई। अब उनसे घृणा होने पर उन्होंने उन्हें छोड़ दिया है, ताकि वे उनसे महान लंका के राजा की सेवा कर सकें जो यह जानता है कि निष्ठावान सेवक को कैसे पुरस्कृत किया जाता है। चूंकि उन्होंने तो उसके साथ बुरा किया था, उसके पुत्रों और सेनानायकों को मार दिया था, वे अब उसके पास अकेले जाने से डर रहे हैं कि कहीं उन्हें देखते ही राजा इतना अधिक क्रुद्ध न हो जाए कि उन्हें अपनी याचिका प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना ही वह उन्हें मार दे। 'क्या दयालु गुरु उन्हें राजा के पास ले जा सकेंगे और उनके पक्ष में बोल सकेंगे?' इसप्रकार चतुर हनुमान ने अश्रुपूर्ण शब्दों में उनसे अनुनय–विनय की।

गोपुत्र ने उन पर विश्वास कर लिया और उनको अपने साथ राजा के पास ले जाने के लिए तथा उनका पक्ष रखने के लिए सहमत हो गए। अतः वे राजमहल जाने के लिए तैयार हो गए। लेकिन वे उस पात्र

का क्या करें जिसमें राजा की आत्मा रखी हुई थी? शुभचिंतक हनुमान ने कहा कि राम पात्र को चुराने की उसुकता के कारण हर अवसर का लाभ उठाने की तैयारी में हैं। इसलिए उन्होंने ऋषि से प्रार्थना की कि वे उस पात्र को अपने साथ ले चलें। मूर्ख ऋषि ने किसी प्रकार के संदेह को अपने मन में न पनपने देते हुए वैसा ही किया जैसा उनसे कहा गया था।

लंका के गांवों के घुमावदार रास्तों से होते हुए वे चलते गए। हनुमान को देखते ही सारे राक्षस बड़ी ही भयाकुलता से भागने लगे–कुछ अपने छोटों को बाहों में उठाए, कुछ अपनी माँओं को ले जाते हुए और कुछ अपनी पत्नियों को। लंका के गांवों की गलियों में उस विशाल वानर को अचानक देखते ही एक भयानक कोलाहल हो गया।

अंत में वे शहर के द्वार पर पहुँचे। एक नई परेशानी वहाँ आ खड़ी हुई। पात्र शहर के अंदर नहीं ले जाया जा सकता था क्योंकि आत्मा दसकंठ की ओर उड़ जाती, जैसे एक छोटा पक्षी अपनी माँ से मिलने के लिए उसकी ओर दौड़ता है जब प्रतीक्षा कर रहे उसके नन्हें कानों में माँ के पंखों की फड़फड़ाहट पहुँचती है। हनुमान ने सुझाव दिया कि पात्र को अंगद की देखरेख में रख देना चाहिए जो द्वार पर ऋषि की प्रतीक्षा करेगा। अतः वैसा ही किया गया। अंगद को पात्र की देखरेख के लिए छोड़ दिया गया और हनुमान गोपुत्र के पथ प्रदर्शन में लंका में प्रविष्ट हो गए।

यह कैसा अप्रत्याशित सुनहरा अवसर था कि पात्र अंगद की देखरेख में छोड़ दिया गया! हनुमान स्वयं इस अवसर को पाने में सफल न हो सके। इसलिए उन्होंने ऋषि से इस बहाने के साथ थोड़ी देर के लिए अनुमति मांगी कि अंगद अकेला छोड़ दिया गया है, इसलिए उसे आवश्यक निर्देश देने हैं ताकि वह राक्षसों द्वारा शत्रु समझ कर मार दिए जाने से अपना बचाव कर सके। इसप्रकार उनसे अनुमति लेकर वे ऋषि को छोड़ कर अंगद के पास आ गए। तब अपनी चमत्कारिक शक्तियों की सहायता से उन्होंने पात्र की एक प्रतिकृति का निर्माण किया और अंगद को उस वास्तविक पात्र को समुद्र के किनारे ले जाने और वहाँ जमीन में गाड़ देने की सलाह दी। इसके बाद वह द्वार की ओर लौट आए और

ऋषि के पहुँचने की प्रतीक्षा करे जिनको उसे उस प्रतिकृति को लौटाना है। तत्पश्चात् वह फिर वापस उस समुद्र के किनारे चला जाए और उनकी प्रतीक्षा करे। जब कभी वह उन्हें आकाश में चंद्रमा और तारों को मुँह फाड़कर अंदर लेते हुए देखे, वह पात्र के साथ आकाश में छलांग लगाए और उस पात्र को उन्हें दे दे।

इसप्रकार प्रत्येक चीज का अपनी संतुष्टि के अनुसार प्रबंध करके वे ऋषि के पास लौट गए और बहुत शीघ्र उन्होंने स्वयं को लंका के राजा के सामने पाया।

कभी चुपचाप रोते हुए और कभी आंसुओं से गला अवरुद्ध करते हुए, किंतु सदैव गोपुत्र के द्वारा सँभाले जाते हुए, वानर ने राम द्वारा उसके प्रति दुर्व्यवहार किए जाने की एक झूठी कहानी गढ़ी और राजसी सहानुभूति प्राप्त कर ली। इससे अधिक दुखद और हास्यास्पद बात क्या हो सकती है कि लंका जलाने का जोखिम उठाने के लिए उसे केवल एक नहाने वाली तौलिया देकर पुरस्कृत किया गया? वानर ने झूठ बोला। इस निर्णय पर अपने हाथों से उसे थपथपाते हुए लंका के राजा ने वानर को अपने पोष्य पुत्र की तरह स्वीकार किया और उसे अपना सच्चा प्रेम और सहानुभूति प्रदान की, जो केवल उसे धोखा देने और उसकी मौत में वृद्धि करने आया था।

अगले दिन हनुमान ने स्वेच्छा से अकेले लड़ने की इच्छा व्यक्त की क्योंकि जैसा उसने कहा था कि उन दोनों नगण्य से व्यक्तियों को पकड़ना उसके लिए मुश्किल काम नहीं है। हनुमान को विरोधी पाले में देखकर वानर भाग खड़े हुए और लक्षण को किसी समय उनके सेनापति रहे हनुमान का सामना करने के लिए अकेला छोड़ दिया। लक्षण हनुमान की तात्कालिक गतिविधियों से अपरिचित होने के कारण उनको शत्रु रूप में सामने खड़ा देख आश्चर्यचकित हो गए। फिर भी उन्होंने वानर के साथ युद्ध किया। वानर उनके साथ केवल एक नाटकीय युद्ध करता रहा जब तक अंधेरे के कारण युद्ध बंद होने की घोषणा नहीं हो गई।

हनुमान लंका वापस लौट आए जहाँ राक्षसराज उनकी बड़ी ही बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा था। राक्षसों ने राजा को बताया कि किस तरह वानर युद्धक्षेत्र को हनुमान के नियंत्रण में छोड़कर भाग गए। यदि अंधेरा नहीं हुआ होता तो वह राम और लक्षण को बंदी बनाकर ले आता।

दसकंठ यह सुनकर बहुत खुश हुआ और उसने पुरस्कारस्वरूप उसे इंद्रजित के सारे खजाने के साथ–साथ उसकी चंचल मति वाली पत्नी भी दे दी जो वानर के आलिंगन में आते ही सब कुछ भूल गई– अपना सम्मान, पूर्व पति के प्रति अपना प्रेम, अपनी स्वामीभक्ति–अंत में उसने केवल एक ही बात याद रखी कि प्रेम से वीरान उसके हृदय ने एक ऐसे व्यक्ति को पा लिया है जो उससे खुश है और उसकी कामवासना की पुकार का उत्तर देने के लिए तैयार है।

सुबह होने पर दूसरे दिन का युद्ध आरंभ होने का बिगुल बज गया। इस बार राजा भी हनुमान के साथ गया। यह निश्चित हुआ कि हनुमान तो आकाश में छलांग लगाकर सूर्य को ढक देगा और इन दोनों व्यक्तियों को पकड़ लेगा, जबकि दसकंठ सेना पर हमला बोल देगा और उन सभी को मार देगा। किंतु अपने सच्चे मन से हनुमान उसी दिन से ही उस राक्षस से बदला लेने की सोच रहे थे।

ज्योंही वायुपुत्र आकाश के बीचोंबीच पहुँचे, उन्होंने चंद्रमा और तारों को मुँह फाड़कर अंदर लेना शुरू कर दिया। समुद्र के किनारे चौंकन्ने बैठे अंगद ने चमत्कारिक प्रदर्शन देखा और उसने तुरंत आकाश में छलांग लगाई और उस विशाल वानर को पात्र दे दिया।

हनुमान ने पात्र ले लिया और इसे राम के पास लेकर आए। उनकी प्रसन्नता और कृतज्ञता का कोई ठिकाना न रहा। 'असंख्य तारों को तो एक बार गिना जा सकता है, अगाध गहराई को भी एक बार मापा जा सकता है, किंतु हनुमान की समझ की कोई थाह नहीं है अथवा उनकी बुद्धिमत्ता को मापा नहीं जा सकता है।' यह कहकर लक्षण ने उनकी प्रशंसा की। 'रत्नों में से एक रत्न हैं हनुमान, उनके जैसा दूसरा तीनों लोकों में भी नहीं पाया जा सकता।' राम ने कहा।

इसके बाद इस बात पर सहमति हुई कि अब राम को अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ देना चाहिए जबकि हनुमान उसकी आत्मा के पात्र को कुचल कर टुकड़े–टुकड़े कर देंगे। उसके बाद हनुमान युद्धक्षेत्र में लौटे जहाँ दसकंठ वानर सेना को अपने मौत के जाल में समेट रहा था। हनुमान को देखकर उसके मन में खुशी की लहर दौड़ गई और उल्लास में उसने अपने हाथों से ताली बजाई। लेकिन अचानक उसकी उल्लासभरी आँखों ने अपनी चमक खो दी और उनसे निराशा झलकने लगी। उसने वानर की उपहासभरी आवाज को सुन लिया था जो व्यंग्यात्मक टिप्पणियों के साथ उसकी आत्मा के पात्र को घुमा रहा था। उसका दिल एक अज्ञात भय से काँप गया और घोर निराशा में उसकी हिम्मत ने जबाब दे दिया। एक जीवित मृत की भावना ने उस पर आधिपत्य कर उसे गतिहीन बना दिया। अंततः उसके मुँह से कुछ शब्द हल्के से निकले। क्या यह उसका निष्ठावान हनुमान है, उसका प्रिय पोष्य–पुत्र! उसने उसे एक पिता का प्रेम प्रदान किया, क्या उसे केवल फाँसी के तख्ते तक घसीटने के लिए? उसने उस पर मित्र के समान विश्वास किया, क्या केवल विश्वासघात करके उसे मौत तक पहुँचाने के लिए! क्या इस संसार में कृतज्ञता नाम की कोई चीज नहीं रही? क्या अब विश्वास को विश्वासघात से पुरस्कृत किया जाता है, प्रेम को घृणा से और उपकार को अकृतज्ञता से? लेकिन कुछ भी हनुमान को बेचारे राजा के प्रति दया से प्रेरित न कर सका–न तो कोई प्रतिवाद, न कोई पाप का भय। अब केवल एक ही चीज उसे पात्र वापस लौटाने के लिए प्रेरित कर सकती थी। वह थी, सीता को उसके स्वामी को समर्पित कर देना। किंतु वह राजा अपनी बात पर अड़ा हुआ था। उसे सीता को वापस करने के स्थान पर मौत के मुँह में जाना मंजूर था। प्रेम के लिए वह लड़ा और प्रेम के लिए ही वह मर जाएगा। अपने प्रेम के लिए लड़ने से मिलने वाले सम्मान को छोडने के स्थान पर वह मौत का आलिंगन करेगा। इस जीवन में उसका प्रेमातुर हृदय, यद्यपि सीता के प्रेम को प्राप्त नहीं कर सका, लेकिन आने वाले जीवन में, ईश्वर की इच्छा से, वह उसके हृदय में स्थान अवश्य बना लेगा और जिस चित्र को उसने अपने हृदय में एक लंबे समय से धारण किया हुआ है, उसे जीवित रूप में अवश्य प्राप्त करेगा और उससे वह परमसुख प्राप्त करेगा जिससे उसे इस दुखित जीवन में वंचित रखा गया है।

यह कहते हुए अभागे राजा ने, जिसके सिर पर मौत का साया मँडरा रहा था, युद्धक्षेत्र छोड़कर लंका के लिए यह प्रतिज्ञा करते हुए प्रस्थान किया कि अपनी रानी मंडो से अंतिम विदाई लेने के बाद वह अगले दिन अपने प्रारब्ध का सामना करेगा।

(च) दसकंठ का वध

हमेशा की तरह प्रकाशमान और सुनहरा दिन निकल आया, नई आशा, नए जीवन और नई ऊर्जा का संचार करते हुए। लेकिन लंका के महल में उत्साह की कोई हलचल नहीं थी, आशा की कोई किरण नहीं थी। आशाओं को गलाती हुई और अभिलाषाओं को विस्फोट से उड़ाती हुई प्रलय और मौत विजय की धरती पर चारों ओर फैली हुई थी।

यह दसकंठ के जीवन का अंतिम दिन था। इसके बाद, यह आकर्षक दुनिया उसकी आँखों के सामने से सदा के लिए ओझल हो जाएगी। इसके बाद कोई भोर उसके जीवन की दिनचर्या का स्वागत नहीं करेगी, शाम को चलने वाली कोई मंद पवन उसे आराम से सुलाने के लिए नहीं बुलाएगी। उसके सामने चारों तरफ अंधकार का साम्राज्य था जहाँ संसार की सारी स्मृति स्वयं ही विस्मृति में खो जाती है और खुशी दिलाने वाली कोई पुरानी मधुर याद नहीं आती। आज, उसे इस संसार से और इसकी मधुर यादों से निश्चित ही विदा लेनी है। इसलिए वह एक दिन का युद्ध–विराम होने पर, विपत्ति की साथी और दुख में सदा सहभागी, मंडो से विदाई का निवेदन करने के लिए वापस आया था।

जिस कमरे में उसने मंडो के साथ अनेक रातें सुखपूर्वक बिताई थीं, वही राजा अब उससे विदा ले रहा था। अभागी रानी अब उसके कदमों में पड़ी थी–मुरझाई दृष्टि से, यद्यपि वह अभी यौवनावस्था में थी। दुख आंसुओं की निरंतर बहती धाराओं में द्रवित होने लगा और उसके उदास गालों पर बहने लगा। आज से उसकी तलाशती आँखों के सामने अपने स्वामी के बिना महल का सूनापन होगा। विजय की भूमि लंका अब अपने विजेता के बिना रहेगी। प्रकाश जो कभी क्षीण होना नहीं जानता था, अब हमेशा के लिए समाप्त होने जा रहा था। उसका पराक्रमी पति

जिसका सामना करने से देवता भी डरते थे, अब एक मनुष्य के हाथों वह अपनी मौत से मिलने वाला था। उसका स्नेही पति, जिसने उसे शीतलता देने वाले छाते के समान संसार के आघातों से एक लंबे समय तक बचाए रखा, अब अपने को मृत्यु के हवाले करने जा रहा था। अब से वह अकेली ही रहेगी जिसका कोई मित्र नहीं होगा, उसकी खुशियों को पूरा करने के लिए अथवा उसके दुख में सहभागी बनने के लिए। उसके पति के अलावा और कोई उसके हृदय की शून्यता को नहीं भर सकता। इसलिए उसने हाथ जोड़कर उससे प्रार्थना की कि वह सीता को वापस लौटा दे और उस विपत्ति से बचे जो सारी लंका और उसके स्वामी को निगलने के लिए तैयार है। लेकिन राक्षसराज अपनी बात पर अडिग रहा। कोई भी उसे सीता को वापस करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकता था। जिसके लिए उसके पराक्रमी पुत्र और समर्पित सैनिक मौत को गले लगा चुके थे, उनके बलिदान के क्रोध से उसका सदा सामना होता रहेगा और वह देवताओं के लिए हँसी का पात्र भी बन जाएगा। इसलिए सीता को लौटाने का तो प्रश्न ही नहीं था। अब चाहे जो हो, वह बहादुरी से शत्रु का सामना करेगा और सम्मानपूर्वक प्रेम की वेदी पर अपने जीवन का बलिदान करेगा। अत्यंत दुख से भरे, किंतु दृढ़ संकल्प के साथ अंत में स्वयं को उसने मंडो से अलग कर लिया जैसेकि सूर्य ने स्वयं ही अपने को अपनी तेजस्विता से खाली कर लिया हो और युद्धक्षेत्र के लिए चल पड़ा जहाँ से उसे कभी नहीं लौटना था।

किंतु जब उसे इस सुंदर संसार से निश्चित रूप से जाना है तो क्यों न वह सराहनीय और गौरवपूर्ण तरीके से जाए? इसलिए उसने सुंदर देवताओं के सुंदर राजा इंद्र का स्वरूप धारण किया और शेरों द्वारा खींचे जाने वाले अपने रथ पर स्वयं को विराजमान किया। महल के गेट से बाहर निकलने पर एक बार पुरानी स्मृतियों ने उसे वापस लौटा लिया। उसने अपनी उदास आँखों से पीछे देखा, वहाँ महल था और उसकी मजबूत चहारदीवारी में वह छूट गयी थी जिसे वह सबसे ज्यादा प्यार करता था और जो उसके लिए सबसे महत्व की थी। उसकी जीवनरहित दीवारों के बीच उसने जीवन को जाना था और प्रेम की अनुभूति की थी लेकिन अब उससे बाहर जाकर वह मौत को जानेगा और नफरत का

स्वाद चखेगा। महल, जो एक समय उसके लिए शांति का स्वर्ग था, उसका घर अथवा विश्रामस्थल था, अब घर वापसी पर उसका स्वागत नहीं करेगा।

वहीं एक बगीचा था—एक आनंददायक बगीचा, उसकी मीठी—मीठी यादों से भरा हुआ। बगीचा अब भी वहाँ था, फूलों से सजा हुआ और फलों से लदा हुआ। उसके अहाते में सीता थी जिसके लिए उसने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया था, पर सब कुछ हार गया था। निस्संदेह वह उसे प्रेम करता था, अन्यथा उसके प्रेम के बदले में नफरत देने पर वह उस पर कभी क्रुद्ध क्यों नहीं हो सका? क्या वह उसे अंतिम बार देखने जाएगा? नहीं ऐसा नहीं हो सकता! सीता ने छीन लिया था उसकी खुशियों को, उसके जीवन को, उसके वंश को, और उसके देश को। लेकिन जिसे वह नहीं लूट सकी, वह था उसका सम्मान, जो उसके लिए सर्वोपरि था। निश्चित मृत्यु के इस द्वार पर आकर, वह उसे उसकी इस बहुमूल्य अंतिम धरोहर को लूटने की अनुमति नहीं देगा। वह किसी को भी हँसी उड़ाने का मौका नहीं देगा कि वह मृत्यु का सामना करने से पीछे हट गया। सीता की एक काल्पनिक मूर्ति उसने एक लंबे समय से अपने हृदय में संजो रखी थी और इसके साथ ही वह प्रेम की वेदी पर चढ़ेगा और बिना डगमगाए और बिना पीछे देखे अपने जीवन का बलिदान कर देगा।

इस प्रकार दुखी राजा आगे बढ़ गया। एक मौन अकेलेपन ने उसके हृदय पर दबाब बना दिया और उसने जीवित मौत की सिहरन अनुभूत की। क्या अंतिम क्षण इतना अकेला! क्या मौत शून्यता का आवरण ओढ़े थी! यदि ऐसा नहीं, तो क्या अपनी विशाल सेना के बीच में खड़ा वह अपने को एकाकी और अकेला महसूस कर रहा है? किंतु सेना भी अपना उत्साह खो चुकी थी। उसके आगे बढ़ने में कोई उत्साह नहीं था और उसके नगाड़ों में भी पराक्रम को जगाने के लिए कोई शक्ति नहीं थी। और इसकी ध्वजा, जो कभी आकाश में बड़े गर्व से फहराया करती थी, म्लान होकर ऐसे झुकी हुई थी कि मानो यह विजयी सेना के आगे—आगे फिर कभी नहीं चलेगी। चीत्कार करते हुए उल्लू उसके रथ

पर झपट्टा मार रहे थे, जबकि चहकने वाली चिड़ियाँ अपने अभिनन्दित स्वर खो चुकी थीं। सैनिकों के जयघोष जो शत्रुओं के साहसी हृदयों में कँपकँपी भर देते थे, अब भूत–प्रेतों जैसी चीत्कारों से वातावरण को गुँजा रहे थे। यहाँ तक कि उसका रथ, जो अपनी डरावनी चरमराने वाली आवाज से भय पैदा कर दिया करता था, अब मातमी मौन के साथ आगे बढ़ रहा था। काले घने बादलों ने दिन की चमक को खत्म कर दिया था और बिजली की गर्जना उसके सर्वनाश की घोषणा कर रही थी। वास्तव में, यह उसका निर्जीव प्रयाण था जिसका नेतृत्व वह स्वयं ऐसे रथ पर बैठकर कर रहा था, जो अब उत्साहहीन शेरों के द्वारा खींचा जा रहा था।

दसकंठ अब और लंबे समय तक उन अपशकुनों की कोपदृष्टि को नहीं सह सकता था जिन्होंने उसकी मृत्यु की पूर्व सूचना दे दी थी। उसने सेना को तेजी से आगे बढ़ाया। यदि सर्वनाश ही उसका लक्ष्य है, तब वह जितनी जल्दी हो सके, आए। मौत की सुलगती चिता में पल–पल जीवित मरने से तत्क्षण मर जाना ज्यादा अच्छा होता है।

युद्धक्षेत्र में राम से उसका सामना हुआ। दसकंठ ने घातक अस्त्र छोड़ा। लेकिन आज वह एक शत्रु से नहीं लड़ रहा था, वरन् अपने उद्धारक की आराधना कर रहा था जो उसे उसके सांसारिक जीवन और राक्षसी आत्मा से मुक्ति दिलाएगा। इसलिए जैसे ही उसके धनुष की प्रत्यंचा से बाण छूटा, वह अपने आप ही भुने हुए दानों और खिले फूलों में बदल गया और वे राम के रथ के सामने नीचे गिर कर बिखर गए। अयुध्या के विस्मित राजकुमार ने ऊपर देखा और दसकंठ के स्थान पर स्वयं को इंद्र से सामना करते हुए पाया। उत्कृष्ट सौंदर्य से चमकती हुई राक्षस की आकृति को देखकर वे हक्के–बक्के रह गए और उनके हृदय ने ऐसे सुंदर रूप को मार गिराने के लिए गवाही नहीं दी। लेकिन वायुपुत्र, जिन्हें स्त्री की सुंदरता के अतिरिक्त और कोई सुंदरता आकृष्ट न कर सकती थी, ने उन्हें सलाह दी कि वे किसी भी मिथ्या रूप, स्वाद, वाणी अथवा संगीत से प्रभावित न हों।

राम तुरंत सचेत हो गए। उन्होंने अपना ब्रह्मास्त्र उठाया और अचूक निशाने के साथ अपने धनुष से उसे राक्षसराज पर छोड दिया।

घातक बिजली के समान वह बाण दसकंठ की छाती में घुस गया। राक्षस अपने राक्षसी स्वरूप में आ गिरा। जिसने समस्त सृष्टि पर मौत का आतंक मचा रखा था, आज वह स्वयं ही उसका शिकार हुआ पड़ा था।

अंततः सबसे बड़ा दुश्मन मारा जा चुका था—एक बहादुर प्रतिद्वंद्वी मारा जा चुका था, न कि पराजित किया गया था। मरते हुए राजा ने धीरे से अपनी आँखें खोलीं। उसकी दृष्टि बिभेक पर पड़ी, उसने सोचा कि अपने सगे भाई का जीवन लेकर उसने अपना बदला ले लिया है। मरते हुए, उसके मन में विभिन्न प्रकार के भाव उठने लगे। मौत की छाया से निस्तेज हुई उसकी आँखें भावावेश, दुख, पश्चाताप और वेदना से जलने लगीं। उसके मुखों में से एक मुख से कुछ क्षीण शब्द निकले। बिभेक अपने भाई को कैसे मार सकता है? क्या उनकी शिराओं में एक जैसा रक्त प्रवाहित नहीं होता? उसके दूसरे मुख ने उलाहना मारते हुए कहा। अपने भाई को मारकर उसने केवल अपना ही रक्त बहाया है। अपने भाई के खून से रंगा अब वह लंका के सिंहासन पर आरूढ़ होगा। फिर भी, यह सोच कर प्रसन्नता होती है कि देश की स्वतंत्रता को कोई खतरा नहीं होगा।

इसके बाद मंडो का विचार उसके मन में आया और उसके प्रति फिक्र से भरे शब्द बिभेक से प्रार्थना करते हुए, उसके तीसरे मुख से लड़खडाते हुए बाहर आने लगे कि जैसे वह अपने राज्य की देखभाल करे वैसे ही वह उसकी शोकसंतप्त रानी की भी देखभाल करे। फिर मरता हुआ राजा अपने राजवंश के बारे में सोचने लगा जो उन्हें भगवान ब्रह्मा से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था और उनके चौथे मुख ने बिभेक से निवेदन किया कि वे अपना स्नेहमय संरक्षण उसके राजवंश को प्रदान करे।

तब उसने सोचा कि वह कैसे अपने सच्चाई के रास्ते से भटक गया और यहाँ तक कि उसने स्वयं ही अपने लिए मौत के खूनी पंजों को आमंत्रित कर लिया। उसकी आँखें वेदना से जलने लगी थीं और पांचवें मुख ने अपने भाई को लड़खड़ाते शब्दों में चेतावनी देते हुए कहा।

पारलौकिक जीवन के द्वार पर खड़े राजा ने देखा कि उसका सूर्य अब अस्त होने को है। क्या उसके अपने ही मोहभ्रम से उत्पन्न इस स्थिति के लिए बिभेक के तीव्र रोष को ही जिम्मेदार बनाया जाए? वह आँख बंद करते समय क्यों न उस भाई को देखे जिसने उसे प्यार किया, न कि उसे जिसने उससे घृणा की? इसलिए पश्चाताप से भरे शब्दों में उसके छठे मुख ने बिभेक से माफी मांगी।

फिर जाते हुए शक्तिशाली राजा के मन में अपने सिंहासन, अपनी प्रजा का विचार कौंधा। अपने राजा की अनुस्थिति में प्रजा विद्रोह कर सकती है और उसके पूर्वजों के सिंहासन को हड़प सकती है। इसलिए उसके सातवें मुख ने भावी राजा को देश पर दृढ़ता और प्रेम से शासन करने के लिए चेताया।

अब उस शक्तिशाली राजा का अभिनय समाप्त होने वाला था और उसके जीवन पर पर्दा गिरने से पहले ही वह सब कुछ भूल गया। वह भूल गया कि वह एक राजा था जिसके पास कभी अपार शक्ति हुआ करती थी। वह भूल गया कि उसके पास उसका भाई बिभेक था जिसने अपने भाई और देश के साथ विश्वासघात किया था और इसके विनाशकारियों की सेवा की। उसे केवल यह याद था कि वह बिभेक का बड़ा भाई था जिसे उसने अपनी बांहों में लेकर दुलारा था, जिसे उसने सदा प्रेम और सुरक्षा प्रदान की थी, न कि घृणा और बदला। फिर से पश्चाताप से भरे शब्द उसके आठवें मुख से हकला–हकला कर निकलने लगे और राक्षस प्रायश्चित करने लगा कि यह उसकी अपनी दुष्टता थी जिसने उसके भाई को उससे विमुख कर दिया था।

इसी क्षण उसके जीवन की आखिरी लौ टिमटिमाई और उसकी मंद पड़ती चमक में राजा ने अनुभव किया कि वह समय आ चुका है जब उसे अपना यह पार्थिव शरीर छोड़ना है। उसने इसको भ्रातृत्व संरक्षण में बिभेक को सौंपने की इच्छा जताई और इससे पहले कि सूर्य भोर की सूचना दे, वह इसे अग्नि को सुपुर्द कर दे ताकि उसके अंतिम अवशेषों के समक्ष संसार को बुराई करने का अवसर ही न मिले।

तभी अचानक शरीर शक्तिहीन हो गया और उसके मन के सब विचार खत्म हो गए। उसके दसवें मुख से फुसफसाहट भी बाहर नहीं आई। लंका का शक्तिशाली राजा अब अपनी अंतिम विश्रामावस्था में था।

उसी समय हनुमान ने उसकी आत्मा के पात्र को कुचल दिया। इसप्रकार देवताओं और मनुष्यों के लिए आतंक बने दसकंठ के राक्षसी जीवन का अंत हो गया। स्वर्ग से फूलों की वर्षा होने लगी, दिव्य संगीत पूरे आकाश में गूँजने लगा और मंद–मंद पवन शाश्वत शांति और खुशी के संदेश को प्रसारित करती हुई सम्पूर्ण सृष्टि में बहने लगी। संकटपूर्ण समय का अंत हो चुका था और एक खिला हुआ और सुस्पष्ट नया दिन संसार के लिए खुशियाँ लेकर आया था।

उल्लेखनीय बिंदु

इस प्रसंग में समानता की दृष्टि से सीता को मारने की घटना दोनों ग्रंथों में एक सी है। रावण की मृत्यु का वर्णन दोनों ग्रंथों में अलग–अलग है। रावण वध के समय वा. में वर्णित ऋषि अगस्त्य द्वारा बताई गई 'आदित्यहृदय' की बात रा. में नहीं है। वा. में रावण युद्धक्षेत्र से लौटकर मंदोदरी से मिलने नहीं आया और जब उसकी म्त्यु हुई, उस समय उसने विभीषण से कुछ नहीं कहा। रा. में वर्णित 'राम का दसकंठ और उसके मित्रों से सामना' 'मालिवग्ग का निर्णय' विशाल भाला, कपिलाबद' 'जीवन का अमृत' तथा 'जीवात्मा का पात्र' जैसी घटनाएं वा. में देखने को नहीं मिलतीं। रा. में जिस तरह से दसकंठ के दार्शनिक रूप का वर्णन मिलता है, जब उसके प्रत्येक मुख ने कोई न कोई बात कही, वह भी वा. में नहीं है। रा. में युद्ध के अंतिम समय में रावण को राम प्रतिद्वंद्वी के स्थान पर अपने उद्धारक के रूप दिखाई देने लगे।

●

सीता की अग्नि परीक्षा

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

पराजित भाई रावण को पृथ्वी पर मृत पड़ा देख विभीषण शोकावेग से व्याकुल हो रोने लगे। रावण के मारे जाने का समाचार सुनकर मंदोदरी सहित उसकी पत्नियाँ भी शोक से व्याकुल हो अंतःपुर से निकल पड़ीं और युद्धभूमि में पड़े महाकाय, महापराक्रमी और महातेजस्वी रावण को देख शोक से विलाप करने लगीं। तब राम ने विभीषण से उन स्त्रियों का धैर्य बँधाने और रावण का दाहसंस्कार करने के लिए कहा। वेदोक्त विधि और महर्षियों द्वारा रचित कल्पसूत्रों में बताई गई प्रणाली से सारा कार्य हुआ।

तब राम ने लक्ष्मण से विभीषण का राज्याभिषेक करने को कहा। अभिषेक के पश्चात् राम ने हनुमान को सीता की कुशलता पूछने के लिए भेजा। विभीषण से आज्ञा लेकर वे अशोकवाटिका में सीता के पास गए और राम की विजय की पूरी कथा सुनाई। हनुमान द्वारा सीता से राम के लिए कोई संदेश माँगने पर उन्होंने कहा कि वे अपने स्वामी का दर्शन करना चाहती हैं। हनुमान द्वारा वह संदेश जब राम को सुनाया गया तो उनकी आँखें भर आईं और राम ने विभीषण से उन्हें बुलवाने के लिए कहा। विभीषण सबसे पहले अपने अंतःपुर में गए, अपनी स्त्रियों को सीता के पास यह कहने के लिए भेजा कि वे उनसे मिलना चाहते है। उसके बाद विभीषण वहाँ गए और सीता से राम की बात कही। विभीषण की बात सुनकर वे स्नान कर वस्त्राभूषणों को पहन चलने के लिए तैयार हुईं। जब वे वहाँ पहुँची, विभीषण ने राम से सीता के आने का समाचार बताया। 'राक्षस के घर में बहुत दिनों तक निवास करने के बाद आज सीता आई हैं।' यह सोच कर और फिर सीता को देख राम को हर्ष, क्रोध और दुख का एक साथ अनुभव हुआ। उन्होंने विभीषण से कहा कि वे पालकी छोड़कर मेरे पास आएं। सभी वानर एक साथ उनका दर्शन करें। सीता ने भी सौम्य भाव से राम का दर्शन किया।

सीता के विनयपूर्वक पास आने पर राम ने अपना हार्दिक अभिप्राय बताते हुए उनसे कहा, 'जब तुम आश्रम में अकेली थीं, उस समय यह चंचल चित्त वाला राक्षस तुम्हें हर कर ले गया। यह दोष मेरे ऊपर दैववश प्राप्त हुआ था, जिसका मैंने मानवसाध्य पुरुषार्थ के द्वारा मार्जन

कर दिया।.... सदाचार की रक्षा, सब ओर फैले हुए अपवाद का निवारण तथा अपने सुविख्यात वंश पर लगे हुए कलंक का परिमार्जन करने के लिए ही यह सब मैंने किया है। तुम्हारे चरित्र में संदेह का अवसर उपस्थित है...अतः जनककुमारी ! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ।... कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा, जो तेजस्वी होकर भी दूसरे के घर में रही स्त्री को, केवल इस लोभ से कि यह मेरे साथ बहुत दिनों तक रहकर सौहार्द स्थापित कर चुकी है, मन से भी ग्रहण कर सकेगा।' अपने प्रियतम के मुख से ऐसे वचन सुन कर, हाथी की सूँड से आहत हुई लता के समान सीता आँसू बहाने लगीं। फिर नेत्रों के जल को अंचल से पौंछती हुई वह धीरे–धीरे गद्‌गद वाणी में इसप्रकार बोलीं, 'वीर! आप ऐसी कठोर, अनुचित कर्णकटु और रूखी बात मुझे क्यों सुना रहे हो?...महाबाहो! आप मुझे जैसा समझते हैं, वैसी मैं नहीं हूँ। मुझ पर आप विश्वास कीजिए। बाल्यावस्था में आपने मेरा पाणिग्रहण किया था, इसकी ओर भी ध्यान नहीं दिया। आपके प्रति मेरे ह्रदय में जो भक्ति है और मुझमें जो शील है, वह सब आपने पीछे ढकेल दिया–एक साथ ही भुला दिया।' उन्होंने लक्ष्मण से अपने लिए यह कहते हुए चिता तैयार करने को कहा कि उनके स्वामी उनके गुणों से प्रसन्न नहीं हैं। उन्होंने भरी सभा में उनका परित्याग कर दिया है। ऐसी दशा में उनके लिए जो मार्ग उचित है, उस पर जाने के लिए वे अग्नि में प्रवेश करेंगी। सीता के ऐसे वचनों को सुन लक्ष्मण ने क्रोध में भरकर राम की ओर देखा। किंतु राम के संकेत से सूचित होने वाले हार्दिक अभिप्राय को जानकर पराक्रमी लक्ष्मण ने उनकी सहमति से ही चिता तैयार कर दी। राम सिर झुकाए वहाँ खड़े थे। सीता ने अग्नि की परिक्रमा की और यह कहते हुए अग्नि में प्रवेश किया, 'यदि मैंने मन, वाणी और क्रिया द्वारा कभी संपूर्ण धर्मों के ज्ञाता श्री रघुनाथ जी का अतिक्रमण न किया हो तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें।' उनके अग्नि में प्रवेश करते समय राक्षस और वानर जोर–जोर से हाहाकार करने लगे। राम भी उस स्थिति में बहुत दुखी हुए। ऐसे में कुबेर, यमराज, इंद्र, महादेव और ब्रह्मा जी उनके पास गए और राम को उनके स्वरूप से परिचित कराया। बह्मा जी के वचनों को सुनकर अग्निदेव मूर्तिमान होकर पिता की भाँति सीता को गोद में लेकर प्रकट हुए और सीता की पवित्रता को प्रमाणित करते हुए कहा, 'उत्तम आचार वाली इस शुभलक्षणा सती ने मन, वाणी,

बुद्धि अथवा नेत्रों द्वारा भी आपके सिवा किसी दूसरे पुरुष का आश्रय नहीं लिया।...इसका भाव सर्वथा शुद्ध है, कृपया आप इसे सादर स्वीकार करें।' उनकी बात को सुनकर राम की आँखों में आँसू छलक आए और अग्नि देव से उन्होंने यही कहा, 'लोगों में सीता की पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए इनकी यह शुद्धिविषयक परीक्षा आवश्यक थी क्योंकि इन्हें दीर्घकाल तक रावण के अंतःपुर में रहना पड़ा है। यदि मैं ऐसा न करता तो लोग यही कहते कि राम बड़ा ही मूर्ख और कामी है।' ऐसा कहकर राम अपनी प्राणवल्लभा सीता से मिले।

रामकीर्ति के अनुसार

अपने स्वामी की मृत्यु के बाद लंका में शोक का वातावरण छा गया। बिभेक अपने भाई के लिए विलाप कर रहे थे और मंडो अपने पति के लिए। लेकिन आँसू अब उसे वापस नहीं ला सकते थे जिसे मौत के झौंके ने अपने अंधकारमय सीने में समेट लिया हो। इसलिए उन्होंने अपने दुख को छिपा लिया और अपने राजा के शव का वीरोचित दाह संस्कार किया।

उसके बाद लंका का शोकाकुल वातावरण उल्लास में बदल गया। दुख विस्मृति में समा गया और सारा नगर लंका के खाली सिंहासन पर बैठे अपने नए राजा और साथ में उनके दाँयी तरफ रानी त्रिजटा तथा बाँयी तरफ रानी मंडो के स्वागत के लिए सौभाग्यशाली वैभव से चमकने लगा।

अब दसकंठ की मृत्यु और उसके दाह–संस्कार के संपन्न होने के बाद राम का हृदय स्वाभाविक रूप से सीता के लिए व्याकुल हो गया। इसीलिए बिभेक तेजी से सीता के पास गए और उन्हें उनके स्वामी के सामने ले आए। यद्यपि राम उन्हें सबसे अधिक प्रेम करते थे, तथापि वे समाज द्वारा की जाने वाली निंदा से भयभीत थे, यदि उन्होंने लंबे समय से खोई सीता को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया तो। इस निंदा को सुनने के लिए वे तैयार नहीं थे। उन्होंने चुपचाप पास आती हुई सीता को देखा। उनके उत्सुक हृदय की प्रसन्नता बाहर झलक रही थी जो

उनके गालों पर पहले से छाई लाली को और उद्दीप्त कर रही थी। लेकिन सीता के मन में राम द्वारा उन्हें स्वीकार करने की बात को लेकर तरह–तरह की शंकाएं घुमड़ रही थीं। इस कारण एक अनजाना भय उनकी खुशी में मिश्रित हो गया और अचानक उनके मुखमंडल की लाली पर पीलापन छा गया। झिझकते हुए कदमों से वह अपने पति के पास पहुँचीं और अस्वीकार करने के भय से कुछ दूरी पर जाकर बैठ गईं।

राम उनके प्रेम को पाने के लिए तड़प रहे थे। लेकिन सीता के लिए उनका प्रेम इतना दृढ़ नहीं था कि वह सामाजिक भर्त्सना को सह सके। इसलिए राम सीता को स्वीकार करने से पहले समाज के अनुमोदन को सुनिश्चित कर लेना चाहते थे। कैसे वे सीता की पवित्रता के बारे में समाज का संदेह दूर करें? अचानक एक अच्छा विचार उनके मस्तिष्क में कोंधा। वे सीता से उन उपहारों के बारे में पूछें जो संभवतः दसकंठ ने उन्हें दिए होंगे ताकि सीता उनके इशारे को समझते हुए अपनी अक्षत पवित्रता का प्रमाण दे सकें।

स्वागत भरी मुस्कान से राम ने सीता से उन बहुमूल्य उपहारों के बारे में पूछा जो संभवतः दसकंठ से उन्होंने प्राप्त किए हों। उन्होंने उन उपहारों को दिखाने के बारे में भी कहा। उनके प्रिय पति द्वारा किए गए इस निष्ठुर प्रश्न ने उनके ऊपर वज्रपात किया। दसकंठ अपने सभी प्रकार के अनैतिक प्रणय निवेदन से उसे इतनी यंत्रणा नहीं दे पाया जितनी राम के इस निष्ठुर प्रश्न ने दे दी। वह प्रेम कैसे खुशी दे सकता है जो संदेह से घिरा हो? अतः उन्होंने अपनी पवित्रता का एक ऐसा प्रमाण प्रस्तुत करने का संकल्प किया जो संदेही ह्रदयों को आश्चर्यचकित कर देगा तथा उसे एक आदर्श स्त्रीत्व के सिंहासन पर सुशोभित करेगा। देवताओं के समक्ष वह अग्नि में प्रवेश करेगी और सिद्ध करेगी कि उसकी पवित्रता की तेजस्विता आग की क्रुद्ध लपटों को भी ठंडा कर सकती है।

तत्पश्चात् राम ने आकाश में बाण छोड़ा और पवित्रता की शक्ति का साक्षी बनने के लिए सभी देवताओं को आमंत्रित किया। एक ही पल में राक्षसों का नगर देवताओं के नगर में बदल गया। सुग्रीव ने चिता तैयार की और राम के बाण ने इसमें अग्नि प्रज्ज्वलित की। तब वह कार्य

शुरु हुआ जिसने देवताओं की आँखों को भी विस्मित कर दिया। धीरे–धीरे किंतु दृढ़ता से, प्रेम से भरी आँखों और पवित्रता से भरे हृदय से सीता ने कदम बढ़ाए और भस्म कर देने वाली लपटों में प्रवेश कर गईं। तब सभी चमत्कारों से ऊपर एक चमत्कार घटित हुआ। सीता की पवित्रता के सामने प्रकृति भी अपनी दिशा का अनुसरण करना भूल गई। चारों ओर से घिरी हुई सुनहरी आग की लपटों में से नारायण की दुखी पत्नी प्रकट हुई और उनके ऊपर ताजा जल छिड़क कर शीतलता प्रदान की। जलती हुई लकड़ियों की शुष्कता ने खिले हुए कमलों की कोमलता को जगह दी जो उनके कोमल कदमों को ग्रहण करने के लिए खिल गए और सारे वातावरण में एक हल्की सुगंध फैल गई। सोने की एक जीवित प्रतिमा, सीता अग्नि की लपटों के बीच में खड़ी थी और उन्होंने संदिग्ध संसार को दिखा दिया कि स्त्री की पवित्रता के सामने लपटें भी अपनी तेजी खो देती हैं और अग्नि भी शीतलता प्रदान करती है।

उल्लेखनीय बिंदु

यह घटना दोनों ही ग्रंथों में वर्णित है। दोनों में ही राम सामाजिक निंदा के भय से सीता की पवित्रता प्रमाणित कर लेना चाहते थे। लेकिन उनके इस संदेह को सीता के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए अलग–अलग वर्णन हैं। दोनों में सीता अग्नि में प्रवेश कर अपनी पवित्रता को प्रमाणित करती हैं।

●

राम की अयोध्या वापसी

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

सीता की अग्नि–परीक्षा के अगले दिन राम ने विभीषण से अयोध्या जाने के लिए व्यवस्था करने को कहा। विभीषण ने राम से लंका में कुछ दिन उनका आतिथ्य स्वीकार करने का अनुरोध किया। राम के द्वारा उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिए जाने पर विभीषण ने पुष्पक विमान का आवाहन किया। विमान पर बैठकर राम ने विभीषण सहित सुग्रीव से

अपने–अपने स्थानों पर जाने के लिए कहा लेकिन उन सभी ने उनके साथ अयोध्या जाने की बात कही जिसे राम ने स्वीकार कर लिया। वे सब भी अयोध्या के लिए चल दिए।

पुष्पक विमान से राम ने सीता को उन स्थानों को दिखाया जहाँ पर उनका रावण से युद्ध हुआ था। फिर किष्किंधानगरी का दर्शन करवाया। वहाँ से सीता सुग्रीव की पत्नी तारा तथा उनकी अन्य अनेक पत्नियों को साथ लेकर अयोध्या के लिए चलीं। ऋष्यमूक पर्वत के पार हो जाने पर श्रृंगवेरपुर आया और वहाँ से सरयू नदी दिखाई पड़ने लगी।

14वाँ वर्ष पूरा हो जाने पर पंचमी तिथि को वे लोग भारद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुँचे। मुनि द्वारा किए गए आतिथ्य को स्वीकार करके वे आगे बढ़े। अयोध्या के पास पहुँचने पर राम ने हनुमान को अयोध्या की कुशलता जानने के लिए और भरत को उनके आगमन और उनसे मिलने की इच्छा के बारे में बताने के लिए कहा। हनुमान अत्यंत शीघ्रता से भरत के पास पहुँचे। राम के आगमन की बात सुनकर उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। वे राम, लक्ष्मण और सीता के विषय में विस्तार से पूछते रहे। हनुमान ने जब राम के भारद्वाज ऋषि के आश्रम में ठहरने के बारे में बताया तो उन्होंने शत्रुघ्न को राम के स्वागत की तैयारी की व्यवस्था के लिए आदेश दे दिए। सभी नगरवासी राम के दर्शनों के लिए लालायित थे। सभी रानियाँ नंदीग्राम पहुँच गईं। वानरों के कोलाहल ने राम के आने की सूचना दे दी। राम की आज्ञा से पुष्पक विमान नीचे उतारा गया। भरत को गले लगाने के बाद उन्होंने उन्हें विमान पर चढ़ा लिया। भरत ने सिंहासन पर रखी हुई चरण पादुकाएं राम के चरणों में पहना दीं और कहा कि धरोहर के रूप में रखा हुआ यह राज्य आज उन्होंने उन्हें लौटा दिया है। राम ने नीचे उतर कर सभी माताओं की चरण वंदना की और सभी को विमान में बैठाकर अयोध्या पहुँच गए। पुरवासियों ने राम का जोरदार स्वागत किया।

भरत ने राम को राज्य लौटाकर राज्याभिषेक करने की बात कही जिसका सभी ने समर्थन किया। इसके बाद राम ने लक्ष्मण से युवराज पद धारण करने के लिए कहा जिसे अस्वीकार कर उन्होंन भरत को युवराज

बनाने के लिए कहा। तब राम ने भरत को युवराज–पद पर अभिषिक्त किया। राम ने पौण्डरीक, अश्वमेध, वाजपेय तथा अन्य अनेक प्रकार के यज्ञों का आयोजन करते हुए ग्यारह सहस्त्र वर्षों तक अयोध्या पर शासन किया।

रामकीर्ति के अनुसार

सीता की अग्नि परीक्षा के बाद राम ने अयुध्या जाने की तैयारी आरंभ की क्योंकि उनके वनवास का समय समाप्त होने वाला था और यदि वह समय पर वापस लौटने में असमर्थ रहे, सत्रुद जलती हुई चिता में जान दे देगा। भक्त विभीषण ने उनसे लंका के सिंहासन पर आरूढ़ होने के लिए काफी अनुनय–विनय की किंतु राम ने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

इससे पहले वे अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान करते, उनका सामना दसगिरिवन और दसगिरिधर के पोष्य पिता अश्कर्ण से हुआ क्योंकि अश्कर्ण को पता चल चुका था कि दसकंठ के साथ उनके दोनों पोष्य पुत्र भी राम के बाणों का शिकार बन चुके हैं। इसलिए अपने पोष्य पुत्रों का बदला लेने के लिए वह जल्दी से वहाँ पहुँच गया।

वे एक भयंकर और विस्मित कर देने वाला युद्ध लड़े। राम ने राक्षस के दो टुकड़े किए किंतु तुरंत ही दोनों टुकड़े जीवित हो गए। अब राम को एक के स्थान पर दो राक्षसों से लड़ना पड़ा। हालांकि उनके तीक्ष्ण प्रक्षेपास्त्र ने उन दोनों को काट दिया, किंतु उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वे दोनों अब चार हो गए। अब उन्हें ऐसे शत्रु के साथ क्या करना चाहिए, जिसका कटा हुआ शरीर ईस्वर की कृपा से दोगुना हो रहा था? लेकिन उनको सलाह देने के लिए वहाँ पर बिभेक थे। उत्साहित होकर राम ने एक बाण छोड़ा। इसने उन शरीरों के आधे–आधे टुकड़े कर दिए। और जैसे ही शरीर कटे, उन्होंने दूसरा बाण छोड़ दिया जिसने उन सभी को समेट कर नदी में डाल दिया और उन्हें जल समाधि दे दी जिसके बाद राक्षस दोबारा नहीं उठा।

शत्रु से छुटकारा पाकर राम ने अपने भाई और पत्नी के साथ अयुध्या के लिए प्रस्थान किया। उनके पीछे उनकी निष्ठावान सेना ने उनका अनुगमन किया। समुद्र पार करने के बाद बिभेक ने राम से पुल को नष्ट कर जल को प्रवाहित करने की प्रार्थना की। राम ने उनकी प्रार्थना को पूर्ण किया और एक बार फिर अनंत सागर की अनियंत्रित लहरें नृत्य करने लगीं।

वे अभी आगे बढ़े भी नहीं थे कि मेघों की गर्जना ने आकाश को घेर लिया। यह प्रलयकल्प था, काल–अग्गी से पैदा हुआ दसकंठ का पुत्र। पाताल में पला–बड़ा हुआ, उसे उस महाविपदा का पता नहीं लगा जो उसके पिता पर पड़ चुकी थी। लेकिन अब उसे अपने शक्तिशाली पिता के दुर्भाग्य का पता चल चुका था और इसलिए वह उसकी हार और मौत का बदला लेने आया था।

हनुमान ने प्रलयकल्प का मुकाबला किया। यह राक्षस दसकंठ का असाधारण शक्ति वाला पुत्र था। इसलिए चतुर वानर ने सबसे पहले उसे थकाने का प्रयत्न किया ताकि वे उसको सरलता से पराजित कर सकें। वानर ने एक भैंसे का रूप बनाया और कीचड़ में डूबने का दिखावा करने लगा। प्रलयकल्प उस रास्ते से गुजर रहा था। उसने भैंसे से राम और लक्ष्मण के बारे में पूछा। लेकिन संघर्ष कर रहे उस जानवर ने कीचड़ से बाहर निकालने और उसकी जान बचाने के लिए उससे सहायता मांगी। एक भीषण संघर्ष के बाद, जिसने उसकी सारी शक्ति क्षीण कर दी थी, वह भैंसे को बाहर निकालने में सफल हुआ।

हनुमान ने उसे राम और लक्ष्मण के पास जाने से रोकने का प्रयत्न किया। लेकिन राक्षस ने इसके बारे में एक न सुनी। तब उसके पास अपने वानर रूप में आने और उससे युद्ध करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प न था। उन दोनों के बीच एक भयंकर युद्ध हुआ। अब भी राक्षस अपराजित था, यद्यपि वह थक चुका था। यह इसलिए था कि उसकी चमत्कारिक शक्ति ने उसके शरीर को इतना चिकना बना दिया था कि कोई उसे पकड़ कर नहीं रख सकता था। लेकिन वायुपुत्र ने अभी तक हार स्वीकार करना नहीं सीखा था। उन्होंने अपना ही एक प्रतिरूप

बनाया, जिसने उनका स्थान ले लिया और वे स्वयं दिशपाई नाम के किसी ऋषि के पास उड़ कर चले गए और उनसे परामर्श मांगा। किंतु किसी को दूसरे की जान ले लेने के लिए शिक्षित करना तपस्वी जीवन के नियमों के विरुद्ध था। इसलिए मौखिक शिक्षण के स्थान पर सहायता करने के इच्छुक ऋषि ने मैदान पर रेत बिखेर कर एक संकेत दे दिया। बुद्धिमान वानर ने उनके संकेत को समझ लिया। वे तुरंत लौट आए और राक्षस के शरीर पर रेत बरसाने लगे जिससे उसके शरीर का सारा चिकनापन समाप्त हो गया। हनुमान ने दृढ़ता से उसे पकड़ लिया और उसे अपने पिता के पास भेज दिया।

इस अवरोध से छुटकारा पाने के बाद, राम ने जंगल के रास्ते से आगे बढ़ना शुरु किया—उनके आँसुओं और मुस्कानों के दृश्यों ने उन्हें उन दुखों की याद दिला दी जो उन्होंने सहे थे और उन खुशियों की जिनका उन्होंने आनंद लिया था। अंत में वे खिडकिन पहुँचे जहाँ निलाबद ने उनका हार्दिक स्वागत किया। वहाँ से रास्ते में राम के निष्ठावान मित्र खुखान से मिलते हुए उन्होंने सीधे अयुध्या के लिए प्रस्थान किया। भरत और सत्रुद को बचाने के लिए, वे बिल्कुल सही समय पर अयुध्या पहुँच गए। प्रसन्नता ने सारे नगर को रोमांचित कर दिया और खुशी से प्रत्येक का मुखमंडल खिल उठा। अब वे राजसिंहासन पर आरूढ़ होंगे और अपनी प्रजा को समृद्धि की ओर ले जाएंगे।

उनकी विजय ने एक विशाल राज्य को उनके नियंत्रण में ला दिया था। इसलिए कृतज्ञ राजा ने उसे अपने मित्रों में बाँट दिया जिन्होंने उनके सम्मान को पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए अपने जीवन की बाजी लगा दी थी। लक्षण को उन्होंने रोमागल राज्य दिया जिसे पहले खर द्वारा शासित किया जाता था। भरत और सत्रुद को उन्होंने अपना प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी बना दिया। सुग्रीव को फ्राया वैयवंग्स महासुरतेज रअंग्श्रि के नाम से खिडकिन का राजा बना दिया। विभेक को राजा दशगिरिवंग्स बंग्सब्रह्माधिराज रंगसर्ग के नाम से लंका का राजा बनाया गया। फ्राया इंद्रानुभब के नाम से अंगद को खिडकिन का युवराज बना दिया। जंबुवान

को पंग्ताल का राजा बना दिया गया और इसके साथ ही जंभुवराज को उनका प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी बना दिया गया।

खुखान को फ्राया खुखांधिपति की उपाधि के साथ पुरीराम देश दे दिया गया। हनुमान को फ्राया अनुजित चक्रकृष्ण बिबादवंग्स नाम के साथ अयुध्या का राजा बना दिया गया किंतु फ्राया अनुजित का उस देश का राजा बनना नियति निर्धारित नहीं था जिसके विधिसम्मत उत्तराधिकारी नारायण के अवतार थे। ज्यों ही वे सिंहासन पर विराजमान हुए त्यों ही एक जला देने वाली संवेदना उनके सारे शरीर में फैल गई और सलामी लेने की क्रिया उन्हें ऐसी मालूम पड़ी कि मानो बहुत से भाले उनकी आँखों को वेध रहे हों। वे सिंहासन से उतर गए और उसे विधिसम्मत राजा को सौंप दिया।

तब कृतज्ञ राम ने एक बाण छोड़ा और फ्राया अनुजित को उसका पीछा करने के लिए कहा। जहाँ पर यह बाण जाकर गिरेगा, वहीं पर वे उनके लिए एक नगर का निर्माण करेंगे। बाण एक नौ चोटी वाले पर्वत पर जाकर गिरा और उसे ध्वस्त कर मिट्टी में मिला दिया। अपनी पूँछ से झाड़ू लगाकर फ्राया अनुजित ने उस स्थान को साफ किया, एक चहारदीवारी बनाई और राम के पास लौटे, जिन्होंने विष्णुकर्मा को फ्राया अनुजित के लिए एक नगर बनाने का आदेश दिया। नगर का निर्माण किया गया, इसे नाबपुरी नाम दिया गया और फ्राया अनुजित को इसका शासक बना दिया गया।

अब राजा राम सब राजाओं के राजा हो गए और उनके भद्र शासन और नेतृत्व में सारे साम्राज्य में सुख–शांति का वातावरण हो गया।

उल्लेखनीय बिंदु

राम की अयोध्या वापसी का प्रसंग दोनों ही ग्रंथों में है, किंतु तत्संबंधी घटनाएं दोनों में अलग–अलग हैं। वा. में राम ने पुष्पक विमान से अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में पड़ने वाले ऐसे सभी स्थलों को सीता को दिखाया गया जिनका संबंध उनसे था। राम ने स्वयं

अयोध्या में जाने से पहले हनुमान से अयोध्या की वास्तविक स्थिति का पता लगाकर आने के लिए कहा। जब वे सब वहाँ पहुँच गए तब राम का राज्याभिषेक हुआ और भरत को युवराज बनाया गया। अपने भाईयों के साथ 11 हजार वर्षों तक राम के सुखपूर्वक शासन करने का उल्लेख वा. में मिलता है। ऐसा वर्णन रा. में नहीं है। रा. में अयोध्या पहुँचने से पहले के जिन दो युद्धों का वर्णन है, वे वा. में नहीं है। विभेक द्वारा पुल को नष्ट करने की प्रार्थना तथा राम के द्वारा राज्य के बँटवारे का उल्लेख भी वा. में नहीं है।

●

सीता का निर्वासन

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

राज्याभिषेक के बाद राम प्रतिदिन राजसभा में बैठकर पुरवासियों और देशवासियों के सारे कार्यों की देखभाल करते हुए शासन चलाने लगे। कुछ दिन बीत जाने पर राम ने महाराज जनक, युधाजित्, प्रतर्दन तथा अन्य राजाओं की विनयपूर्वक विदाई की। तत्पश्चात् सुग्रीव, विभीषण, रीछों, वानरों और राक्षसों को विदा करके भाईयों सहित सुख–स्वरूप राम सुख और आनंदपूर्वक वहाँ रहने लगे।

धर्मज्ञ राम दिन के पूर्व भाग में धर्मानुसार धार्मिक कृत्य करते थे और शेष आधे दिन अंतःपुर में रहते थे। इन्हीं दिनों राम ने अपनी पत्नी को गर्भ के मंगलमय चिह्नों से युक्त देख अनुपम हर्ष का अनुभव किया और सीता से कोई ऐसी इच्छा के बारे में पूछा जिसे वे पूरा करना चाहती हों। तब सीता ने पवित्र तपोवनों को देखने की अपनी इच्छा के बारे में बताया जिसे पूरी करने की बात कहकर राम चले गए।

एक बार राम मित्रों से घिरे हुए थे। उसी समय किसी कथा के प्रसंग में उन्होंने अपने मित्रों से पूछा 'आजकल नगर और राज्य में किस बात की चर्चा सर्वाधिक होती है? वे लोग मेरे बारे में, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और माता कैकेयी के बारे में क्या–क्या बातें करते हैं? पुरवासी मेरे

विषय में कौन–कौन सी शुभ–अशुभ बातें कहते हैं, उन सबको यथार्थतः बताओ। उनके द्वारा बताई गई शुभ बातों का वह आचरण करेंगे और अशुभ कृत्यों को त्याग देंगे।' ऐसा कहकर राम ने उन्हें सारी सच्चाई ईमानदारी से बताने के लिए कहा। उनमें से एक भद्र ने राम को बताया कि लोग आपके द्वारा समुद्र पर किए गए पुल निर्माण तथा रावण वध की तो बहुत प्रशंसा करते हैं लेकिन सभी को एक बात खटकती है कि युद्ध में रावण को मारकर सीता को वे अपने घर पर क्यों ले आए। उनके मन में सीता के चरित्र को लेकर कोई अमर्ष क्यों नहीं हुआ? वे उनसे घृणा क्यों नहीं करते हैं? अब तो उन्हें भी स्त्रियों की ऐसी बातें सहनी पड़ेंगी क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजा भी वैसा ही अनुकरण करती है। वहाँ उपस्थित सभी ने उस भद्र का समर्थन किया।

मित्रमंडली के चले जाने पर राम ने अपना कर्तव्य निश्चित कर अपने तीनों भाईयों को बुलवाया और पुरवासियों के बीच चल रही चर्चा के बारे में बताया और कहा, 'लोक–निंदा के भय से मैं अपने प्राणों को और तुम सबको त्याग सकता हूँ तो सीता को त्यागना कौन सी बड़ी बात है।' उन्होंने लक्ष्मण से गंगा के उस पार तमसा नदी के तट पर बने वाल्मीकि के आश्रम के पास सीता को छोड़कर आने के लिए कहा। उन्होंने बताया कि सीता ने पहले उनसे कहा था कि वह गंगा तट पर बने ऋषियों के आश्रमों को देखना चाहती हैं, अतः उनकी यह इच्छा भी पूर्ण हो जाएगी।

राम की आज्ञा का पालन करने के लिए लक्ष्मण ने अगले दिन सुमंत्र से रथ तैयार करने और सीता को ऋषियों के आश्रम तक पहुँचाने के लिए कहा। सीता के पास जाकर लक्ष्मण ने उनसे आश्रमों को देखने के लिए चलने हेतु तैयारी करने की बात कही। इसे सुन सीता बहुत प्रसन्न हुईं और पूरी तैयारी के साथ सीता लक्ष्मण के साथ रथ पर बैठीं। रास्ते में दिखाई पड़ने वाले अपशकुनों के बारे में सीता ने लक्ष्मण को बताया, तब लक्ष्मण ने बड़े ही मुरझाए मन से सबके कल्याण की बात कही।

अगले दिन दोपहर में भागीरथी के उस पार पहुँचने पर लक्ष्मण की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने सीता को बताया कि राम ने

लोकापवाद के कारण उनका त्याग कर दिया है। यहीं उनके पिता के मित्र वाल्मीकि रहते हैं, अतः वे उनके आश्रम में उपवासपारायण और एकाग्र होकर निवास करें।

लक्ष्मण से ऐसे वचन सुनकर सीता को बहुत दुख हुआ। वे मूर्च्छित होकर नीचे गिर पड़ीं। होश आने पर वे लक्ष्मण से दीन–हीन वाणी में बोलीं कि महाराज से मेरी तरफ से यही कहना, 'वीर! आपने अपयश से डरकर ही मुझे त्यागा है, अतः लोगों में आपकी जो निंदा हो रही है अथवा मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है, उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है क्योंकि मेरे परम आश्रय आप ही हैं। जिस तरह पुरवासियों के अपवाद से बचकर रहा जा सके, उसी तरह आप रहें। स्त्री के लिए पति ही देवता है, पति ही बंधु है, पति ही गुरु है। इसलिए उसे प्राणों की बाजी लगाकर भी विशेष रूप से पति का प्रिय करना चाहिए। आज तुम भी मुझे देख जाओ। मैं इस समय ऋतुकाल का उल्लंघन करके गर्भवती हो चुकी हूँ।' लक्ष्मण जी सीता की ऐसी बातों को सुनकर बहुत दुखी हुए। शोक के भार से दबे हुए लक्ष्मण गंगाजी के उत्तरी तट पर पहुँचकर दुख के कारण अचेत–से हो गए। लक्ष्मण के वहाँ से जाते ही दुख के भारी बोझ से दबी सीता उस वन में जोर–जोर से रोने लगीं।

रामकीर्ति के अनुसार

आतंक के दिन बीत चुके थे और व्यवधानरहित खुशी के दिन आ चुके थे। किंतु भाग्य जैसा चंचल है वैसा ही पक्षपाती है। कभी वह अपने पूरे वैभव के साथ मुस्कराता है और कभी वह अपना क्रुद्ध रूप दिखलाता है। किसी के लिए तो वह फूलों की सेज बिछाता है और किसी के लिए वह काँटों की सेज आरक्षित रखता है। इसप्रकार चंचल और पक्षपाती भाग्य मनुष्य के जीवन के साथ मनमौजी ढंग से खेल खेलता है जैसे उसने सीता के जीवन के साथ खेला।

उस समय अयुध्या पर भाग्य की कृपा थी और उसी प्रकार सीता पर भी। वास्तव में उनकी खुशियों की कोई सीमा नहीं थी। वे राक्षसों की कैद से मुक्त हो गई थीं और अब वे अपने पति की पराक्रमयुक्त, प्रेममयी

बाँहों में थीं। इसके अतिरिक्त, वे एक बच्चे को भी जन्म देने वाली थीं जो एक दिन अयुध्या के सिंहासन को सुशोभित करने वाला होगा। यह उनके लिए अपार प्रसन्नता का स्त्रोत था और उन्होंने सोचा कि वे भाग्य की परम कृपा पात्र हैं। किंतु अफसोस! यह तो चंचल भाग्य की कृपा की एक झलक मात्र थी। बहुत शीघ्र ही वह लुप्त हो गई और उसका स्थान उसकी क्रुद्ध और निष्ठुर दृष्टि ने ले लिया। सीता फिर से दुख के सागर में डूब गईं।

हुआ यूँ कि सम्मानखा की पुत्री अदुल अपने सगे–संबंधियों की मृत्यु का बदला लेने की सोच रही थी। उसकी स्थिति इस बात की अनुमति नहीं दे रही थी कि वह शत्रु को शस्त्रों से चुनौती दे। इसलिए अपने प्रतिशोध को तृप्त करने के लिए उसने राम और सीता के बीच संबंध विच्छेद कराने की सोची। अंततः इसके लिए उसे अपने आप ही एक सुनहरा अवसर मिल गया।

एक बार राम कुछ समय के लिए जंगल में प्रवास हेतु चले गए और सीता महल में अकेली रह गईं। पति की अनुपस्थिति ने महल के सारे सुख फीके कर दिए। इसलिए उन्होंने नदी के ठंडे पानी में नहा कर क्षणिक सुख पाने की सोची। उस राक्षसी ने इस अवसर का लाभ उठा कर महल में काम करने वाली किसी स्त्री का स्वरूप धारण किया और सीता के सामने उनकी एक दासी बनकर प्रस्तुत हो गई। राम की निःशंक रानी ने इस मायावी दासी से अपना काम करवाने में कोई संकोच नहीं किया।

एक दिन मायावी अदुल ने एक चाल के तहत यह जानने की उत्सुकता दिखाई कि दसकंठ कैसा दिखाई देता था। उसने सीता से स्लेट पर उसकी आकृति खींचने की प्रार्थना की। चूंकि उनके मन में कोई संदेह नहीं था, अतः उन्होंने अपनी उत्सुक दासी की इच्छा को पूरा कर दिया।

जैसे ही सीता ने आकृति पूरी की, वैसे ही प्रतिशोधी दासी उनकी दृष्टि से ओझल हो गई और स्लेट पर खींची गई आकृति में

प्रविष्ट हो गई। उसी क्षण राम अपने प्रवास से लौट आए। भयाकुलता से सीता ने आकृति को मिटाने का बार–बार प्रयत्न किया। लेकिन वे जितना अधिक उसे मिटातीं, उतनी ही अधिक स्पष्ट वह दिखाई देने लगती। परेशान होकर उन्होंने वह स्लेट बिस्तर के नीचे छिपा दी।

अब राम प्रतिदिन की तरह विश्राम करने के लिए आए। ज्योंही वे बिस्तर पर लेटे, वे अत्यधिक गर्मी का अनुभव करने लगे। इसका कारण था कि वह राक्षसी स्लेट के अंदर से असहनीय गर्मी छोड रही थी। राम के स्वयं को ठंडा रखने के सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। उन्हें ऐसा लगा कि मानो लपटें उन्हें जला रही हों। अंत में उन्होंने लक्षण को बुलवाया और उनसे अचानक उत्पन्न हुई गर्मी का कारण ढूंढने के लिए कहा। उनकी खोज ने उस स्लेट को ढूंढ लिया जो अपने आप ही सारी कहानी कह रही थी।

राम विस्मित रह गए। किसने इस दिवंगत शैतान की आकृति बनाने की हिम्मत की? उनके आश्चर्य की सारी सीमाएं तब पार हो गईं जब सीता ने स्वीकार किया कि यह आकृति उन्होंने बनाई थी।

सीता के स्वीकार्य ने राम को अधमरा कर दिया। क्या वह दसकंठ से प्यार करती थी? क्या एक निष्ठाहीन पत्नी के लिए उन्होंने अपने और अपने मित्रों के जीवन को दाँव पर लगा दिया था? क्या एक विश्वासघाती ने उनके साथ बिस्तर साझा किया था? उनका दुख क्रोध में बदल गया और उन्होंने लक्षण को सीता को वहाँ से ले जाने, उसे मार देने और उसके विदीर्ण हृदय को उन्हें लाकर दिखाने की आज्ञा दी। भविष्य में आने वाले उनके उत्तराधिकारी की अभागी माँ का अपने कार्य के बारे में सफाई देने का प्रयत्न व्यर्थ ही रहा। दुराग्रही राम को उसकी बातों से सहमत नहीं होना था, उसे स्वीकार करना और अपने क्रूर आदेश को वापस नहीं लेना था।

यद्यपि लक्षण को उन पर कोई संदेह नहीं था, फिर भी पीड़ित हृदय से उन्हें सीता को जंगल में ले जाना पड़ा। सीता ने उनका

अनुगमन किया, उनके गाल गहरे दुख से बहने वाले अश्रुओं से भीग रहे थे।

कुछ दूरी पार करने के बाद वे एक विशाल वृक्ष के पास पहुँचे। उसकी ठंडी छाया में सीता अपने पति का आदेश पूरा करने के लिए बैठ गईं और सोचने लगीं, 'किस कारण से वह मौत के लिए भेजी गई है? एक छोटी सी बात के लिए—मात्र आकृति बनाने के लिए! वह पवित्र और निर्दोष मरने के लिए जा रही है और एक दिन उसकी मौत सत्य को उजागर कर देगी। उस मौत की कौन परवाह करे जिसके लिए किसी को अपनी निर्दोषता सिद्ध करनी पड़े? शंकालु जीवन जीने से निर्दोषता को सिद्ध करने के लिए मर जाना अधिक अच्छा है।' इसलिए उन्होंने लक्षण से कठोर प्रहार करने के लिए कहा ताकि जीवन के बंधन को प्रेम के बंधन से काटा जा सके।

लक्षण का हृदय दुख से फट गया, 'कैसे वह अपनी तलवार उस के खिलाफ उठा सकता है जिसका उसने अपनी बहन के समान आदर किया हो! कैसे वह उस स्त्री की जान ले सकता है जिसके गर्भ में अयुध्या के सिंहासन का भावी उत्तराधिकारी है! और इससे भी अधिक कैसे वह किसी निर्दोष के रक्त को बहा सकता है!'

सीता उनके संकोच को समझ गईं और उन्हें उनके लिए दुख का अनुभव हुआ। वे समझ गईं कि लक्षण का हृदय उनका साथ नहीं दे रहा है और वे स्वयं को अन्यायपूर्ण आदेश को क्रियान्वित करने के लिए प्रेरित नहीं कर पा रहे हैं।

चूंकि सीता मरने के लिए कृतसंकल्प थीं, इसलिए लक्षण को इस क्रूर कार्य को करने हेतु मनाने के लिए उन्होंने जानबूझ कर उन पर झूठे आरोप लगाने शुरु कर दिए, ताकि वे निस्संकोच उनके जीवन को समाप्त करने के लिए उत्तेजित हो सकें। उन्होंने कहा, 'क्या वे अपने भाई के आदेश से उनका वधिक बनकर नहीं आये हैं, फिर वे अब क्यों कमजोर पड़ गए हैं? क्या उन्हें कोई गुप्त उद्देश्य पूरा करना है जब संयोग से वे

दोनों एकांत वन में आ गए हैं? क्या उनके मीठे शब्द केवल उन्हें धोखा देकर फँसाने के लिए थे क्योंकि वह अब उनकी बंधक हैं?'

जब लक्षण ने इन अन्यायपूर्ण आरोपों को सुना, उनका हृदय काँप उठा। उन्होंने सोचा, 'फिर भी, उनके आरोपों में सच्चाई दिखाई देती है, कोई भी उसे निर्दोष नहीं मान सकता क्योंकि एक बार जब वह स्वयं ही एक अकेली औरत के साथ सूने जंगल में आ गया है। इसलिए सामाजिक निंदा के डंक को सहने की अपेक्षा वह उन्हें मार दे।' उसने अपनी तलवार उठाई। लेकिन संवेदना ने उनके हृदय को अभिभूत कर लिया और वह नहीं उठी। उनके विवश हाथों से तलवार छूट गई।

अपने संकल्प को दृढ करके उन्होंने दूसरी बार अपनी तलवार उठाई। दया और पश्चाताप ने उन्हें अशक्त कर दिया और उन्होंने अपनी तलवार पर नियंत्रण खो दिया। वह जमीन पर दोबारा गिर पड़ी।

तीसरी बार अपनी आँखों को कसकर बंद कर, तेज गति से उन्होंने अपनी तलवार सीता की कोमल गरदन पर गिरने दी। तलवार के गिरने के साथ वे भी अपने शिकार के पास मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यह उनकी गरदन पर एक तीक्ष्ण प्रहार की तरह नहीं गिरी जो उसे काट देती बल्कि सुगंधित फूलों की माला की तरह गिरी। वास्तव में उनकी पवित्रता ने तलवार से उसकी घातक तीक्ष्णता छीन ली थी।

सीता ने लक्षण की दण्डवत मुद्रा देखी। दुख ने उनके हृदय को आक्रांत कर दिया और वे भी चेतनाशून्य होकर गिर पड़ीं। कुछ समय के बाद उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। जीवन की किसी प्रकार की हलचल के बिना लक्षण अब भी वहाँ मूर्च्छित पड़े थे। बिना ढाढ़स बांधे उन्होंने देवताओं का उन पर दया करने और लक्षण का जीवन बचाने के लिए आह्वान किया। उनकी प्रार्थना फलीभूत हुई। उनके भस्मवत मुखमंडल पर जीवन की झलक दिखाई दी और उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं।

जब उनकी आँख खुली और उन्होंने सीता को जीवित पाया, वे बहुत प्रसन्न हुए। वे उठे और देवताओं से सीता को अपने दैवीय संरक्षण

में लेने के लिए प्रार्थना की। फिर उदास मन से सीता से विदाई लेकर अयुध्या नगर की ओर धीरे–धीरे चलने लगे। लेकिन केवल उनके शरीर ने ही सीता को छोड़ा था, उनका मन अब भी अपनी बहन के इर्द–गिर्द घूम रहा था। उन्हें उनकी चिंता सता रही थी। वे सोच रहे थे 'जब सीता का थका–मांदा शरीर बिना आराम अथवा विश्राम किये आगे बढ़ने से इंकार कर देगा, तब केवल यह कठोर मैदान ही होगा जो उनके इस असहाय शरीर को स्वीकार करेगा और उनके गर्भ में नारायण का जो वंशज है, वह महलों के राजसी वैभव में नहीं बल्कि जंगलों के निर्मम वातावरण में पहली बार अपनी आँखें खोलेगा। यह कितनी दयनीय स्थिति होगी!' दुखद विचारों ने उन्हें उनके चलने की शक्ति से लगभग वंचित कर दिया।

लेकिन निर्दयी भाग्य भी शायद उनकी प्रतीक्षा करता, यदि वह सीता का हृदय दिखाने में असफल होते। इसलिए इंद्र ने दया करते हुए रेत पर पड़े एक मृत मृग की रचना की। उस रास्ते से गुजरते हुए लक्षण की दुख से भरी दृष्टि उस मृग की लाश पर पड़ी। उन्होंने तुरंत उसका दिल सीता का दिल बता कर दिखाने के लिए निकाल लिया और दुखी मन से राम को उनके निष्ठुर आदेश का पालन किये जाने के बारे में विवरण देने के लिए अपने रास्ते पर चल दिए। राम ने वह दिल देखा और उनके ईर्ष्यालु होठों से केवल एक ही टिप्पणी बाहर आई कि उसका हृदय उतना ही गंदा था जितना एक पशु का।

उल्लेखनीय बिंदु– इस प्रसंग की घटनाएं और उनका वर्णन दोनों ग्रंथों में बहुत भिन्नता लिए हुए है। वा. में राम द्वारा सीता का निर्वासन लोकनिंदा से बचने के लिए किया गया जबकि वह उन्हें बहुत प्रिय थीं। रा. में इसका कारण राम द्वारा सीता के चरित्र पर शंका किया जाना था। रा. में सीता के निर्वासन की घटना से सीता के प्रति राम का एक निर्दयी, असहिष्णु और अन्यायी स्वरूप सामने आता है, जबकि वाल्मीकि में ऐसा दिखाई नहीं देता। मृग के हृदय को लेकर आने का प्रसंग भी वा. में नहीं है। रा. में लक्षण सीता को अपनी बहन मानते हैं, किंतु वा. में इसप्रकार की कोई चर्चा नहीं मिलती।

●

लव और कुश का जन्म

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

सीता जहाँ रो रही थीं, वहाँ से थोड़ी ही दूरी पर ऋषियों के कुछ बच्चे खेल रहे थे। वे उन्हें रोता देख अपने आश्रम की ओर दौड़े और तपस्यारत वाल्मीकि को उनके बारे में सूचना दी, 'भगवन्! गंगातट पर किन्हीं महात्मा नरेश की पत्नी हैं, जो साक्षात् लक्ष्मी के समान जान पड़ती हैं। इन्हें हम लोगों ने पहले कभी नहीं देखा था। वे मोह के कारण विकृत मुख होकर रो रही हैं।...ये साध्वी अपने लिए कोई रक्षक ढूँढ रही हैं। अतः आप इनकी रक्षा करें।' ऋषि ने अपने तपोबल से प्राप्त दिव्य दृष्टि से सब बातें जान लीं। जानकर वे उस स्थान पर दौड़े हुए आए, जहाँ सीता विद्यमान थीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीता की अनाथ–सी अवस्था को देखा और अपने तेज से उनको प्रसन्न करते हुए कहा, 'महाभागे! तुम्हारा सारा वृतांत मैंने ठीक–ठीक जान लिया है। मैं तपस्या से प्राप्त दिव्यदृष्टि से जानता हूँ कि तुम निष्पाप हो। अब तुम निश्चिंत हो जाओ। इस समय तुम मेरे पास हो। मेरे आश्रम के पास ही कुछ तापसी स्त्रियाँ रहती हैं, जो तपस्या में संलग्न हैं। वे अपनी बच्ची के समान तुम्हारा पालन करेंगी।' मुनि के ऐसा कहने पर सीता उनके पीछे–पीछे चल दीं। मुनि ने उन्हें आश्रम में मुनि–पत्नियों को सौंपते हुए बताया, 'ये परम बुद्धिमान राजा राम की धर्मपत्नी सीता यहाँ आई हैं। सती सीता दशरथ की पुत्रवधु और जनक की पुत्री हैं। निष्पाप होने पर भी पति ने इनका परित्याग कर दिया है। मुझे ही इनका लालन–पालन करना है। अतः आप सब लोग इन पर अत्यंत स्नेह–दृष्टि रखें।' कुछ समय बाद सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया जिसका समाचार मुनिकुमारों ने वाल्मीकि को जाकर दिया और उन पुत्रों की भूतों और राक्षसों से रक्षा की व्यवस्था करने की प्रार्थना की। ऋषि वाल्मीकि ने एक कुशाओं का मुट्ठा और उनके लव लेकर रक्षा–विधि का उपदेश देते हुए कहा, 'वृद्धा स्त्रियों को चाहिए कि इन दोनों बालकों में जो पहले उत्पन्न हुआ है, उसका मंत्रों द्वारा संस्कार किए हुए इन कुशों से मार्जन करें। ऐसा करने पर उस बालक का नाम कुश होगा और उनमें जो छोटा है, लव से मार्जन करने पर उसका नाम लव होगा।' इसप्रकार

जुड़वाँ हुए दोनों बालकों ने क्रमशः कुश और लव नाम धारण किए। उस समय शत्रुघ्न वहाँ उपस्थित थे। वे राम द्वारा दिए गए कार्य को पूरा करने के लिए जाते हुए रास्ते में वाल्मीकि के आश्रम में रुके थे। उनके कानों में राम और सीता के नाम, गोत्र के उच्चारण की ध्वनि पड़ी, साथ ही सीता के दो पुत्रों के होने का संवाद भी प्राप्त हुआ। तब वे सीता के पास जाकर उनसे मिले। उसके बाद ऋषि की आज्ञा से वे आगे जाने के लिए चल दिए।

रामकीर्ति के अनुसार

जंगल में अकेली रह जाने पर, सीता का अवर्णनीय दुख अब आँसुओं के रूप में उमड़ कर बाहर आ गया। आँसू, जिन्होंने अपने पति की दया पाने के लिए व्यर्थ ही सफाई दी थी, अब उन्होंने स्वर्ग के देवता की सहानुभूति को अपनी ओर खींचा। दयालु देवता ने एक भैंसे का रूप धारण किया और उनके सामने प्रकट हुए, उसकी मूक आँखों ने उन्हें सहानुभूतिपूर्वक अपने पीछे चलने के लिए आमंत्रित किया। वे तुरंत उस दयालु पशु के पीछे चलने लगीं और बहुत शीघ्र ही स्वयं को ऋषि वजमृग[52] के आश्रम में पाया।

दयालु हृदय ऋषि ने उन्हें पिता के जैसा घर प्रदान किया, जो छप्पर का तो था किंतु सुरक्षित, जिसकी छत के नीचे उन्होंने अयुध्या के राजा के उत्तराधिकारी को जन्म दिया। इंद्र की दिव्य रानियाँ स्वर्ग से नीचे आईं और परित्यक्त रानी तथा अयुध्या के भावी राजा के लिए दाई की भूमिका निभाई।

ऋषि ने उसका नाम मंकुट[53] रखा। सीता के अंधकारमय जीवन में यही एक आशा की किरण थी। बच्चे की मुखाकृति में उन्होंने अपने

---

52 वा. वाल्मीकि, रामकीर्ति, पृ 145

53 वा. कुश रामकीर्ति, पृ 145

पति की झलक देखी लेकिन इसने केवल उनके दुख को और बढ़ा दिया जो उनके हृदय को निर्दयता से निरंतर पीड़ित कर रहा था। एक शक्तिशाली राज्य के उत्तराधिकारी ने एक एकांत पेड़ की छाया में जन्म लिया! संसार में बच्चे का स्वागत करने के लिए पिता नहीं! पोषण करने और नींद में सुलाने के लिए कोई दासी नहीं! एक सम्राट के बालक का जन्म एक अभागी माँ की अभावग्रस्त गोद में! टूटे हृदय से निकली एक गहरी आह के साथ उन्होंने अपनी अंगूठी निकाली, जो उनके पास एक मात्र संपत्ति थी और इसे उन्होंने अपने नवजात शिशु की कोमल अंगुली में पहना दिया।

एक दिन सीता गहन ध्यान में लीन ऋषि की देखरेख में अपने शिशु को छोड़ कर स्नान करने चली गईं। उन्होंने वहाँ बहुत सारे उन वानरों को एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग लगाते हुए देखा जिन्होंने अपने छोटे बच्चों को दृढ़ता से अपनी छाती से लगा रखा था। वे भय से काँप गईं कि किसी भी क्षण कोई भी बच्चा अपनी पकड़ ढीली कर सकता है और नीचे गिर सकता है। इसलिए वानरों द्वारा अपने बच्चों की सही ढंग से देखभाल न करने के लिए उन्होंने उन्हें सचेत करने के उद्देश्य से डाँटा–फटकारा। लेकिन वानरों ने उनकी फटकार का गुस्से में प्रत्युत्तर दिया, 'क्या वानरों से अधिक वे स्वयं असावधान नहीं हैं? क्या वे स्वयं मूर्ख नहीं हैं जिन्होंने अपने बच्चे को एक ऋषि की देखरेख में, जो उस समय आसपास के वातावरण से बेखबर गहन ध्यान में लीन थे, एकांत कुटिया में छोड़ दिया है? अब कौन उस बच्चे की देखभाल करने वाला है?' अब उन्होंने एक माँ की दृष्टि से देखा। वानर इतने मूर्ख नहीं होते हैं कि उनका ध्यान अपने बच्चों से हट जाए। उनके प्रत्युत्तर ने सीता को इतना अधिक चेता दिया कि वह बिना समय गंवाए वापस गईं और बच्चे को अपने साथ ले आईं।

उसी समय ऋषि अपने ध्यान से उठ गए। उन्होंने बच्चे को चारों तरफ देखा। लेकिन बच्चे को वहाँ न पाकर वे सोचने लगे कि बेचारी सीता कैसे इस आघात को सहन करेगी? पति से वंचित, अब बच्चे से भी वंचित! ऋषि तो दया के साकार रूप थे। सीता को इस कठोर

विपत्ति से बचाने के लिए उन्होंने उनके बच्चे के बदले एक नए बच्चे की रचना करने के लिए स्लेट पर एक आकृति बनाई और उस में जीवन संचार करने के लिए किए जाने वाले आवश्यक धार्मिक कृत्य शुरु करने ही जा रहे थे, तभी सीता मंकुट को बाहों में लिए अंदर आईं। ऋषि ने बच्चे को देखकर राहत की सांस ली और उन्होंने अनुष्ठान को बीच में ही छोड़ दिया। लेकिन सीता ने उनसे उस अनुष्ठान को पूरा करने की प्रार्थना की ताकि मंकुट को उसके साथ खेलने के लिए साथी मिल जाए। अंततः ऋषि की अलौकिक शक्तियों से सृजित एक दूसरा बच्चा सीता के मातृवत ध्यान और प्रेम को बाँटने के लिए आ गया। नए बच्चे का नाम लब रखा गया। दोनों बच्चे स्वस्थ और ओजस्वी होते हुए बड़े होने लगे। उनकी प्रसन्नतापूर्ण ठिठोलियाँ प्रायः आश्रम की शांति को भंग करती रहतीं और उनकी माता के जख्मी हृदय के लिए ठंडे मलहम का काम करतीं।

उल्लेखनीय बिंदु

दोनों ग्रंथों में सीता के दो पुत्रों की बात कही गई है किंतु उन दोनों के जन्म की घटनाओं में अंतर है। रा. के वजमृग और मंकुट क्रमशः वा. के ऋषि वाल्मीकि और कुश हैं। वा. में वानरों वाला प्रसंग नहीं है। रा. में वाल्मीकि द्वारा कुश और लव के नामकरण के आधार का कोई उल्लेख नहीं है।

●

राम का अश्वमेध यज्ञ और सीता का रसातल में प्रवेश

वाल्मीकि रामायण के अनुसार

राजा राम के राज्य में जब चारों ओर शांति व्याप्त हो गई तब एक दिन उनके मन में राजधर्म की चरम सीमा स्वरूप राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करने का विचार आया, उन्होंने भरत और लक्ष्मण को बुलाकर अपने मन की बात कही। किंतु भरत ने राम के उस विचार से असहमति प्रकट करते हुए यही कहा कि इस यज्ञ का अनुष्ठान उनके लिए उचित नहीं है क्योंकि इससे भूमंडल के सभी राजवंशों का विनाश होगा, साथ ही

पृथ्वी पर जो पुरुषार्थी पुरुष हैं, उन सबका भी विनाश होगा। भरत की इस बात को सुनकर राम को बहुत हर्ष हुआ और उन्होंने भरत की बात को मान लिया। राम और भरत की बात को लक्ष्मण ने भी सुना था। तब लक्ष्मण ने कहा, 'रघुनंदन! अश्वमेध नामक महान यज्ञ समस्त पापों को दूर करने वाला, परम पावन और दुष्कर है। अतः आप इसका अनुष्ठान करें।' अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए लक्ष्मण ने बताया कि पहले जब देवता और असुर परस्पर मिलकर रहते थे, उन दिनों वृत्र नाम से प्रसिद्ध एक धार्मिक, स्थितप्रज्ञ और कृतज्ञ असुर रहता था। उसके राज्य में पृथ्वी सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाली थी। एक बार उसके मन में परम उत्तम तप करने का विचार उत्पन्न हुआ। अपने पुत्र मधुरेश्वर को राज्यभार सौंपकर वह कठोर तप करने लगा। उसके तप से भयभीत अपने राज्य के छिन जाने के भय से इंद्र तथा समस्त देवताओं ने भगवान विष्णु से उसके वध करने की प्रार्थना की। तब विष्णु भगवान ने इंद्रादि देवताओं से उसका वध करने का उपाय बताया, 'मैं अपने स्वरूपभूत तेज को तीन भागों में विभक्त करूँगा। मेरे तेज का एक अंश इंद्र में प्रवेश करेगा, दूसरा वज्र में व्याप्त हो जाएगा और तीसरा भूतल को चला जाएगा।' तत्पश्चात् इंद्रादि देवता उस वन में गए जहाँ महान असुर तपस्या करता था। उसके चारों ओर व्याप्त तेज से घबराए देवता अभी सोच ही रहे थे कि हम इसका वध कैसे करेंगे, तभी इंद्र ने दोनों हाथों से वज्र उठाकर उस वृत्रासुर के मस्तक पर दे मारा जिससे उसका मस्तक कट कर धरती पर गिर गया।

निरपराधी एवं तपस्यारत वृत्रासुर का वध करने पर इंद्र बहुत चिन्तित हो गए और अंधकारमय लोक में चले गए। जाने के समय ही ब्रह्महत्या उनके पीछे लग गई। देवताओं द्वारा इंद्र को ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त कराने का उपाय पूछने पर भगवान विष्णु ने कहा, 'पवित्र अश्वमेध यज्ञ के द्वारा मुझ यज्ञ पुरुष की आराधना करके इंद्र पुनः देवेंद्र के पद को प्राप्त कर लेंगे और फिर उन्हें किसी से भय नहीं रहेगा।' लक्ष्मण से अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान के इस उत्तम और मनोहारी प्रभाव को सुनकर राम बहुत प्रसन्न हुए। उसके बाद तीनों ने मिलकर अश्वमेध करने की बात पर विचार किया। तत्पश्चात् राम ने लक्ष्मण से कहा, 'मैं अश्वमेध–यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों में अग्रगण्य एवं सर्वश्रेष्ठ वसिष्ठ,

वामदेव, जाबालि और काश्यप आदि सभी द्विजों को बुलाकर और उन सभी से सलाह लेकर पूरी सावधानी के साथ शुभ लक्षणों से संपन्न घोड़ा छोड़ूँगा।' जब ऋषियों के सामने यह प्रस्ताव रखा गया, तो सभी ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की। राम ने लक्ष्मण को उससे संबंधित विविध कार्यों को करने का आदेश दिया।

अश्वमेध यज्ञ की तैयारियों को पूर्ण करके राम ने उत्तम लक्षणों से संपन्न तथा कृष्णसार मृग के समान काले रंग वाले एक घोड़े को छोड़ा। ऋत्विजों सहित लक्ष्मण को उस अश्व की रक्षा में नियुक्त कर राम नैमिषारण्य को चले गए जहाँ सभी के मान–सम्मान, दान आदि की उत्तम व्यवस्था थी।

नैमिषारण्य में अद्‌भुत यज्ञ के आरंभ होने पर वाल्मीकि अपने शिष्यों के साथ वहाँ पधारे। उन्होंने अपने दोनो शिष्यों से एकाग्रचित्त हो सब ओर घूम–फिर कर रामायण–काव्य का गान करने के लिए कहा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा, 'यदि महाराज श्री राम तुम दोनों को गाना सुनाने के लिए बुलावें तो तुम उनसे तथा वहाँ बैठे हुए ऋषि–मुनियों से यथायोग्य विनयपूर्ण बर्ताव करना। यदि श्री रघुनाथ पूछें कि तुम दोनों किसके पुत्र हो, तो महाराज से इतना ही कह देना कि तुम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हो।' ऋषि की इन बातों को सुनकर, उनकी आज्ञा लेकर वे दोनों वहाँ से चल दिए।

प्रातः होने पर समिधा–होम आदि के बाद वे दोनों भाई वहाँ संपूर्ण रामायण का गान करने लगे। रघुनाथ ने उस गान को सुना तो उन्हें भी बड़ा आश्चर्य हुआ। कर्मानुष्ठान से अवकाश मिलने पर पंडितों एवं विद्वज्जनों से भरी सभा में राम ने दोनों बालकों को बुलाया। राम के कहने पर उन बालकों ने नारदजी द्वारा प्रदर्शित प्रथम सर्ग–मूल रामायण का आरंभ से लेकर बीस सर्गों तक गान किया जिसे सुन कर सभी मंत्रमुग्ध हो गए। राम ने भरत से उन्हें 18 हजार स्वर्णमुद्राएं देने के लिए कहा जिन्हें उन्होंने स्वीकार नहीं किया। राम के ये प्रश्न पूछने पर 'इस काव्य की उपलब्धि कहाँ से हुई? इस महाकाव्य के श्लोकों की संख्या कितनी है? महात्मा कवि का आवास स्थान कौन–सा है? इस महान काव्य के

कर्ता कौन मुनीश्वर हैं और वे कहाँ हैं?' उन्होंने बताया कि इस रचना के रचयिता भगवान वाल्मीकि हैं, वे यज्ञस्थल में पधारे हुए हैं, इस महाकाव्य में चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान हैं, आदि से अंत तक पाँच सौ सर्ग तथा छह काण्डों का भी निर्माण किया है, इसके अतिरिक्त उत्तरकांड की भी रचना की है। दोनों भाईयों ने राम से यह भी कहा कि यदि वे उसे सुनना चाहते हैं तो यज्ञ कर्म से समय निकालकर अपने भाईयों के साथ बैठकर इसे सुनें। तत्पश्चात् राम कई दिनों तक वह उत्तम रामायण–गान सुनते रहे।

उस कथा से ही राम को मालूम हुआ कि वे दोनों सीता के ही पुत्र हैं। यह जानने के बाद उन्होंने शुद्ध आचार वाले दूतों को बुलाया और उन्हें वाल्मीकि के पास इस संदेश को लेकर भेजा, 'यदि सीता का चरित्र शुद्ध है और यदि उनमें किसी तरह का पाप नहीं है तो वे महामुनि की अनुमति ले यहाँ आकर जनसमुदाय में अपनी शुद्धता प्रमाणित करें।' वाल्मीकि ने उनकी बात स्वीकार कर ली। राम ने भी प्रसन्नचित्त होकर वहाँ आए ऋषियों और राजाओं से भी उस शपथ–ग्रहण में सम्मिलित होने के लिए कहा।

निश्चित समय पर राम सहित महर्षिगण, राक्षसगण, महाबली वानर, राजागण आदि सभी लोग सभा में पधारे। वाल्मीकि सीता को लेकर तुरंत वहाँ आए और उस जन समुदाय के बीच सीता की पवित्रता को प्रमाणित करते हुए कहा, 'दशरथनंदन! यह सीता उत्तम व्रत का पालन करने वाली और धर्मपरायणा है। आपने लोकापवाद से डरकर इसे मेरे आश्रम के समीप त्याग दिया था। ये कुश और लव जानकी के गर्भ से जुड़वाँ पैदा हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं।' वाल्मीकि की बात सुनकर राम ने उनसे यही कहा कि उनके कहने पर उन्हें सीता की पवित्रता का पूरा विश्वास हो गया है, फिर भी जनसमुदाय के बीच जनककुमारी की विशुद्धता प्रमाणित हो जाने पर उन्हें अधिक प्रसन्नता होगी।

उस समय सीता तपस्विनियों की तरह गेरूआ वस्त्र धारण किए हुए थीं। सबको उपस्थित जानकर वे हाथ जोड़े, दृष्टि और मुख नीचे किए हुए बोलीं, 'यदि मैं मन, वाणी और क्रिया के द्वारा केवल श्रीराम की

आराधना करती हूँ तो भगवती पृथ्वी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें।' विदेह कुमारी के इस प्रकार की शपथ लेते ही भूतल से एक अद्भुत और दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ। सिंहासन के साथ ही पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी भी दिव्य रूप में प्रकट हुईं। उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीता को अपनी दोनों भुजाओं से गोद में उठा लिया और उन्हें सिंहासन पर बैठा कर रसातल में प्रवेश कर गईं। सीता का रसातल में प्रवेश होता देख सभी देवता कहने लगे, 'सीता तुम धन्य हो! धन्य हो!' सीता का भूतल में प्रवेश देख वहाँ आए हुए सभी लोग आश्चर्य से भर गए। दो घड़ी तक वहाँ का सारा जनसमुदाय मोहाच्छन्न–सा हो गया। स्वयं राम भी बहुत दुखी हुए। उन्होंने पृथ्वी देवी से उनको लौटा देने की प्रार्थना की और कहा, 'मुझे सीता को लौटा दो; अन्यथा मैं अपना क्रोध दिखाऊँगा। मेरा प्रभाव कैसा है? यह तुम जानती हो।' राम जब क्रोध और शोक से युक्त हो ऐसी बातें करने लगे तो ब्रह्मा जी ने उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप का स्मरण कराते हुए कहा कि साध्वी सीता तो शुद्ध हैं। वे पहले से ही आपके पारायण में रहती हैं। आपका आश्रय लेना ही उनका तपोबल है। उसके द्वारा वे सुखपूर्वक नागलोक के बहाने आपके परमधाम में चली गईं हैं। इन सब बातों ने राम को सांत्वना दी और वे जनसमुदाय को विदा कर कुश और लव को साथ लेकर अपनी पर्णशाला में आ गए।

रामकीर्ति के अनुसार

समय के साथ दोनों लड़के दस वर्ष के हो गए। किंतु पराक्रम और शक्ति में वे बड़े से बड़े शूरवीरों से भी बढ़कर थे। एक दिन दोनों भाईयों ने अपनी माता से अनुमति ली और सघन जंगल के बीचोंबीच घूमने चले गए। वहाँ उन्होंने एक विशाल 'रंग' वृक्ष को देखा। अपने अस्त्र की शक्ति–परीक्षा के लिए मंकुट ने एक बाण वृक्ष पर छोड़ा जिसने उसे दो भागों में विभक्त कर दिया और वह बहुत तेज गड़गड़ाहट के साथ जमीन पर आ गिरा। उसके गिरने से दूर–दूर तक सारी पृथ्वी कंपायमान हो उठी।

इससे उत्पन्न हुआ कोलाहल अयुध्या के महल में राम के कानों तक पहुँचा। उन्होंने सोचा, 'किसने इस अकल्पनीय कोलाहल को करने

की हिम्मत की जबकि नारायण इस समय स्वयं मानव रूप में हैं? क्या किसी ने उनकी शक्ति को छीनने के लिए जन्म ले लिया है? यदि ऐसा है, तो उन्हें इसके बारे में जानना चाहिए और उसे परास्त करना चाहिए।'

इस बात को ध्यान में रखकर, उन्होंने अश्वमेध करने का निर्णय किया। बर्फ के समान सफेद शरीर, गहरे काले रंग के चेहरे वाले, लाल गुलाब के समान मुख और टांगों वाले घोड़े को आजाद छोड़ दिया गया। इसकी गरदन पर एक लेख संलग्न था कि जो कोई भी इस पर चढ़ने की हिम्मत करेगा, वह विद्रोही समझा जाएगा, तदनुरूप उसके साथ व्यवहार किया जाएगा। बरत और सत्रुद के साथ फ्राया अनुजित उस घोड़े के पीछे–पीछे गए।

अनेक जंगलों और स्थानों से होता हुआ वह घोड़ा घूमता रहा। अंत में, ईश्वरीय इच्छा से वह जंगल के उस हिस्से में चला गया जहाँ उस कोलाहल को पैदा करने वाला अपने भाई के साथ खेल रहा था। मंकुट ने वह लेख पढ़ा और तुरंत समझ गया कि किसने और क्यों इस घोड़े को आजाद छोड़ा हुआ है? उन दोनों भाईयों ने फिर उस सुंदर पशु को उसकी सरपट दौड़ का आनंद लेने के लिए पकड़ लिया।

फ्राया अनुजित इन दोनों लड़कों के बचकाने आचरण को देख रहे थे। वे इस प्रकार से पशु के ले जाने को और अधिक सहन न कर सके। तत्क्षण वे सामने आए और उनका रास्ता रोक लिया। लेकिन मंकुट के एक बाण के प्रहार ने उन्हें बेहोश कर जमीन पर गिरा दिया।

उन्हें होश में आने में कुछ ही क्षण लगे। स्वस्थ हो जाने पर उन्होंने एक छोटे वानर का रूप धारण किया और उन दोनों भाईयों के पास पहुँचे। इस समय मंकुट उसे मारने ही वाला था कि लब ने उसे कपड़ों में देखा तो उन्होंने सोचा एक वानर कपड़े पहने हुए! इसका मालिक कोई और होना चाहिए। इसलिए मारने के स्थान पर उन्होंने उसे मजबूती से बाँध दिया और यह अभिशाप देकर जंगल में छोड़ दिया कि इसके स्वामी के अतिरिक्त और कोई इसे बंधन से मुक्त कर पाने में सक्षम नहीं होगा।

फ्राया अनुजित ने होश में आने पर अपने को इस दुर्दशा में पाया। स्वयं उन्होंने, बरत और सत्रुद ने बंधन से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्न किए, किंतु सब व्यर्थ ही गए। अंततः अपमान का शिकार वानर राम के पास आया जिन्होंने उसे बंधन से मुक्त कर दिया। अपने सेवक की अपकीर्ति होने से परेशान राम ने बरत और सत्रुद को विशाल सेना के साथ फ्राया अनुजित के साथ जाने और दोनों छोटे दुष्ट बालकों को पकडने का आदेश दिया।

एक भयंकर युद्ध लड़ा गया, जिसके अंत में बरत के बाणों से मंकुट मूर्च्छित हो गिर गया, जबकि लब अपनी माँ की कुटिया की ओर भागा। इसप्रकार मंकुट को पकड़ कर अयुध्या ले जाया गया जहाँ उसे राम के आदेश द्वारा उसका सिर काटने तक कैद में सुरक्षित रखा गया।

इसी बीच लब ने अपनी माता को मंकुट के बारे में दुखभरी कहानी बताई। इस समय सीता के पास एक रहस्यमयी अंगूठी थी जो कठोर से कठोर गांठ को खोल सकती थी। उन्होंने इसे लब को दिया और उसे मंकुट को छुड़ाने के लिए भेजा।

नगर में उसने मानव रूप में एक दिव्य परी को देखा, जो मंकुट के लिए पानी खींच रही थी। लब ने पानी खींचने के लिए उसे अपनी सेवाएं प्रस्तुत कीं और ऐसा करते हुए उसने पानी के बर्तन में अपनी अंगूठी डाल दी। ज्योंही अंगूठी मंकुट के हाथ में पहुँची, उसने स्वयं को बंधनों से मुक्त पाया। दोनों भाई तब नगर से बाहर जंगल में आ गए और शत्रु पर घात लगाकर आक्रमण करने के लिए बैठ गए।

जब राम ने देखा कि उनका कैदी बच निकल भागा है, वे स्वयं एक विशाल सेना का नेतृत्व करते हुए मंकुट को खोजने के लिए चल दिए। जंगल के बीचोंबीच पिता और उनके दोनों पुत्रों के बीच एक भीषण संघर्ष हुआ। लेकिन पुत्र का बाण पिता का खून पीने के लिए नहीं था, और न ही पिता का बाण अपने पुत्र का जीवन समाप्त करने के लिए। बाण आकाश से उड़ते हुए आए और बिना किसी पर प्रहार किए नीचे गिर

गए। पहले पुत्र का बाण पुष्पों में बदला और राम के चरण कमलों की वंदना की।

विस्मित और आश्चर्यचकित राम ने अपने सामने वालों के वंश के बारे में जानना चाहा। जब उन्हें यह पता चला कि वे दोनों सीता के पुत्र हैं, वे आश्चर्य से अभिभूत हो गए। क्या सीता लक्षण के द्वारा नहीं मारी गई? राम के द्वारा पूछे जाने पर लक्षण ने सारी कहानी बता दी। राम की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही, जब उन्होंने अपनी रानी के निष्ठावान और स्वामीभक्त हृदय को ढूंढ निकाला।

वे उन दोनों भाईयों के साथ उनकी कुटिया में गए जहाँ सीता अपने पुत्रों की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थीं। यह उनकी प्रिय सीता की पहली झलक थी, नीले बादलों के पीछे क्षीण होता हुआ चाँद। लेकिन जब सीता को यह पता चला कि राम उनके साथ उनकी कुटिया तक आ गए हैं, वे अपने पति की दुष्टता और अत्याचारों के कारण तीव्र क्रोध से भर गईं। उसके जीवन को बरबाद करने से संतुष्ट न हुए तो अब उसके पुत्रों का जीवन भी बरबाद करने आ गए हैं।

राम ने उनसे क्षमा मांगी और महल लौटने के लिए अनुनय–विनय की। किंतु सीता राम की तथाकथित दयालुता से ऊब चुकी थीं। उन्होंने उनके प्रस्ताव को ठुकरा दिया क्योंकि उनका मानना था कि लंका में तो उसे सुरक्षा में रखा गया था फिर भी उनके अविश्वास का पात्र बनी। अब तो वह दस साल के लंबे समय से स्वतंत्र रूप से जंगल में रह रही है, फिर क्या वे उसके चरित्र को पहले से अधिक संदिग्ध नहीं समझेंगे? अब वे उसे कैसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर सकते हैं?

राम के पास इसप्रकार के कटाक्षों का कोई जबाब नहीं था। उनके पास केवल निष्कपट और अश्रुपूर्ण निवेदन का ही रास्ता था कि यदि वे उनके साथ नहीं जाना चाहतीं, तो इससे अच्छा वे उन्हें मार दें। लेकिन सीता ने उनके इन मधुर वचनों पर कोई ध्यान नहीं दिया और उन्होंने कहा कि वे राम की तरह नहीं हैं जो अपनी पत्नी को मारने का आदेश देने में भी नहीं हिचकिचाए।

सीता को किसी भी प्रकार से अपने साथ ले जाने में असमर्थ राम ने तब उनसे उनके पुत्रों के बारे में कहा ताकि वे उन्हें अपने साथ महल ले जा सकें और उनका पालन–पोषण उन नियमों के अंतर्गत कर सकें जो एक राजकुमार के लिए उचित होते हैं। प्रस्ताव सीता को कष्ट देने का एक और नया कारण था। यद्यपि वे अपने पुत्रों से प्रेम करती थीं फिर भी वे अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उन्हें अपने पास रखकर उनका भविष्य खराब नहीं करना चाहती थीं। विचलित हृदय से निकले आँसुओं के साथ उन्होंने अपने पुत्रों को अपने प्रतापी पिता के साथ जाने और अपने महान वंश का गौरव बढ़ाने की आज्ञा दी।

राम ने अपने दोनों पुत्रों के साथ अयुध्या के लिए प्रस्थान किया। यह उनकी विषादपूर्ण यात्रा थी और कभी–कभी उनके अनिच्छुक कदमों को सीता की मधुर यादें पीछे खींच कर मंद कर देती थीं। अंततः वे अयुध्या नगर में पहुँच गए जहाँ हार्दिक अभिनंदन उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

मंकुट और लब के दिन अपनी दादियों के उदारतापूर्वक उमड़े प्रेम में खुशी–खुशी आराम से बीतने लगे। फिर भी, उनके दिल की गहराईयों में अपनी दुखी माता के लिए उमड़ने वाले भाव बंद नहीं हुए। अंत में उनकी भावनाएं इतनी प्रबल हो गईं कि अयुध्या के महल ने भी उनके बाल मन को खुशी और शांति देना बंद कर दिया। इसलिए उन्होंने अपने पिता से अनुमति ली और अपनी माता के पास जाने के लिए जंगल की ओर प्रस्थान किया।

राम ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए सीता के पास पुनः संदेश भेजा कि यदि वे आने में असमर्थ हुईं तो आँसू, जो इस समय उनके इकलौते साथी हैं, उन्हें मौत के मुँह में ले जायेंगे। सीता ने अपने पुत्रों से इस संदेश को सुना। लेकिन उनका केवल एक ही उत्तर था कि यदि कभी राम पर ऐसा समय आया, तो वह उनके शरीर को अपनी आखिरी श्रद्धा अर्पित करने अवश्य आएंगी।

दुखी मन से वे दोनों भाई राजधानी लौट आए और उन्होंने राम को सीता के उत्तर के बारे में बताया। उत्तर की गंभीरता उनके लिए कई निद्रारहित रातें लेकर आई। अंत में, फ्राया अनुजित के साथ मिलकर राम ने एक कपटभरी योजना गढ़ी जो सीता को महल में ला सकती थी।

फ्राया अनुजित सीता के पास यह झूठा समाचार लेकर गए कि सीता के प्रति राम के दुख ने आखिर उनके जीवन को समाप्त कर दिया। यह सुनकर, उनकी क्रूरता के बावजूद, मृत्यु ने सीता के क्रोध और घृणा की सारी भावनाओं को मिटा दिया और राम को सारी अच्छाईयों के साथ प्रस्तुत कर दिया। मृत्यु के समाचार से सीता उन सभी क्रूरताओं को भूल गईं जो कभी उन्हें राम से मिली थीं। उन्होंने केवल उसी विशेष प्रेम को याद रखा जो वे उनके लिए रखते थे। इसलिए वह अपने पति के अवशेषों को अंतिम श्रद्धांजलि देने के लिए शीघ्रता से महल की ओर चल दीं। वे शव कक्ष में गईं जहाँ पर तथाकथित मृत शरीर एक पात्र में सुरक्षित रखा जाता था और विलाप करने लगीं। उनका विलाप राम तक पहुँचा, जो परदे के पीछे छिपे हुए थे। वे उस छिपे हुए स्थान से बाहर आए और उस विलाप करते हुए रूप को खुशी से अपने ज्वलित हृदय से लगाने के लिए उस ओर दौड़े। लेकिन उनकी इस कपटी युक्ति ने सीता के मन में केवल रोष की ज्वाला को दोबारा प्रज्ज्वलित कर दिया जो अब बुझने वाली थी। जब उनकी अश्रुपूर्ण प्रार्थना सीता को महल में ठहरने के लिए मनाने में व्यर्थ सिद्ध हुई, राम ने बल का सहारा लिया। राम ने अपने सभी भाईयों और फ्राया अनुजित को बुलवाया और शवकक्ष के सभी निकास द्वारों को बंद करने का आदेश दिया ताकि उन्हें रहने के लिए विवश किया जा सके।

लेकिन तभी उनको पूरी तरह से हताश कर देने वाली एक घटना वहाँ पर घटी। उस स्थान पर, जहाँ सीता खड़ी हुई थीं, उनकी प्रार्थना से धरती फट गई। उस दरार में वे प्रवेश कर गईं और पाताल के राजा, नागाविरुन के नगर में चली गईं। धरती ऊपर से बंद हो गई और उस पर राम का मूर्च्छित शरीर पड़ा हुआ था।

उल्लेखनीय बिंदु

सीता के रसातल में प्रवेश के प्रसंग दोनों ही ग्रंथों में हैं लेकिन इससे जुड़ी घटनाओं में काफी भिन्न्ता है। जब राम को पता चला कि सीता जीवित हैं तो वाल्मीकि द्वारा उनकी पवित्रता को प्रमाणित करने के बाद भी सीता से अपनी पवित्रता की शपथ लेने के लिए कहा गया। किंतु यदि रा. पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि इनमें से कोई भी घटना रा. में नहीं मिलती है। रा. में वर्णित अश्वमेध के लिए छोड़े गए घोड़े को पकड़ लेने पर मंकुट और लब का हनुमान, बरत और सत्रुद के साथ हुआ युद्ध, राम का उनसे सामना, मंकुट और लब के बारे में पता चलना कि वे दोनों सीता के पुत्र हैं, उस समय फिर राम का उनकी कुटिया पर जाकर सीता से माफी मांगना, अयुध्या लौटने के लिए अनुनय विनय करना, राम द्वारा एक चाल के तहत सीता को अयुध्या बुलवाने जैसी घटनाओं का वर्णन वा. में नहीं है। अंत में जहाँ वा. में पृथ्वी में प्रवेश के बाद सीता का जीवन समाप्त हो जाता है, वहीं रा. में सीता जीवित रहती हैं।

●

तृतीय भाग

रामकीर्ति के वे प्रसंग
जो वाल्मीकि रामायण में नहीं हैं।

दसकंठ का पूर्ववृत्त

दसकंठ अपने पूर्व जीवन में नंदक नामक अर्द्धदेवता था जिस पर देवताओं के पैरों को धोने का दायित्व था। निम्न पद पर होने के कारण सभी देवता उसके सिर या गालों को थपथपाने अथवा उसके बालों को खींचने में आनंद लेते थे। यद्यपि उन देवताओं को तो वैसा करने में आनंद आता था लेकिन वही बातें बेचारे नंदक को बहुत दुख देती थीं। जब वह इन बातों को सहने में असमर्थ हो गया, वह ईस्वर के पास गया और उनसे इस वरदान को देने की प्रार्थना की कि वह अपनी अंगुली से जिस किसी की तरफ संकेत करे, उसकी तत्काल मृत्यु हो जाए।

उसकी दीर्घकालीन और निष्ठावान सेवाओं से प्रसन्न होकर ईस्वर ने उसकी प्रार्थना को सहज ही स्वीकार कर लिया। परिणामस्वरूप उसकी अलौकिक शक्ति से अनभिज्ञ देवता जब हमेशा की ही तरह उसके साथ मनोरंजन करने के लिए आए, वैसे ही नंदक के अंगुली उठाते ही वे भीषण मृत्यु को प्राप्त हो गए। अंत में इंद्र ईस्वर के पास पहुँचे और उनके भक्त की विनाशकारी शक्ति को समाप्त करने हेतु उनसे दया करने की याचना की। इसलिए ईस्वर ने नारायण को नंदक को परास्त करने और देवताओं की रक्षा करने का आदेश दिया। तदनुसार नारायण ने स्वर्गिक अप्सरा का रूप धारण कर, नंदक के साथ दिखावटी प्रेम प्रदर्शित करते हुए उसके हृदय में कामवासना की आग इतनी अधिक प्रज्ज्वलित कर दी कि उसने स्वर्गिक अप्सरा से कामसंबंधों के लिए कहा। शर्त स्वरूप उस स्वर्गिक युवती ने उससे अपने साथ नृत्य करने के लिए कहा। प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए वे दोनों नृत्य करने लगे। नृत्य करते समय अप्सरा ने अपनी अंगुली से अपने पैरों की ओर संकेत किया। अपनी अंगुली की अनर्थकारी शक्ति के भूल जाने पर नंदक ने वैसा ही किया। परिणामस्वरूप उसके पैर टूट गए। इस अवसर को चूके बिना नारायण फौरन अपने स्वरूप में आकर नंदक को मारने के लिए तैयार हो गए। अपने आपको उनकी चालबाजी से छला हुआ पाकर उसने वीरता के सारे नियमों के विरुद्ध उनकी उस पौरुषहीन नीति के लिए काफी भला–बुरा कहा। उसकी फटकार के बाद नारायण ने कहा कि आने वाले जन्म में

नंदक दस सिर और बीस भुजाओं के साथ जन्म लेगा, फिर भी वे एक सिर और दो हाथ वाले मानव के रूप में उसका वध करेंगे। इसप्रकार नंदक ने अपने पूर्व जन्म में नारायण द्वारा कहे गए वचनों को पूरा करने के लिए दसकंठ के रूप में जन्म लिया।

●

दसकंठ का मंडो के साथ विवाह

यद्यपि दसकंठ का विवाह पहले से ही पाताल की राजकुमारी काल–अग्गी के साथ हो चुका था, फिर भी उसके मंडो[54] नाम की एक दूसरी रानी भी थी जिसे ईस्वर ने उसे प्रदान किया था।

मंडो एक साधारण स्त्री नहीं थी। वास्तव में उसका जन्म हिमालय के जंगलों में तप कर रहे किन्हीं चार ऋषियों की चमत्कारिक शक्ति से हुआ था। उन ऋषियों का प्रातः का भोजन दूध होता था जो गायों के एक झुंड द्वारा स्वतः ही शीशे के बरतन में भर दिया जाता था। प्रतिदिन भरपेट दूघ पी लेने के पश्चात वे बचे हुए दूध को निकट में रहने वाले मेंढक को दे दिया करते थे।

उसी समय में पाताल में एक नाग–कन्या रहती थी जो असामान्य रूप से कामुक थी। चूंकि उसकी यौन सुख की इच्छा अपने प्रदेश में असंतुष्ट बनी रहती थी, इसलिए उसने अपना घर छोड़ दिया, एक छेद किया और ऊपरी दुनिया में आ गई। यहाँ पर भी उसे कोई ऐसा नहीं मिला जिसके साथ वह अपने यौन सुख को संतुष्ट कर पाती। अंत में

---

54 [1]वाल्मीकि– मंदोदरी। किंतु थाई भाषा में तालव्य ध्वनि के स्थान पर गल्टरल d के रूप में उच्चरित होता है, इसलिए इस शब्द का अर्थ 'मेंढक' होता है और तदनुसार मंदोदरी की उत्पत्ति एक मेंढक के कारण हुई बताई गई है। रामकीर्ति पृ 16

उसका सामना एक सर्प से हुआ जिसे उसने अपने साथ शारीरिक सुख भोगने के लिए आमंत्रित किया।

चारों ऋषि जब जंगल से अपनी प्रतिदिन की आवश्यकता हेतु फलों को इकट्ठा करके लौट रहे थे, तब उन्होंने नाग कन्या को आपत्तिजनक अवस्था में देखा। उन्होंने उसके कामातुर मन में आदर जगाने के लिए उसकी पूँछ पर चोट की। इसप्रकार देखे जाने से लज्जित होकर और चार साधुओं द्वारा चोट पहुँचाए जाने के कारण वह नाग कन्या उन ऋषियों से बदला लेने की भावना को मन में पाले हुए तुरंत अपने प्रदेश में नीचे चली गई। फिर एक उपयुक्त अवसर पाकर वह दोबारा उस संसार में आई और दूध वाले शीशे के बरतन में जहर उगल दिया।

लेकिन वह मेंढक उसके द्वारा प्रतिशोध में की जाने वाली हत्या के इन निर्दयी प्रयासों का दृष्टा था। चारों ऋषियों के प्रति कृतज्ञ उस जीव ने घातक खतरे से उन्हें सावधान करने के उद्देश्य से जहर के बरतन में छलांग लगा दी और मौत को गले लगा लिया।

हमेशा की तरह चारों ऋषि सुबह का दूध पीने आए और उसकी सतह पर मरे हुए मेंढक को देखा। भूलवश उन्होंने उसे एक लालची जीव समझा, फिर भी तरस खाकर उन्होंने मंत्रोच्चारण से उसे पुनर्जीवित कर दिया। लालच के लिए अनुचित ढंग से फटकारे जाने पर उसने उनके सामने सच्चाई प्रगट कर दी। वे बहुत खुश हुए और उसके कृतज्ञतापूर्ण उपकार को चुकाने के लिए, जिसके कारण वे उसके ऋणी हो गए थे, उन्होंने उस बदसूरत मेंढक को सभी कन्याओं में सबसे सुंदर युवती के रूप में बदल दिया, उसे मंडो नाम दिया और उसे ईस्वर को समर्पित कर दिया जिन्होंने आगे उसे एक दासी के रूप में उमा को सौंप दिया।

अब, कैलास पर्वत पर एक दुर्घटना घटी। दिशाओं का अधिष्ठाता देवता विरुलहक ईस्वर के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए कैलास पर्वत पर यह सोचते हुए चढ़ रहा था कि ईस्वर उस समय शिखर पर सभी देवताओं का स्वागत कर रहे होंगे, इसलिए वह अपनी सच्ची भक्ति को दर्शाते हुए प्रत्येक कदम पर दण्डवत करते हुए चलने लगा।

संयोगवश, ऐसा हुआ कि उस समय ईस्वर वहाँ नहीं थे। इसलिए श्रद्धा भाव को व्यर्थ में व्यक्त करते देख सराभू नाम की छिपकली ने हँसकर उसकी खिल्ली उड़ाई। विरुलहक ने ऊपर देखा, निस्संदेह उसने ईस्वर को वहाँ नहीं देखा किंतु उसकी नजर सराभू पर पड़ी। उसे एकदम भीषण क्रोध आ गया। उसने उस सांप को जिसे वह अलंकारयुक्त कपड़े की तरह कंधे पर लटकाए रहता था, उतारा और उस पर फेंक दिया। इससे सराभू की मौत हो गई। किंतु उसने जिस शक्ति का प्रयोग कर उसे फेंका था, उसने पर्वत के एक हिस्से को नीचे झुका दिया।

जब ईस्वर ने पर्वत को एक तरफ झुका पाया तो उन्होंने घोषणा की कि जो कोई भी इसे पूर्ववत् स्थिति में लाने में सफल होगा, उसे उसका मनचाहा पुरस्कार दिया जाएगा। देवताओं ने भरसक प्रयत्न किए किंतु कैलास स्थिर रहा।

तब ईस्वर ने दसकंठ को बुलवाया, जिसने उसे उठाने के लिए अपने आप कहा। उसने ब्रह्मा के समान अपने शरीर का विस्तार किया और अपनी संपूर्ण शक्ति उसे पूर्ववत् स्थिति में लाने के लिए लगा दी। उसका प्रयास सफल रहा। पुरस्कार के रूप में वह उमा को पाना चाहता था। चूंकि ईस्वर अपने वचन को नहीं तोड़ सकते थे, इसलिए उमा उसे दे दी गई। दसकंठ ने उमा को ग्रहण किया। लेकिन उसने उनके शरीर को अत्यधिक गरम पाया। फिर भी उसने उन्हें अपने सिर पर उठाया और लंका के लिए चल पड़ा।

देवता ईस्वर की प्रतिज्ञा के अमंगलकारी परिणामों के प्रति सचेत होकर उमा को उन्हें वापस दिलाने का उपाय खोजने लगे। इसलिए नारायण ने अपने आप को एक बूढ़े माली के रूप में परिवर्तित कर लिया। फिर वह एक वृक्ष की जड़ को ऊपर करके वृक्षारोपण का अभिनय करने लगे। जब दसकंठ ने यह देखा तो उसने उसे उसकी मूर्खतापूर्ण कार्यविधि के लिए डाँटा। लेकिन बूढ़े व्यक्ति ने उसे मुँह तोड़ जबाब दिया कि वह तो उससे भी ज्यादा मूर्ख है क्योंकि वह तो एक ऐसी अशुभ औरत को ले जा रहा है जिसका शरीर भीषण रूप से इतना गरम है कि वह उसके सारे वंश को जलाकर समाप्त कर देगा। उसे इससे अच्छी मंडो नाम की

स्त्री को पसंद करना चाहिए। इसलिए दसकंठ ने उमा को ईस्वर को लौटा दिया और उसके स्थान पर मंडो को ले लिया।

●

अंगद का जन्म

ईस्वर से मंडो को प्राप्त कर दसकंठ जब लंका वापस जा रहा था, रास्ते में उसे खिडकिन के राजा, बाली के महल के ऊपर से गुजरना पड़ा। बाली मंडो के सौंदर्य पर मुग्ध हो गया। दसकंठ के द्वारा उसके महल के ऊपर से गुजरने के बहाने उसने उसे लड़ने की चुनौती दी। विजय बाली के पक्ष में हुई और मंडो विजेता की पत्नी हो गई।

पराजित और अपमानित हो दसकंठ लंका वापस आ गया। अंत में उसके आचार्य अंगद की मध्यस्थता से मंडो उसे वापस लौटा दी गई। उस समय जब मंडो दसकंठ को वापस दी गई थी, वह गर्भवती थी। इसलिए महल छोड़ने से पहले बाली के अनुरोध पर अंगद ने उसके गर्भाशय से भ्रूण बाहर निकाल कर बकरी के गर्भाशय में रख दिया। जब प्रसव का समय आया, तो उसने बच्चे को बकरी के गर्भ से बाहर निकाला और उसे अपना नाम 'अंगद' दे दिया और उसे उसके पिता बाली को वापस कर दिया।

जब वह बालक दस वर्ष की उम्र का हुआ, उसे धार्मिक संस्कार हेतु नदी में स्नान के लिए ले जाया गया। अब, एक वानर के साथ मंडो के कलंक को निरंतर उस बच्चे में पाकर दसकंठ ने उसे मारने का मन बना लिया। इसलिए उसने अपने को एक विशाल केकड़े के रूप में परिवर्तित कर लिया और पानी में छिपा रहा। लेकिन वह वानर सेना की चौकसी निगाहों से नहीं बच सका। परंतु भरसक प्रयास करने पर भी वे उसे पकडने में असफल रहे।

इसलिए बाली को सूचित किया गया। वानरराज को देखकर लंका का राजा अपने स्वरूप में आ गया। तत्काल उनके बीच एक भयंकर युद्ध छिड़ गया। अंत में दसकंठ को बंदी बना लिया गया और उसे वानर

समूह के लिए हँसी का पात्र बना दिया गया। सात दिनों तक बेचारा राजा तिरस्कार और अपमान का घृणित केंद्र बना रहा। अंत में निराश और अपमानित कर उसे छोड़ दिया गया।

●

दसकंठ का अमरत्व

बाली द्वारा दूसरी बार प्राणघातक अपमान करने और शर्मिंदगी से हराने जाने पर, दसकंठ ने फिर अपने आचार्यों से सलाह ली। आचार्य अंगद ने अपने प्रिय शिष्य को यज्ञ का आयोजन करने की सलाह दी जिसके द्वारा वह अपनी आत्मा को अपने शरीर से बाहर निकाल कर उसे किसी दूसरी जगह रखने की चमत्कारिक शक्ति प्राप्त कर सकेगा जिससे कोई भी अस्त्र उसे मार नहीं सकेगा चाहे वह उसके शरीर को घायल कर दे। दसकंठ ने उनके निर्देशों का पालन किया। उसका यज्ञ सफल हुआ। अब उसके द्वारा प्राप्त चमत्कारिक शक्ति अमरता के निकटतम थी। अतः उसने उसकी राक्षसी निरंकुशता को और भड़का दिया जो अब सभी लोकों में एकाएक हिंसक तरीके से फैलने लगी।

सबसे पहले पुष्पक विमान को पाने के लिए उसने अपने भाई कुपेरन पर आक्रमण किया। दसकंठ की शक्ति का सामना करने में असमर्थ वह पुष्पक को वहीं छोड़कर आकाश मार्ग से ईस्वर के पास भाग गया। क्रोधावेश में ईस्वर ने एक हाथी दाँत दसकंठ के वक्षस्थल पर फेंका। अपंग हुआ वह लंका वापस चला गया और विश्वकर्मा से हाथी दाँत को बाहर निकालने के लिए सहायता मांगी।

स्वास्थ्य लाभ के बाद उसने स्वयं को नर मछली के रूप में बदल लिया और मादा मछली से प्रणय निवेदन किया। परिणामस्वरूप एक मत्स्य कन्या का जन्म हुआ जिसका नाम सुवर्णमच्छा रखा गया। बाद में उसने एक हाथी का स्वरूप धारण किया और एक हथिनी के साथ सहवास किया। उसकी हथिनी पत्नी ने उसे दो बच्चे दिए। उनके शरीर

राक्षसी थे और सिर हाथी के। एक का नाम किरिधर और दूसरे का नाम किरिवन रखा गया।

●

राम का अपहरण। मैयराब वध

जब दसकंठ यह समझ गया कि लंका की अभेद्य घेराबंदी हो चुकी है, तब उसने दुश्मन को हराने के लिए दूसरी युक्ति का सहारा लेने की सोची। उसने मारीश के पुत्र वैयाविक को पाताल भेजकर सहमालिवान के पौत्र, महायाम के पुत्र मैयराब को बुलबाया। मैयराब उस समय पाताल का राजा था और एक भयानक राक्षस था। अपने गुरु सुमेध मुनि से उसने सारा धार्मिक ज्ञान और युद्ध कौशल प्राप्त किया था। सुमेध अपने शिष्य से इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने मैयराब की आत्मा को उसके शरीर से निकाल कर और उसे एक मधुमक्खी के रूप में बदल कर त्रिकूट पर्वत पर छिपा दिया था। इसने उसे वस्तुतः मृत्यु से प्रतिरक्षित कर दिया और उसे अमरता का परम सुख प्रदान किया। ऐसे में व्याकुल दसकंठ ने अभेद्य मैयराब से सहायता मांगी।

इस समय उसके पास एक जादुई पाउडर था जिससे वह किसी को भी नींद में सुला सकता था। उसने वह पाउडर और एक फुंकनी ली और वानरों के शिविर में पहुँच गया। यद्यपि वह सचेत था, तथापि वह सावधान बिभेक से बच नहीं सका। उनकी पारदर्शी आंखों ने उन्हें आने वाले खतरे को दिखा दिया। अतः मैयराब जब शिविर के पास पहुँचा, उसने सेना को किसी भी संकट का सामना करने में पूर्णतया तैयार पाया। हनुमान ने अपना शरीर पहले से ही ब्रह्मा के समान बड़ा कर रखा था और राम उनके अगाध मुख में पूरी तरह से सुरक्षित थे। लेकिन उनकी सारी सतर्कता मैयराब की चमत्कारिक शक्ति के आगे निष्फल हो गई। वानरी स्वरूप धारण कर वह वानरों में आसानी से घुलमिल गया और उसे यह पता चल गया कि बिभेक ने उन सभी को आने वाले खतरे के प्रति सावधान कर दिया है जो उसकी भविष्यवाणी के अनुसार प्रातःकाल की पहली किरण के साथ ही समाप्त होना था।

अब मैयराब के पास एक रहस्यमय फुंकनी थी। जल्दबाजी में सेना को छोड़कर वह पर्वत के शिखर पर चढ़ गया और फुंकनी को उठाया। तुरंत चमकीला आकाश भोर के सितारों के साथ एक चांदी सदृश मंद प्रभा वाले शांत समुद्र के समान हो गया। वानरों ने प्रसन्न होकर सोचा कि रात गुजर गई है जिसके साथ संकट की सभी संभावनाएं समाप्त हो गई हैं। इसलिए उन्होंने रात में चैन से आराम करने के लिए अपनी सतर्कता ढीली कर दी।

तत्पश्चात् मैयराब निद्रा–पाउडर के साथ वहाँ पहुँचा और फुंकनी से उसे उड़ाने लगा। धूसर कोहरे की परत ने शिविर को आच्छादित कर लिया और एक एक कर सारे वानर गहरी नींद में डूब गए। सुग्रीव अपने कर्तव्यों के प्रति विस्मरणशील होकर वहाँ निष्क्रिय पड़ा था; हनुमान का विशाल शरीर भी वहाँ निर्जीव–सा पड़ा था और उनके मुख में सीता के जीवनस्वरूप राम अचेत अवस्था में पड़े थे। कभी–कभी सूखी पत्तियों के गिरने और गहरी नींद में होने वाली आवाजों को छोड़कर गहन शांति ने पूरे शिविर पर आधिपत्य जमा लिया। तभी अचानक मैयराब की पदचाप से वह शांति भंग हो गई यद्यपि वह बड़ी ही सावधानी से शिविर में घुसा था। उसने राम को अपनी बाहों में उठाया और तेजी से पाताल को चला गया।

जैसे ही वानरों को होश आया, वे संकट को समझ कर पूरी तरह घबरा गए। लेकिन वहाँ पर बिभेक अदृश्य को देखने के लिए अपने रहस्यमय क्रिस्टल के साथ थे। हनुमान तुरंत बिभेक के बताए हुए मार्ग पर चल पड़े। यह मार्ग उन्हें चक्र जितने बड़े कमलों से भरे एक तालाब पर ले गया। हनुमान ने उनमें से एक फूल को तोड़ा और उसके खोखले तने में उन्हें दूर तक एक रास्ता दिखाई दिया। वायुपुत्र उस रास्ते से नीचे चले गए और उन्होंने अपने आप को दीवार के सामने पाया जिसकी सुरक्षा भयानक राक्षसों द्वारा सतर्कता से की जा रही थी। उनके प्रहार ने राक्षसों का अंत कर दिया और दीवार के टुकड़े–टुकड़े कर दिए। हनुमान ने अपनी यात्रा पुनः आरंभ कर दी। वे अभी अधिक दूर नहीं गए थे कि उनका सामना एक मदमस्त, जंगली और विशाल हाथी से हुआ। परंतु निरीह पशु जब हनुमान के सामने आया, वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

वानर बहादुरी और सतर्कता से अपने मार्ग पर चलता रहा। शीघ्र ही उसकी यात्रा एक बार फिर धुएं रहित तीव्र लपटों वाले भयानक पर्वत से बाधित हुई। लातों के जोरदार प्रहारों से उसने संपूर्ण पर्वत के टुकड़े–टुकडे कर दिए और अपने रास्ते पर आगे बढ़ गया। एकाएक वह मुर्गियों जितने बड़े मच्छरों के झुंड से घिर गया। लेकिन जिसका न तो लपटें कुछ बिगाड़ सकीं, न ही हाथी उसे कुचल सका, उसका मच्छर क्या बिगाड़ सकते थे चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न थे। हनुमान बिना भ्रम के और बिना थके आगे बढ़ते गए। आगे बढ़ते हुए वे खिले कमलों से आच्छादित दूसरे तालाब पर पहुँच गए और अंत में वे अपने समान क्षमता वाले योद्धा से मिले।

हनुमान का मत्स्य वानर पुत्र मच्छानु इस तालाब की निगरानी कर रहा था। उसकी माता सुवर्नमच्छा द्वारा उसे समुद्र के किनारे छोड़ दिये जाने पर मैयराब ने उसे अपना लिया था और उसका पालन–पोषण किया था। वह एक स्वप्न से प्रेरित हो कर समुद्र के किनारे गया था और उसे वहाँ पड़ा पाया था। तालाब के किनारे आराम से घूमते समय उसने एक विचित्र आकृति को तेजी से उस ओर आते देखा। दृढ़ कदमों से वह घुसपैठिए की ओर तेजी से दौड़ा और उसे ललकारा। पुत्र पिता के सामने था और पिता का सामना अपनी समान क्षमता वाले अपने परिवार के ही सदस्य से हो गया।

लड़ाई के अंत में किसी की विजय न हुई। दोनों ही एक दूसरे की शक्ति और रूपरंग को देखकर आश्चर्यचकित थे जिसके कारण उन दोनों के बीच कुछ आत्मीय संबंध होने की एक धुंधली आशा दिखाई दी। उन्होंने एक दूसरे का परिचय पूछा। तब पिता और पुत्र को एक दूसरे का पता चला। जो बाँहें एक दूसरे का गला दबाने के लिए तनी हुई थीं, अब उन्होंने एक दूसरे को आलिंगन में भर लिया।

इसके बाद हनुमान ने मच्छानु को पाताल आने के अपने उद्देश्य से अवगत कराया। एक वफादार रक्षक मच्छानु अपने पोषक पिता के रहस्यों को उन्हें बताने के लिए स्वयं को राजी न कर सका। परंतु वह अपने जन्मदाता को भी निराश नहीं करना चाहता था। इसलिए दोनों पक्षों

से समान व्यवहार करते हुए उसने पहेली में कहा, 'जिस रास्ते से तुम आए हो, वह अब भी उपस्थित है। उसी रास्ते का तुम अनुगमन क्यों नहीं करते हो? यह संकेत हनुमान के लिए काफी था। पल भर में ही उन्होंने एक बहुत बड़े आकार वाले कमल को तोड़ा और इसके तने की चौड़ी खोखल में से नीचे चले गए। शीघ्र ही यह रास्ता उन्हें पाताल क्षेत्र में ले गया। वहाँ सबसे पहले उनके कानों में विलाप करती हुई एक औरत का स्वर पड़ा जो पाताल लोक के शांत वातावरण को चीर रहा था। यह मैयराब की बहन बिरकवान थी, जो अपने बेटे के लिए विलाप कर रही थी। उसे एक कड़ाह को पानी से भरने का आदेश दिया गया था जिसमें वैयाविक को राम के साथ खौलते पानी में डालना था। लेकिन कोई भी माँ अपने ही पुत्र को मौत के मुँह में ढकेलने का निमित्त नहीं बन सकती है। इसने उसके असहाय दिल को तोड़ दिया था और वह हताशा में विलाप कर रही थी। लेकिन वह इतनी असहाय थी कि पाताल के राजा की आज्ञा की अवहेलना भी नहीं कर सकती थी। अश्रुपूर्ण आँखों और दुख से भरे हुए हृदय से वह अपने पुत्र के लिए मृत्यु का जल भर रही थी, उसने अकस्मात हनुमान को चोरी से आते हुए देखा। वानर ने उसे सांत्वना दी और उसके पुत्र को बचाने का प्रस्ताव दिया, यदि वह उन्हें उस स्थान पर ले जाए जहाँ राम को गुप्त रूप से कैद किया हुआ था।

वास्तव में उसके लिए यह लगभग एक असंभव–सा काम था क्योंकि उसे एक ऐसे द्वार से गुजरना था जिसकी चौकसी राक्षसों द्वारा सतर्कता से की जा रही थी। उसमें से गुजरने से पहले उसका वजन एक ऐसी सूक्ष्मभेदग्राही तराजू में किया जाना था जो मुश्किल से दिखाई देने वाली वस्तु को भी तौल सकती थी। उसके वजन में तनिक सी भी वृद्धि उसे तत्क्षण मौत के मुँह में ले जा सकती थी। लेकिन हनुमान ने उसकी एक न सुनी और वे उससे उन्हें द्वार पार करवाने में सहायता करने के लिए आग्रह करते रहे। अंत में उसके अंदर का मातृत्व जीवन के प्रति सारे भयों पर विजयी हो गया और वह उनके इच्छित स्थान तक उनका मार्ग दर्शन करने के लिए सहमत हो गई।

हनुमान ने उस समय स्वयं को कमल के एक महीन रेशे में बदल लिया और उसके दुपट्टे में छिपे रहे। फिर भी, जब उस राक्षसी को प्रवेश कराने से पहले ठीक प्रकार से तोला गया, तराजू उसके भार को सह न सकी और उसके टुकड़े–टुकड़े हो गए। तुरंत राक्षसी हाथ उसका अंत करने के लिए आगे बढ़ गए। लेकिन उसने उन्हें उसके शरीर में से किसी भी प्रकार की संदिग्ध वस्तु को खोजने की चुनौती दी। उसने तर्क दिया कि तराजू के जीर्ण–शीर्ण होने के कारण ही वह उसके भार को सह न सकी। उन्होंने उसकी पूरी तरह से जाँच की किंतु उन्हें एक महीन रेशे के अलावा कुछ नहीं मिला। कौन सोच सकता था अथवा अनुमान लगा सकता था कि यह महीन रेशा अपने में विनाश की शक्ति से सराबोर था? तत्पश्चात् उन्होंने उसे जाने दिया।

इसप्रकार मौत के मुँह से मुश्किल से बची वह, बड़ी प्रसन्नता से उनका मार्गदर्शन करते हुए उन्हें एक लोहे के पिंजरे के पास ले गई जो ताड़ के वृक्षों के बीच बड़ी ही सावधानी से छिपाया हुआ था। वहाँ हनुमान ने राम को उस समय भी गहरी नींद में पाया, उस खतरे से बेखबर जिसमें वे थे। भक्त वानर ने उन्हें अपनी बाहों में धीरे से उठाया और उन्हें अधिक सुरक्षित स्थान पर ले गए। उसके बाद वे मैयराब के पास पहुँचे जो सभी बुराईयों की जड़ था।

उन दोनों के बीच एक भयंकर युद्ध हुआ जिसने पाताल को पूरी तरह हिला दिया। हनुमान ने उस पर जड़ से उखड़े हुए ताड़ के पेड़ों से प्रहार किया, लेकिन राक्षस अब भी घाव अथवा मौत से प्रतिरक्षित था। तब बिरकवान ने उन्हें मैयराब[55] के वरदान से अवगत कराया। जैसे ही उसके मुँह से शब्द निकले, हनुमान ने अपने शरीर को बढ़ा लिया, अपनी लम्बी

---

[55] वाल्मीकि रामायण में मैयराब का वर्णन नहीं मिलता है। लेकिन बंगाली रामायण में हम महिरावण को पाते हैं। यह बंगाली से लिया गया हो सकता है जैसे कि रावण के दरबार में अपनी पूँछ की कुंडली पर अंगद का बैठना, जो कि बंगाली रामायण में ही है।
रामकीर्ति पृ 82

भुजा त्रिकूट तक फैला दी, मैयराब की परिवर्तित आत्मा वाली मधुमक्खी को पकड़ लिया और उसे कुचल कर मार दिया। जैसे ही मधुमक्खी कुचली गई, वैसे ही लंका के राजा का दुष्ट मित्र मैयराब निष्प्राण और निर्जीव होकर गिर पड़ा।

तत्पश्चात् हनुमान ने वैयाविक को पाताल का राजा बना दिया और मच्छानु को उसका निश्चित उत्तराधिकारी बना दिया।

तब अपनी सुरक्षित बाहों में राम को लेकर वे शिविर में लौट आए जिससे वानरों में खुशी और राक्षसों में घोर निराशा छा गई।

●

लंका में विद्रोह

दसकंठ की मृत्यु के पश्चात् एक दिन चक्रवाल का राजा और दसकंठ का मित्र महापाल देबासुर अपने मित्र से मिलने के लिए आया, लेकिन जब उसे यह पता चला कि उसकी हत्या कर दी गई है, उसे बड़ा दुख हुआ। उसने बिभेक, जो अब राजा दसगिरिवंग्श था, को बुलवाया। लेकिन उसने उसकी प्रार्थना को स्वीकार करने से मना कर दिया। इस पर चक्रवाल के राजा ने लंका को चारों ओर से घेर लिया।

राजा दसगिरिवंग्श के पास अब कोई चमत्कारिक शक्ति नहीं थी केवल भविष्य की अंधकारमय छाती को वेधने की शक्ति के। इसलिए यह निर्णय किया गया कि प्रत्येक सप्ताह राम उसके पास एक बाण भेजेंगे और यदि कुछ गलत घटता है तो दसगिरिवंग्श उसके साथ एक टिप्पणी नत्थी कर उसे वापस भेज देंगे। उस समय जब देबासुर ने नगर को चारों ओर से घेर लिया था, बिभेक राम के बाण की प्रतीक्षा कर रहे थे। बाण पहुँचा और टिप्पणी के साथ लौट गया। राम ने फ्राया अनुजित को उसकी मदद के लिए भेज दिया।

उस विशाल वानर ने शत्रु का सामना किया। उन्होंने राक्षस की दोनों टांगों को पकड़ा और उसे दो भागों में फाड़ दिया। लेकिन यह

देखकर वे आश्चर्यचकित रह गए कि दोनों भाग आपस में जुड़ गए और राक्षस जीवित खड़ा हो गया। अंत में बिभेक के निर्देश पर उन्होंने पूरी ताकत से उसकी छाती फाड़ दी और उसका दिल बाहर निकाल लिया। राक्षस गिरकर मर गया। चक्रवाल के रिक्त सिंहासन पर पाओवानासुर को बैठाकर हनुमान अपने देश लौट गए।

इस आपदा के बाद एक लंबा समय सुखद रहा। उसके बाद राजादसगिरिवंग्श पर दूसरी विपत्ति आ पड़ी—एक विद्रोह जिसने उसे बेड़ियों में जकड़ लिया। जब मंडो बिभेक की रानी बनी थी, वह पहले से ही गर्भवती थी। समय आने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम बैनासुरीबंग्श रखा गया। बच्चा अपने पिता की पहचान से अनभिज्ञ बड़ा होता गया। जब वह वयस्क हो गया, उसके शिक्षक वारानिसुर ने उसके पिता की दुखद कहानी से उसे परिचित करवाया। इसने उसके मन में अपने पिता का बदला लेने और उसकी इस शर्मनाक स्थिति के निर्माता के सर्वनाश की तीव्र भावना को जाग्रत कर दिया। मंडो ने अपने पुत्र को उस रास्ते पर चलने से रोकने का प्रयास किया जिसका अंत उसके विनाश में होना था, किंतु वह व्यर्थ सिद्ध हुआ।

दोनों राक्षसों, बैनासुरीबंग्श और वारानिसुर ने तब मालिवन देश के लिए प्रस्थान किया जिस पर दसकंठ के मित्र राजा चक्रवर्ती का शासन था। लेकिन उस देश को चारों ओर से भस्म कर देने वाली आग की दीवार और मौत के पानी की खाई ने इतनी अच्छी तरह से घेर रखा था कि नगर में प्रवेश के सभी रास्ते बंद थे। लेकिन एक ऋषि से सीखे गए एक वैदिक मंत्रोच्चारण से उसने आग बुझा दी और उन्होंने पानी पर रेत बिछाई जिससे उन्हें खाई को पार करने में सहायता मिली।

मालिवन के राजा ने अपने मित्र के अनाथ पुत्र का अपने पुत्र की तरह स्वागत किया। थोड़े ही समय में सेना का सेनापति बनकर उसने लंका पर चढ़ाई की, बिभेक को हराया और उसे बेड़ियों में जकड़ दिया और लंका के राजा के रूप में बैनासुरीबंग्श को प्रतिष्ठापित कर दिया।

अब बेनजाकया से जन्मा हनुमान का पुत्र असुरफद किसी प्रकार से लंका से भागने में सफल हो गया और उसने अपने पिता से सहायता मांगी। वह जानता था कि उस समय उसके पिता एक पर्वत पर तपस्वी जीवन बिता रहे हैं।

अपनी मूर्खता को दूर करने के लिए ही फ्राया अनुजित ने तपस्वी जीवन स्वीकार किया था। एक बार, जंगल में घूमते हुए वे हरी पत्तियों में से झांकते हुए मोहक पके हुए आमों की ओर आकृष्ट हो गए थे। वानर तुरंत पेड़ पर चढ़ गया और आम तोड़ने लगा। लेकिन ऐसा करने से उसका चिपचिपा दूध उसके सिर पर फैल गया। उसने अपने हाथों से इसे पौंछना चाहा लेकिन वह ऐसा न कर सका। चूंकि वह जन्म से एक वानर था, उसने अपने दोनों हाथों और पैरों का उपयोग किया। उसके इस वानरी करतब पर उसकी पत्नियाँ जोर–जोर से हँसने लगीं। इससे वानर ने स्वयं को अपमानित महसूस किया। इसलिए अपने अपमान को धोने के लिए उसने तपस्वी जीवन बिताने का संकल्प लिया।

वह दिशफाइ ऋषि के पास पहुँचा। लेकिन एक वानर तपस्वी कैसे हो सकता था? इसलिए उनके अनुरोध पर वानर ने एक मनुष्य का स्वरूप धारण किया और एक पर्वत पर तपस्वी जीवन बिताने लगा।

असुरफद ने उन्हें वहाँ ढूंढ लिया। किंतु एक शक्तिशाली वानर के स्थान पर जिसकी वह अपेक्षा कर रहा था, उसकी दृष्टि के सामने एक मनुष्य था। असुरफद ने उससे हनुमान के बारे में पूछा। जब उसे बताया गया कि वह मनुष्य ही स्वयं हनुमान है, उसे बहुत गुस्सा आया। इतना कमजोर मनुष्य उसका पिता कैसे हो सकता है जिसने चंद्रमा और तारों को मुँह में रखा था? अपने पुत्र में अपने लिए इतना आदर देखकर हनुमान बहुत प्रसन्न हुए। अपने पूर्व रूप में आकर और चांद तथा तारों को मुँह में रख कर उसके सारे संदेह दूर कर दिए। असुरफद ने तब उस संकट के बारे में उन्हें बताया जो राजा दसगिरिवन के रूप में आ चुका था।

तत्पश्चात् वे शीघ्र ही खिडकिन गए, सेना का सारा प्रबंध किया और तुरंत अयुध्या पहुँचे। वहाँ बरत और सत्रुद भी उनसे जुड़ गए। सेना ने तब लंका के लिए प्रस्थान किया। इस बार समुद्र को बाँधने की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि निलाबद ने अपने शरीर का विस्तार कर लिया और दोनों किनारों को जोड़ते हुए जीवित पुल बन कर लेट गया। सेना ने समुद्र को पार कर लिया और मरकट पर्वत पर अपना शिविर लगा दिया। सभी संधि वार्ताओं के असफल हो जाने पर, उन्होंने अपने अस्त्र उठाए और वह क्षेत्र, जो मखमली हरी घास से ढकना शुरू हो चुका था, दोबारा खून से नहला दिया गया। बैनासुरीबंग्श मारा गया और बिभेक आजाद हुए। फिर विजयी सेना ने मालिवन की ओर प्रस्थान किया और देश को चारों ओर से घेर लिया।

राजा ने युद्ध किया, किंतु अपने मित्र दसकंठ से अधिक कुछ न कर सका। एक–एक करके उसके तीनों पुत्र मारे गए, सूरियभब और प्रलयचक्र बरत के द्वारा मारे गए और नन्युबक्त्र सत्रुद के द्वारा। उसके बाद उसके मित्र, कुरुरशत्र का राजा वैतल निलाबद द्वारा मारा गया। अंत में राजा चक्रवर्ती बरत के घातक प्रक्षेपास्त्र, ब्रह्मास्त्र का शिकार हुआ।

मालिवन के खाली सिंहासन पर मच्छानु, जिसकी लंबी पूँछ राम के द्वारा काटी जा चुकी थी, को फ्राया हनुराज नाम से, साथ ही चक्रवर्ती की पुत्री रत्नमाली को उसकी रानी के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया। निलाबद को उसकी पूर्ण इच्छापूर्ति के साथ पुरस्कृत किया गया। उसे फ्राया अभयबादवंग्श के नाम के साथ जम्बु के युवराज के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया। और सभी अन्य सेनापतियों जैसे, हनुमान के पुत्र, असुरफद, इंद्र के पुत्र, कान्युवेक और जामालिवान, जिन्होंने युद्ध को जीतने में सहायता की, को भी उनके द्वारा जोखिम उठाने के लिए पुरस्कृत किया गया। इसप्रकार रक्तपात का युग समाप्त हो गया और

सारे राज्यों में शांति का साम्राज्य हो गया जो राम की दयालु प्रभुसत्ता के लहराते हुए ध्वज के नीचे आ गए थे।[56]

●

राम का जंगल में प्रवास

सीता के धरती में प्रवेश करने के पश्चात राम बेसुध होकर गिर पड़े। जब राम अपने होश में आए, उन्होंने फ्राया अनुजित को पाताल भेजा। वानर को देखने पर उनका क्रोध और अधिक भड़क गया। चूंकि एक बार वे उनसे धोखा खा चुकी थीं, वे अधिक सावधान हो गई थीं और अपने यहाँ से उन्हें निकाल दिया।

अंत में राम ने बिभेक से परामर्श किया, जिसने अपने ज्योतिषीय ज्ञान की सहायता से देखा कि अंधकारमय भविष्य राम को निगलने धीरे–धीरे उनके पास आ रहा है। ग्रहों के इस दुष्प्रभाव से छुटकारा पाने का एक ही रास्ता था कि राम महल को छोड़ दें, एक वर्ष के लिए जंगल में प्रवास बना लें और उस समय को राक्षसों को मारने में बितायें। एक वर्ष के बाद उदासी सदा के लिए समाप्त हो जायेगी और कभी कम नहीं होने वाला प्रकाश उनके जीवन को रोशन करेगा।

---

56 कथानक का विस्तार लंका अध्याय के सदृश होता है। वही कुशलता अपनाई गई है। एकमात्र बदलाव हम पात्रों या वस्तुओं में देखते हैं। उदाहरण के तौर पर, कपिलाबद के स्थान पर हम मेघाबद पाते हैं। लक्षण के स्थान पर हम इसका शिकार सत्रुद को पाते हैं। नागपाश, जो सर्पों को उत्पन्न करता है, के स्थान पर हम हेरा को पाते हैं जो एक समुद्री परदार सर्प है जिसके एक हजार फन होते हैं। वैसे ही यज्ञ और वानरों द्वारा उनको विफल करना, वही बुरे शकुन, मृत्योन्मुख चक्रवर्ती के चारों मुखों से वही पश्चाताप के शब्द। चूंकि कथानक का विस्तार मात्र एक नकल के और कुछ नहीं है, इसलिए हमने अपने सार को केवल युद्ध के सार तक ही सीमित रखा है। रामकीर्ति पृ 138

इसलिए राम अपने प्रिय भाईयों और निष्ठावान सेवकों के साथ जंगल में चले गए। वहाँ उनका सामना कुवेर के पुत्र त्रिपक्कन से हुआ जो लक्षण के बाण से मारा गया। अपने पुत्र के मारे जाने पर कुवेर अपनी शक्तिशाली सेना के साथ आया। लेकिन राम के बाण ने उसे उसके पुत्र के पास पहुँचा दिया।

फिर वे अपने रास्ते पर आगे बढ़ गए। बहुत शीघ्र वे कुंभंद नामक राक्षस से मिले। वास्तव में वह एक अर्द्ध–देवता था, जो ईस्वर द्वारा शापित होकर एक राक्षसी जीवन बिता रहा था। परंतु उसके उस जीवन का अंत तभी होता, जब राम उस पर उपकार करके अपनी कृपा बरसाते। कृपालु राम ने उसे उसके शापित जीवन से मुक्त किया और वे जंगल के सघन भाग की ओर बढ़ते गए।

वहाँ चिड़िया के सिर वाले एक अजीब प्रकार के राक्षस से उनका सामना हुआ जिसने आकाश से नीचे आकर अचानक राम और लक्षण पर झपट्टा मारा और उन्हें पकड़ कर वापस आकाश में चला गया। लेकिन अपनी द्रुतगति के बावजूद वह अपने सगे–संबंधियों से अधिक कुछ न कर सका। सुग्रीव और हनुमान ने दोनों भाईयों को उसकी पकड़ से मुक्त करा लिया, जबकि अंगद और निलाबद ने उसका अंत कर दिया।

आगे बढ़ते हुए फिर वे एक विशाल तालाब पर पहुँचे, जिसकी लहरें खिले हुए कमलों के साथ नृत्य कर रही थीं। लेकिन वह सुंदर तालाब उनराज का घर था, जो एक समय में ईस्वर का सेवक था लेकिन अब एक शापित राक्षस। उसकी नियति में तय था कि राम के धनुष द्वारा छोड़ी गई कोक घास से उसे एक चट्टान से बाँध दिया जाएगा और दस लाख करोड वर्ष तक इसी स्थिति में रहेगा, एक मुर्गा उसकी निगरानी करेगा और एक कौआ भी। यदि घास कभी भी उसके वक्षस्थल से हटी, तभी एक स्त्री तेजी से आएगी और लोहे के हथौड़े से उसके वक्षस्थल को तब तक पीटती रहेगी, जब तक उसके शापित जीवन का अंत नहीं हो जाएगा।

एक साल के प्रवास का अंत अब पास आ गया था। इसलिए राम अयुध्या की ओर वापस चल दिए और इस आशा की किरण के साथ जल्दी ही राजमहल में पहुँच गए कि प्रवास के अंत के साथ ही ग्रहों का बुरा प्रभाव भी समाप्त हो जाएगा जो निकट भविष्य में उनकी प्रिय पत्नी सीता के प्रेम से धन्य एक नए जीवन–दर्शन को प्रकट करेगा।

●

राम और सीता का पुनर्मिलन

इसी बीच कैलास पर्वत पर देवताओं की शतवार्षिकी सभा का आयोजन हुआ। दैदीप्यमान देवता संसार की स्थिति पर विचार–विमर्श कर रहे थे। इंद्र ने ईस्वर को बताया कि संपूर्ण सृष्टि शांति और आनंद में है, राम के पराक्रम ने दुष्ट राक्षसों को उनके छिपे हुए स्थानों से बाहर खींच कर उन सभी का सर्वनाश कर दिया है। अब जिस सुख और सुरक्षा का पूरी सृष्टि पर आधिपत्य है, उस पर किसी दुख अथवा भय की छाया नहीं पड़ी है। लेकिन वे, जिन्होंने सारे संसार को खुशी प्रदान की, आज स्वयं ही सबसे अधिक शोकसंतप्त जीवन व्यतीत कर रहे हैं, क्योंकि उनकी खुशी की स्त्रोत सीता ने क्रोधावेश में उन्हें अकेला छोड़ दिया है।

इस पर दयालु देवता ने राम और सीता को बुलवाया ताकि वे स्वयं उन्हें किसी समझौते पर ला सकें जो अंततः उनके सुखद पुनर्मिलन में बदल जाए।

बहुत शीघ्र ही पति–पत्नी कैलास पर्वत पर पहुँच गए। शिव ने ध्यान से देखा कि सीता अपने पति के अनुचित, ईर्ष्यालु और क्रूर व्यवहार पर अभी भी क्रोध में हैं। इसलिए व्यवहारकुशल देवता ने यही उपयुक्त समझा कि पहले वे राम को उनके दुर्व्यवहार के लिए डाँटें और फिर सीता से पुनर्मिलन के लिए कोमल भावनाएं रखने का अनुरोध करें।

पर व्यवहारकुशल राम को डाँटने की आवश्यकता नहीं हुई। उन्होंने अपने अपराध को खुशी से स्वीकार किया और सीता से माफी माँग

ली। किंतु सीता अब भी किसी प्रकार की दया दिखाने से कोसों दूर थी। वह इतनी अधिक आहत हो चुकी थीं कि जल्दी से वह न तो राम को क्षमा कर सकती थीं और न ही उनके दुर्व्यवहार को भूल सकती थीं। उन्होंने कहा कि वे अब राम की समझदारी में पूरी तरह विश्वास खो चुकी हैं। राम के अच्छे और बुरे भाव इतनी तेजी से बदलते हैं कि वह स्वयं को ही उनके हाथों में सुरक्षित होने का विश्वास नहीं दिला सकतीं क्योंकि न जाने कौन से क्षण राम का कौन सा हाथ उठकर उन पर दुख बनकर गिर पड़े।

फिर भी, ईस्वर के अनुरोध करने पर अंततः उन्होंने समर्पण कर दिया और राम को स्वीकारने के लिए अपनी सहमति दे दी। ज्योंही सीता के मुख से शब्द बाहर आए, राम प्रसन्नता से अभिभूत हो गए। दुख ने उन्हें अपनी पकड़ से मुक्त कर दिया और उन्होंने फिर स्वयं को प्रसन्नता के असीम आकाश में स्वतंत्रता से उड़ते हुए पाया। सजीव–से राम अब अपने जीवन–अमृत तुल्य प्रेम के साथ थे, विश्व ने उन्हें एक विशाल कार्य–क्षेत्र प्रस्तुत किया–एक रंगमंच जिस पर उन्होंने अतुलनीय यश के लिए काम किए जो प्रसिद्ध और अमर होकर संपूर्ण सृष्टि को युगों–युगों तक प्रकाशित करते रहे*।

●

* कहानी फिर मंकुट और लब के साहसिक कार्यों को बताने के लिए चलती रही जो राजा कैयाकेश के आग्रह पर उनके देश उन राक्षसों का सर्वनाश करने के लिए गए थे जिन्होंने उनके राज्य पर आक्रमण किया था।